Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारिका

कहानियों और कथा-जगत की जीवंत पाक्षिकी

वर्ष : २४; अंक : ३७१; १६–३१ दिसंबर, १९८४

▣ कहानियां/उपन्यास-अंश

8. ग्यारह वर्ष का समय : आचार्य रामचंद्र शुक्ल
14. खामियाजा : राकेश वत्स
30. पहली सीख : बलराम
32. सिरी उपमा जोग : शिवमूर्ति
37. कैसे क्या हुआ : शंकरदयाल सिंह
47. चौथी ऋतु : अचला शर्मा
53. मुबारक हो तुम : गुलजार
56. नागचंपा : बाला दुबे
62. तमाशबीन : नरेंद्र नागदेव
65. ग्लेशियर : विजय

▣ चुनाव पर विशेष

18. षडयंत्रकारी और क्रांतिकारी : राजेंद्रकुमार मिश्र
26. एक गंभीर चुनाव चिंतन : सुरेश उनियाल
29. इलाहाबादी फर्ज : विभा देवसरे

▣ व्यंग्य-रचना

41. नया साल पुराना जाल : मुज्तबा हुसैन

▣ लघु-रचनाएं

10. शुक्लजी का महत्त्व : डॉ. रामविलास शर्मा
11. शुक्लजी की कथा-आलोचना : मधुरेश
16. मां : ज्ञानप्रकाश विवेक
20. धर्म की खिड़कियां : निर्मल वर्मा
23. हाजिर-जवाबी : बाल मुकुंद
34. एक मुलाकात फैज से : कृश्न चंदर
36. मर्द के साये में. . : रेशमा
43. योजना : पवन शर्मा
46. याददाश्त : हरमन चौहान
49. गजल : हंसराज रहबर
58. 1984 का यह वर्ष : अशोक वाजपेयी
59. गजल : शबाब
61. नज्में : फैज अहमद फैज
64. आदमी . . . : चंद्रेश्वर कर्ण
66. रवींद्रनाथ टैगोर....:असीम चक्रवर्ती
70. पितृभक्ति : श्रीनिवास वत्स

▣ साक्षात्कार

44. हिंदुस्तानी नहीं होने का दुख : रॉबिन शा पुष्प से आलोक रंजन की बातचीत

▣ श्रद्धांजलि

60. कर रहा था गमें जहां का हिसाब : फ़ैज अहमद फ़ैज

▣ स्थायी स्तंभ

5. आपकी बात
7. अपनी बात
39. तस्वीर बोलती है : विजय वशिष्ठ
40. और भुलाये न बने
68. भरतमनि के वंशधर : मुद्राराक्षस
71. पखवारे की पुस्तकें
73. हलचल

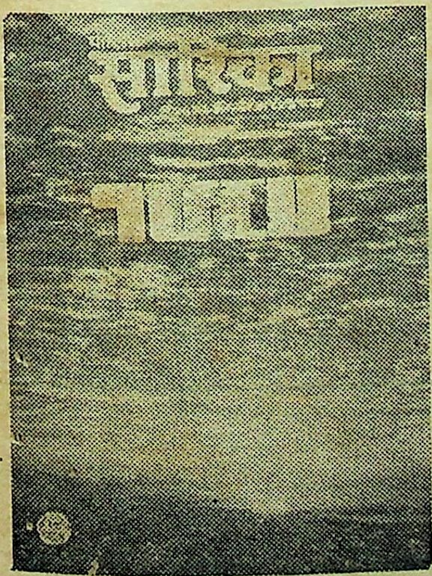

सहायक संपादक : अवधनारायण मुद्गल
उपसंपादक : रमेश बत्तरा, सुरेश उनियाल, बलराम, महेश दर्पण, वीरेंद्र जैन
सज्जा : सुमीता
आवरण : धर्मवीर जयनर

प्रिय पाठक

अगले अंक से आपकी प्रिय पत्रिका 'सारिका' बड़े आकार में नयी साज-सज्जा और डेढ़ गुनी सामग्री लेकर उपस्थित होगी. अगले रजत जयंती वर्ष में इसका हर अंक विशेषांक होगा, पहले से भी अधिक पठनीय और संग्रहणीय, लेकिन कागज और छपाई पर मंहगाई की भयानक मार के बावजूद आपको सिर्फ पचास पैसे अधिक खर्च करने पड़ेंगे. विश्वास है, आपका स्नेह पूर्ववत बना रहेगा—सं.

● संपादकीय पता : सारिका, 10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110002

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

▣ **विशेष**

● **भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार : संकल्प से संसिद्धि तक**....ज्ञानपीठ पुरकार से संबंधित तथ्यात्मक परिचय देता 'ज्ञानपीठ' के सलाहकार **लक्ष्मीचंद्र जैन** का आलेख.

● 'ज्ञानपीठ पुरस्कार' की संस्थापिका **स्व. रमा जैन** के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालता कथाकार-आलोचक **कुबेरनाथ राय** का आलेख.

● सन् 1962 से सन् 1983 तक ज्ञानपीठ पुरस्कार-समारोहों के अवसर पर **डॉ. राजेंद्र प्रसाद, डॉ. संपूर्णानंद, डॉ. बी. गोपाल रेड्डी, मु. हिदायतुल्ला, इंदिरा गांधी, वी. वी. गिरि, डॉ. कर्ण सिंह, डॉ. निहार रंजन राय, महादेवी वर्मा, मोरारजी देसाई, नीलम संजीव रेड्डी और ज्ञानी जैल सिंह** आदि विशिष्ट वक्ताओं के उद्गार.

● **भारतीय ज्ञानपीठ : एक परिचय कैसा है यह संस्थान और इसकी गतिविधियां, जो हर वर्ष साहित्य पर डेढ़ लाख रुपये का गौरवशाली पुरस्कार प्रदान करता है.**

रजत जयंती वर्ष पर
संग्रहणीय उपहार

अगला अंक

● **ताराशंकर बंद्योपाध्याय, सुमित्रानंदन पंत, गोपीनाथ महांति, शिवराम कारंत, वि. स. खांडेकर** आदि की अविस्मरणीय कथा-रचनाएं.

▣ **साक्षात्कार**

● प्रख्यात कथाकार **जनेंद्र कुमार** से 'ज्ञानपीठ' पर महत्वपूर्ण बातचीत.

▣ **आत्मावलोकन**

रजत जयंती वष की शुरुआत के साथ पिछले चौबीस वर्षों में प्रकाशित वर्ष की श्रेष्ठ कहानी का चयन. . .इस बार कन्नड़ के सुप्रसिद्ध कथा-शिल्पी **मास्ति व्यंकटेश आयंगार** की कहानी—**उपनिषद का जन्म** और वरिष्ठ कथाकार **विष्णु प्रभाकर** की टिप्पणी.

▣ **संस्मरण**

● चीनी फेरीवाले पर **महादेवी वर्मा** का कथात्मक संस्मरण .

▣ **काव्य-रचनाएं**

● **फिराक गोरखपुरी** की गजलें और **विष्णु दे** की लंबी कविता.

▣ **परिचर्चा**

● ज्ञानपीठ पुरस्कार के लिए नाम प्रस्तावित करने वाले साहित्यकारों की कसौटी आखिर है क्या ? विविध भाषा-भाषी महत्वपूर्ण लेखकों के विचार.

रचनाएं जिनका एक साथ मिल पाना एक सुखद आश्चर्य है!

ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता कथाकार विशेषांक : एक

1 से 15 जनवरी, 1985

सारिका

16 से 31 जनवरी, 1985

ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता कथाकार विशेषांक : दो

अखिलन, अज्ञेय, अमृता प्रीतम, आशापूर्णा देवी, विश्वनाथ सत्यनारायण, वीरेंद्रकुमार भट्टाचार्य, रामधारीसिंह दिनकर, एस. के. पोट्टेक्काट, द. रा. बेंद्रे, उमाशंकर जोशी, जी. शंकर कुरूप एवं [कु.] वें. पुट्टप्पा की दुर्लभ कथा-रचनाओं सहित अनूठी, पठनीय व संग्रहणीय सामग्री.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपकी बात

वर्ष : २४; अंक : ३६७
१६-३१ अक्तूबर, १९८४
भारतीय महिला कथाकार अंक

रिश्तों की पीड़ा

सारिका का हर अंक बहुत ही लुभावना होता है. **'भारतीय महिला कथाकार अंक'** पढ़ा. इतनी महिला कथाकारों की कहानियां एक साथ पढ़ना अपने आप में एक अनूठा अनुभव था. वैसे तो इस अंक की सभी कहानियां रोचक व मानव मन की परतों को खोलने वाली थीं परंतु अमृता प्रीतम की कहानी **'त्रिशूल'** और अनीता मनोचा की **'टुकड़ा-टुकड़ा संबंध'** ने विशेष प्रभावित किया. असामान्य रिश्तों की पीड़ा को आनेवाली पीढ़ी किस तीव्रता से अनुभव करती है इसका सजीव वर्णन किया गया है. अमृता प्रीतम जैसी प्रतिष्ठित लेखिका से दर्द की सुंदर अभिव्यक्ति तो आशा के अनुकूल ही है परंतु अनीता मनोचा ने नयी लेखिका होते हुए अपनी कहानी में दर्द और प्रतिशोध की भावना को जो सशक्त अभिव्यक्ति दी है उसकी जितनी प्रशंसा की जाये कम है.

● **कु. परमजीत खनूजा, सनावद**

ऊंची दूकान-फीका पकवान

'भारतीय महिला कथाकार अंक' पढ़कर ऊंची दूकान-फीका पकवान की कहावत चरितार्थ होती लगी. वैसे तो आपने इस अंक में हिंदी और अन्य हिंदीतर भाषाओं की तमाम प्रतिष्ठित लेखिकाओं की कहानियों को संकलित किया है लेकिन मेरी राय में इस अंक की सर्वश्रेष्ठ कहानी अनीता मनोचा की **'टुकड़ा-टुकड़ा संबंध'** है. चमेली जुगरान की **'रिश्ता शहर से'** भी अच्छी लगी. शेष कुछ खास नहीं लगीं.

ऋचा, सत्यार्थ की गजल और किरण अरोड़ा की लघु-कथा भी अच्छी है.

● **अखिलेश 'चमन', देहरादून**

नये और चुके के बीच

सुविख्यात लेखिका एवं कवियित्रि अमृता प्रीतम की कहानी **'त्रिशूल'** पढ़कर निराशा ही हुई. उनकी अधिकांश कहानियां थोड़े से फेरबदल के साथ ही 'पिछले लिखे' को दोहराती चलती हैं. वह भी एक खास ढंग के अमृता प्रीतमाई अंदाज में. ऐसे में एक आम पाठक अपने लेखक से कुछ नया पाने की आशा तथा उसके 'चुक' जाने की आशंका के बीच निरीह-सा फंस जाता है. यह निरीहपन तब और भी अधिक दयनीय हो उठता है जब उसकी आंखें अमृता प्रीतम जैसे बहुआयामी सशक्त हस्ताक्षर की तरफ उठी हों.

'भूख' (चित्रा मुद्गल) अंक की सबसे अधिक सशक्त रचना लगी. **'कुनू'** (मृणाल पांडे,), **'अंतिम प्रहर की महफिल'** (कणा सेन) तथा **'कल कहां जाओगी'** (पद्मा सचदेव) कहानियां उनकी प्रतिष्ठा के अनुरूप सृजन हैं.

संपादकीय टिप्पणी में आपने महिला तथा पुरुष लेखकों के बीच अंतर की खाई को जिस सहज ढंग से पाट दिया, उसके लिये आप बधाई के पात्र हैं.

● **गिरीश भरदया, जबलपुर**

छटपटाहट प्रतिशोध की

हमारी बहुत-सी रचनाओं के साथ यह असुखद घटता है कि वे समग्र रूप में पूरे अनुभव पर नहीं कसी जातीं. उनमें बहुत कुछ आवश्यक तत्व छूट जाते हैं और अर्थ का अनर्थ हो जाता है.

'भारतीय महिला कथाकार अंक' की रचना **'टुकड़ा टुकड़ा संबंध'** के विषय में-क्या पुरुष मानसिकता में ऐसा घटता है कि जिस संदर्भ में एक बाप अपने बच्चों की उपेक्षा कर दे, और बच्चे उसे जिंदगी का प्रतिशोध मान लें. सारी रचना में कहानी के नायक मनु को मां के प्रति हुए अन्याय से सुगबुगाते नहीं देखा. किसने सुना है परित्यकता मां के बेटे का करुण क्रंदन?

अपनी मां के प्रति जिस छटपटाहट को उसने भोगा है क्या अपना प्रतिशोध वह इतने ओछे तरीके से लेगा? वह नहीं चाहेगा अपनी मां की स्थिति किसी बेकसूर को देना. दोनों बाप-बेटों को औरत का हंता दर्शाकर अनीता मनोचा ने मनु का पक्ष कमजोर कर दिया. यहां तक कि रश्मि व स्वयं उसकी मां का चरित्र गौण ही रहा. इसी अंक की रचना **'त्रिशूल'** (अमृता प्रीतम) इसका स्पष्ट उदाहरण है जिसमें नायक अपनी सौतेली बहन के लिये जिम्मेदारी का त्रिशूल उठाए फिर रहा है.

'कुनू' (मृणाल पांडे) इस अंक की श्रेष्ठ रचना लगी. कणा सेन की कहानी **'अंतिम प्रहर की महफिल'** का मार्मिक अंत भीतर तक सालता चला गया. **'बहाव'** (अरुणा सीतेश) व **'रास्ता'** (शशिप्रभा शास्त्री) पठनीय रहीं.

● **रामकुमार भट्टा, सीवन**

सुविधावादी लेखकों के चेहरे पर

वास्तव में ही अंतरंग बातचीत हुई है मृदुलाजी से **(मृदुला गर्ग से दिनेश द्विवेदी की अंतरंग बातचीत)**. मृदुला जी ने सवालों के सीधे-स्पष्ट और तीखे जवाब देकर साबित कर दिया है कि उनके लेखन और चिंतन (और संभवतः व्यवहार) में कहीं कोई असमानता नहीं है. हिंदी साहित्य में जहां कई नामी और डिग्रीधारी विद्वान (पुरुष लेखक) अपने को तुलसीदास तक से भक्तिभावपूर्वक जोड़कर आधुनिक बनते हैं या अपनी बालबुद्धि के कारण 'सुखी जीव' बने रहते हैं, वहां गृहस्थी और समाज के दायित्वों से सहर्ष जूझती, दांपत्य से कुढ़ती-चिढ़ती और उस कुढ़न में आनंद पाती, लेखन के स्रोत ढूंढती मृदुला जैसी लेखिका सुविधावादी साहित्यकारों के भोले चेहरे पर झनझनाहट पैदा करने वाला थप्पड़ भी है (और समझें तो अक्ल बरसाता घूंसा भी). मृदुलाजी के **चित्तकोबरा** में नायिका द्वारा संभोग में हिस्सेदारी न करनेवाले चित्रण को कई अच्छेखासे लोग नहीं समझे. "अर्थों तक पहुंचने की कोशिश नहीं की गई"—मृदुलाजी की शिकायत वाजिब है. मगर जहां घर परिवार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से ही स्त्री-पुरुष संबंधों के प्रति असहज, कुंठावादी और मोंदू दृष्टिकोण घुट्टी में पिला दिया जाए, वहां बड़े-बड़े पोथे रच देनेवाला साहित्यकार भी यदि यौन पर सधी-सही दृष्टि को झेल न पाएं या 'हाय राम!' करें तो वे लताड़ के नहीं, पुचकार के अधिकारी हैं. उन पर मृदुलाजी, रहम खाएं. ये लोग अर्थों तक नहीं, काफी समय तक अनर्थों तक पहुंचने के लिए अभिशप्त हैं.

मृदुलाजी का एक और काम पसंद आया—"राह चलते जहां अन्याय दीखे लड़ पड़ना, और . . दुश्मन बनाना." इस अदा की उम्र लंबी हो.

● **सैन्नी अशेष, अंबाला छावनी**

नाम में क्या धरा है?

सारिका का '**महिला कथाकार अंक**' सर्वश्रेष्ठ अंक रहा. यदि आप कथाकारों की कहानियों के साथ उनके नाम न देते तो कोई भी पाठक पुरुष-स्त्री कथाकार में अंतर नहीं कर सकता था. यानी एक-एक पात्र की मनःस्थिति, विचारधारा, कुंठाओं, मनोविज्ञान का जिस तरह वर्णन किया वह अद्वितीय है. बधाई.

'**भूख**' (चित्रा मुद्गल), '**कून**' (मृणाल पांडे), '**कल कहां जाओगी**' (पद्मा सचदेव) व '**रास्ता**' (शशिप्रभा शास्त्री) की कहानियां नयी सोच देती हुई बढ़ती चली गयीं. सभी को मेरी हार्दिक बधाई.

● **अपर्णा चतुर्वेदी 'प्रीता,' औरंगाबाद**

भारतीय संस्कृति

चित्रा मुद्गल की कहानी '**भूख**' को सर्वश्रेष्ठ कहानी कहा जाये तो कोई अतिशयोक्ति न होगी. कहानी सच्चाई की पृष्ठभूमि पर आधारित है जो पाठक हृदय को गहराई तक छूती है. इसी अंक में अनीता मनोचा की कहानी '**टुकड़ा-टुकड़ा संबंध**' भारतीय संस्कृति के प्रतिकूल है. इस कहानी में भारतीय संस्कृति को विकृत रूप में प्रस्तुत करने का एक घिनौना प्रयास है जो किसी कहानी लेखक या लेखिका को सस्ती लोकप्रियता भर दे सकता है, सफलता नहीं. काश! कहानी लेखिका इस कहानी को लिखने के बाद अपने आपको इस कहानी का एक अंश मानकर इस पर सोचने का प्रयास करती कि उन पर इसका क्या असर पड़ता है? कहानी का कल्पनाओं के साथ संबंध तो होता है पर एकदम ऐसा भी नहीं होता कि उसे यथार्थ की पृष्ठभूमि से काट दे.

● **मनोकामना, जमशेदपुर**

रिश्तों की अस्वाभाविकता

पिछले दो वर्षों से **सारिका** का नियमित पाठक हूं. आज तक किसी अंक ने इतना उद्वेलित नहीं किया जितना इस अंक ने. युवा लेखन प्रतियोगिता के अंतर्गत लेखिका अनीता मनोचा की कहानी '**टुकड़ा-टुकड़ा संबंध**' विचारों को पागलपन की हद तक उद्वेलित कर गयी. रिश्तों की थोड़ी अस्वाभाविकता को छोड़कर कहानी का ताना-बाना बहुत ही कसा हुआ है. आजकल की भिखारी समस्या पर चित्रा मुद्गल की कहानी '**भूख**' काफी प्रकाश डालती है. बाकी अंक में अमृता प्रीतम की '**त्रिशूल**', शशिप्रभा शास्त्री की '**रास्ता**', निर्मली देशपांडे की '**मेरी हैड अ लिटिल लैंब**' तथा पद्मा सचदेव की '**कल कहां जाओगी**' बहुत अच्छी लगीं.

● **हेमंत बेहल, कालका**

तस्वीर बोलती है

सारिका : अंक : 366

पुरस्कार विजेताओं को बधाई

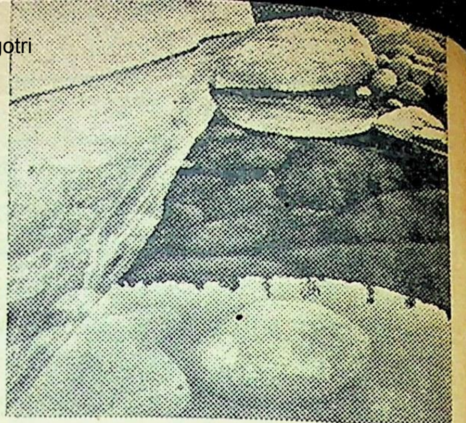

प्रथम पुरस्कार: 50 रुपये

जिंदगी संगदिल सही लेकिन
आईना भी इसी चट्टान में है.

—अमीर आगा

● राजेंद्र माहेश्वरी, कार्माशियल आफीसर, महाराजा श्री उम्मेद मिल्स लि. पाली मारवाड़-306401 (राज).

द्वितीय पुरस्कार: 30 रुपये

मेखलाकार पर्वत अपार
अपने सहस्त्र दृग सुमन फाड़,
अवलोक रहा था बार-बार
नीचे जल में निज महाकार.

—सुमित्रानंदन पंत

● विभा अष्ठाना, द्वारा श्री मुरलीधर अष्ठाना एडवोकेट, सिविल लाइंस, जौनपुर-222002 (उ. प्र.).

तृतीय पुरस्कार: 20 रुपये

हर रोज कोई कूद के करता है खुदकुशी
पर बात क्या है झील में हलचल नहीं कुंअर.
पत्थर की ओर जाके बचा ले ये दिल की नाव
पत्थर पे किसी ओर भी दलदल नहीं कुंअर.

—कुंअर बेचैन

● नवीन नयन, एन. ए. सी. रोड. पो.खगड़िया–851204 (बिहार).

प्रशंसित शीर्षक

कुछ हकीकत जो पत्थर-सी नजर आती है
छू के देखा है तो पानी के सिवा कुछ भी नहीं.

● हैदर अली खान 'फजा', मंडला.

कैसे कहें कि, यूं ही, तनहा पड़े हुए हैं,
हर आईने में लहरों के, हम ही जड़े हुए हैं.

● अनुपम त्रिपाठी, सारनी.

पत्थर के चेहरे फिर पानी में उभर आयें हैं,
डर है कि कहीं दरिया भी न जम जाये.

● डा. सरला राय, पूर्णियां.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी बात

1984 जाते-जाते अपने खौफनाक और जहरीले पंजे दुनिया की, विशेष रूप से भारत की गर्दन में गड़ा गया और भविष्य के लिए अनेक प्रश्नचिह्न छोड़ गया है. शंका, अविश्वास और भय की जिस स्थिति में मौजूदा पीढ़ी आज है, वैसी स्थिति पहले शायद ही कभी रही होगी. किसी भी पीढ़ी को नष्ट करने के लिए तीर, तलवार, बंदूकें, गोला-बारूद उतने कारगर और खतरनाक साबित नहीं होते, जितने पर्दे-दर-पर्दे चलते आये या चल रहे षड्यंत्र होते हैं. दिखाई देनेवाले दुश्मन का तो किसी न किसी तरह मुकाबला किया जा सकता है, लेकिन अनजाने, अदृश्य दुश्मन का मुकाबला कर पाना बहुत मुश्किल है. अदृश्य दुश्मन का वार पता नहीं चलता, सिर्फ परिणाम पता चलता है और परिणाम के सहारे जब तक हम उस अदृश्य केंद्र तक पहुंचने की कोशिश करें, तब तक काफी नुकसान हो चुका होता है. 1984 में दुनिया के कई देशों ने ऐसे कई अदृश्य दुश्मनों के भयानक वार झेले हैं.

अफ्रीका महाद्वीप के लगभग आधा दर्जन देश भुखमरी के शिकार हुए हैं. इथोपिया और मोजांबीक में भूख से तड़प-तड़पकर मरनेवालों की संख्या लगभग पांच लाख तक पहुंच गयी है और 75 लाख लोग अभी भी अकाल के खौफनाक पंजों में जकड़े हुए हैं.

सूखा, अकाल, बाढ़ और चक्रवात या तूफान द्वारा ढहाये गये कहर प्रकृति की मार हैं और प्रकृति के सामने आदमी अक्सर असहाय हो जाता है, लेकिन भोपाल में जहरीली गैस के रिसन से होनेवाली इंसानी जिंदगी की तबाही तो प्राकृतिक आपदा की श्रेणी में नहीं आती. हजारों लोगों की जिंदगियां गयीं और अब भी जा रही हैं. एक हरा-भरा खूबसूरत और भारतीय संस्कृति का केंद्र कहा जाने वाला शहर भोपाल खंडहरों की सुनसान और वीरान बस्ती बनता जा रहा है.

यही नहीं, 1984 का सबसे खौफनाक साया विश्व की महान नेता, तीसरी दुनिया और गुटनिरपेक्ष देशों की सच्ची और सबसे बड़ी रहनुमा और भारतीय सम्मान की रक्षिका शक्ति श्रीमती इंदिरा गांधी की निर्मम हत्या के रूप में समूचे भारतीय जनमानस पर पड़ा है. उसके बाद जैसे हालात पैदा हुए, वह आप सबको मालूम हैं.

इसी वर्ष भिवंडी और उसके आसपास के हिस्से में घृणा और हिंसा की आग में सैकड़ों लोग अपनी कीमती जानें खो बैठे. साहित्य, संस्कृति और राजनीति जगत में कुछ और भी जानलेवा तथा अविस्मरणीय हादसे हुए हैं. रंगजी 84 के शुरू में अपने गीतों और ग़ज़लों के लिए बेकरार दिल लेकर मौत के आगोश में समा गये. हिंदी के प्रसिद्ध समालोचक और चिंतक डॉ. इंद्रनाथ मदान हमारे बीच से चले गये. 1984 ने समाप्त होते-होते उर्दू के दो प्रख्यात साहित्य मनीषियों को हमसे छीन लिया. उनमें से एक हैं अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त श्री फैज़ अहमद फैज़ और दूसरे हैं उर्दू के प्रख्यात कथाकार राजेंद्रसिंह बेदी. मराठी के लेखक अनिल बर्वे भी इसी साल हमसे छिन गये. इसी बीच दो दशकों तक 'दिनमान' से जुड़े रहनेवाले हमारे पत्रकार और कथाकार साथी पंडित श्यामलाल शर्मा हमारे बीच से उठ गये. फिल्मी हस्तियों में श्री सोहराब मोदी, फ्रांसीसी फिल्मकार फ्रांसुआ त्रूफो और तुर्की फिल्मकार इल्माज गुने भी नहीं रहे. इनके साथ ही कन्नड़ के प्रसिद्ध रचनाकार आद्यरंगाचार्य मध्य प्रदेश के प्रसिद्ध चित्रकार डी. जे. जोशी भी 1984 के खौफनाक काले साये में समा गये.

भारतीय राजनीति का एक मजबूत स्तंभ श्री यशवंतराव चव्हाण के निधन के रूप में टूट गया. इन सभी दिवंगत आत्माओं को हमारी श्रद्धांजलि और नमन. ये कुछ ऐसे हादसे हैं, जिन्हें हम कभी भुला नहीं पायेंगे. आज भी लोगों के मन में एक अदृश्य भय समाया हुआ है, जो दिखाई नहीं देता, लेकिन कुछ हाथ अपने खतरनाक इरादों के साथ बढ़ते हुए महसूस होते हैं. आखिर वे हाथ कौन से हैं, किनके हैं?

कुल मिलाकर यह वर्ष एक हत्यारा वर्ष कहा जा सकता है. बावजूद तमाम हत्याओं और हादसों के, हमें भविष्य के प्रति निराश नहीं होना चाहिए. यही भावना आनेवाले वर्ष 1985 के प्रति हमारी शुभकामना है.

१९८४ : एक हत्यारे वर्ष की भूमिका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्यारह वर्ष का समय

• आचार्य रामचंद्र शुक्ल

दिनभर बैठे-बैठे मेरे सिर में पीड़ा उत्पन्न हुई. मैं अपने स्थान से उठा और अपने एक नये एकांतवासी मित्र के यहां जाना विचारा. जाकर मैंने देखा तो वे ध्यानमग्न सिर नीचा किये हुए कुछ सोच रहे थे. मुझे यह देखकर कुछ आश्चर्य नहीं हुआ, क्योंकि यह कोई नयी बात न थी. उन्हें थोड़े ही दिन पूरब से इस देश में आये हुआ है. नगर में उनसे मेरे सिवाय और किसी से विशेष जान-पहचान नहीं है, और न वह विशेषतः किसी से मिलते-जुलते ही हैं. केवल मुझसे, मेरे भाग्य से, वे मित्र भाव रखते हैं. उदास तो वे हर समय रहा करते हैं. कई बेर उनसे मैंने इस उदासीनता का कारण पूछा भी, किंतु मैंने देखा कि उसके प्रकट करने में उन्हें एक प्रकार का दुःख-सा होता है. इसी कारण मैं विशेष पूछताछ नहीं करता.

मैंने पास जाकर कहा, "मित्र, आज तुम बहुत उदास जान पड़ते हो. चलो, थोड़ी दूर तक घूम आवें, चित्त बहल जायेगा." वे तुरंत खड़े हो गये और कहा, "चलो मित्र, मेरा भी यही जी चाहता है. मैं तो तुम्हारे यहां जानेवाला था."

हम दोनों उठे और नगर से पूर्व की ओर का मार्ग लिया. बाग के दोनों ओर की कृषि संपन्न भूमि की शोभा का अनुभव करते और हरियाली के विस्तृत राज्य का अवलोकन करते हम लोग चले. दिन का अधिकांश अभी शेष था, इससे चित्त को स्थिरता थी. पावस की जरावस्था थी, ऊपर से भी किसी प्रकार के अत्याचार की संभावना न थी. नगर से बहुत दूर निकल गये. देखा तो शनैः-शनैः भूमि में परिवर्तन लक्षित होने लगा. अरुणता-मिश्रित पहाड़ी, रेतीली भूमि, जंगली बेर-मकोय की छोटी-छोटी कंटकमय झाड़ियां दृष्टि के अंतर्गत होने लगीं. अब हम लोगों को जान पड़ा कि हम दक्षिण की ओर झुके जा रहे हैं. संध्या भी हो चली. दिनकर की डूबती हुई किरणों की अरुण आभा झाड़ियों पर पड़ने लगी. इधर प्राची की ओर दृष्टि गयी. देखा तो चंद्रदेव पहले ही से सिंहासनरूढ़ होकर एक पहाड़ी के पीछे से झांक रहे थे.

दैवात सम्मुख ही एक ऊंची पहाड़ी दीख पड़ी, उसी को इस कार्य का उपयुक्त स्थान हम लोगों ने विचारा. ज्यों-ज्यों करके पहाड़ी के शिखर तक हम लोग गये. ऊपर आते ही भगवती जन्हू-नंदिनी के दर्शन हुए. नेत्र तो सफल हुए. इतने में चारु-हासिनी चंद्रिका भी अट्टहास करके खिल उठी. उत्तर-पूर्व की ओर दृष्टि गयी. विचित्र दृश्य सम्मुख उपस्थित हुआ. जाह्नवी के तट पर से कुछ अंतर पर नीचे मैदान में, बहुत दूर गिरे हुए मकानों के ढेर स्वच्छ चंद्रिका में स्पष्ट रूप से दिखाई दिये.

मैं सहसा चौक पड़ा और ये शब्द मेरे मुख से निकल पड़े, "क्या यह वही खंडहर है, जिसके विषय में यहां अनेक दंत कथाएं प्रचलित हैं." चारों ओर दृष्टि उठाकर देखने से मुझे पूर्ण रूप से निश्चय हो गया कि हो न हो, यह वही स्थान है, जिसके संबंध में मैंने बहुत कुछ सुना है. मेरे मित्र मेरी ओर ताकने लगे. मैंने संक्षेप में उस खंडहर के विषय में जो कुछ सुना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदी की पहली मौलिक कहानी का निर्णय अभी तक विवादास्पद है. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में हिंदी की प्रारंभिक, आधुनिक, साथ ही मौलिक कहानियों पर विचार करते हुए पं. किशोरी लाल गोस्वामी की 'इंदुमती' (संवत १९५७, सरस्वती), 'गुलबहार' (सं. १९५९), मास्टर भगवानदास, मिरजापुर की 'प्लेग की चुड़ैल' (सं १९५९) के बाद अपनी कहानी 'ग्यारह वर्ष का समय' (सं. १९६०) को भी शामिल किया है. मार्मिकता की दृष्टि से उन्होंने अपनी कहानी को 'इंदुमती' के बाद माना है. आचार्य रामचंद्र शुक्ल की जन्म शताब्दी के उपलक्ष में आयोजित देशव्यापी आयोजनों की शृंखला में 'सारिका' उनकी 'ग्यारह वर्ष का समय' कहानी को पुनर्प्रकाशित कर अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करती है. इससे शुक्लजी के आलोचक और सर्जक के अंतरंग संबंध को समझने में मदद मिलेगी.

था, उनसे कह सुनाया. हम लोगों के चित्त में कौतूहल की उत्पत्ति हुई, उसको निकट से देखने की प्रबल इच्छा ने मार्ग-ज्ञान की व्यग्रता को हृदय से बहर्गित कर दिया. उत्तर की ओर उतरना बड़ा दुष्कर प्रतीत हुआ, क्योंकि जंगली वृक्षों और कंटकमय झाड़ियों से पहाड़ी का वह भाग आच्छादित था. पूर्व की ओर से हम लोग सुगमतापूर्वक नीचे उतरे. यहां से खंडहर लगभग डेढ़ मील का प्रतीत होता था. हम लोगों ने पैरों को उसी ओर मोड़ा. मार्ग में घुटनों तक उगी हुई घास पग-पग पर बाधा उपस्थित करने लगी, किंतु अधिक विलंब तक यह कष्ट हम लोगों को भोगना न पड़ा, क्योंकि आगे फूटे हुए खपरैलों की सिटकियां मिलने लगीं, उधर-इधर गिरी हुई दीवारें और मिट्टी के ढूह प्रत्यक्ष होने लगे. हम लोगों ने जाना कि अब यहीं से खंडहर का आरंभ है. दीवारों की मिट्टी का स्थान क्रमशः ऊंचा होता जाता था, जिस पर से होकर हम लोग निर्भय जा रहे थे. इस निर्भयता के लिए हम लोग चंद्रमा के प्रकाश से भी अनुगृहीत हैं. सम्मुख ही एक देव-मंदिर पर दृष्टि जा पड़ी, जिसका कुछ भाग तो नष्ट हो गया था, किंतु शेष प्रस्तर-विनिर्मित होने के कारण अब तक क्रूर काल के आक्रमण को सहन करता आया था. मंदिर का द्वार ज्यों का त्यों खड़ा था. किवाड़ सट गये थे. भीतर भगवान भवानीपति बैठे निर्जन कैलाश का आनंद ले रहे थे, द्वार पर उनका नंदी भी बैठा था. मैं तो प्रणाम करके वहां से हटा किंतु देखा तो हमारे मित्र बड़े ध्यान से खड़े हो उस मंदिर की ओर देख रहे हैं और मन ही मन कुछ सोच रहे हैं. मैंने मार्ग में भी कई बेर लक्ष्य किया था कि वे कभी-कभी ठिठक जाते और किसी वस्तु को बड़ी स्थिर दृष्टि से देखने लगते. मैं खड़ा हो गया और पुकारकर कहा, "कहो मित्र? क्या है? क्या देख रहे हो?"

मेरी बोली सुनते ही वे झट मेरे पास दौड़ आये और कहा, "कुछ नहीं, यों ही मंदिर देखने लग गया था." मैंने फिर कुछ न पूछा, किंतु अपने मित्र के मुख की ओर देखता जाता था, जिस पर कि विस्मययुक्त एक अद्भुत भाव लक्षित होता था. इस समय खंडहर के मध्य भाग में हम लोग खड़े थे. मेरा हृदय इस स्थान को इस अवस्था में देख विदीर्ण होने लगा. प्रत्येक वस्तु से उदासी बरस रही थी, इस संसार की अनित्यता की सूचना मिल रही थी. इस करुणोत्पादक दृश्य का प्रभाव मेरे हृदय पर किस सीमा तक हुआ, शब्दों द्वारा अनुभव करना असंभव है.

कहीं से सड़े हुए किवाड़ भूमि पर पड़े प्रचंड काल को साष्टांग दंडवत कर रहे हैं. जिन घरों में अपरिचित की परछाईं पड़ने से कुल की मर्यादा भंग होती थी, वे बाहर तक खुले पड़े हैं. रंग-बिरंगी चूड़ियों के टुकड़े इधर-उधर पड़े काल की महिमा गा रहे हैं. मैंने इनमें से एक को हाथ में उठाया, उठाते ही यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि वे कोमल हाथ कहां हैं, जो इन्हें धारण करते थे?

हम लोग अधिक विलंब तक इस अवस्था में न रहने पाये. यह क्या? मधुसूदन, यह कौन-सा दृश्य है? जो कुछ देखा, उससे अवाक् रह गया. कुछ दूर पर एक श्वेत वस्तु इसी खंडहर की ओर आती देख पड़ी. मुझे रोमांच हो आया, शरीर कांपने लगा. मैंने अपने मित्र को उस ओर आकर्षित किया और उंगली उठा के दिखाया, परंतु कहीं कुछ न देख पड़ा. मैं स्थापित मूर्ति की भांति बैठा रहा. पुनः वही दृश्य! अब की बार ज्योत्सना लोक में स्पष्ट रूप में हम लोगों ने देखा कि श्वेत परिच्छेद-धारिणी स्त्री एक जल का पात्र लिये खंडहर के एक पार्श्व से होकर दूसरी ओर वेग से निकल गयी और खंडहरों के बीच फिर न जाने कहां अंतर्धान हो गयी. इस अदृष्टपूर्ण व्यापार को देख मेरे मस्तिष्क में पसीना आ गया और कई प्रकार के भ्रम उत्पन्न होने लगे.

हम दोनों अपने स्थान से उठे और जिस ओर यह स्त्री जाती हुई देख पड़ी थी, उसी ओर चले. अपने चारों ओर प्रत्येक स्थान को भली प्रकार देखते, हम लोग गिरे हुए मकानों के भीतर जा-जा के शृगालों के स्वच्छंद विहार में बाधा डालने लगे. अभी तक कुछ ज्ञात न हुआ. यह बात तो हम लोगों के मन में निश्चय हो गयी थी. हो न हो, वह स्त्री खंडहर के किसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection...

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुप्त भाग में गयी है. गिरी हुई दीवारों की मिट्टी और ईंटों के ढेर से इस समय हम लोग परिवृत्त थे, बाह्य जगत की कोई वस्तु दृष्टि के अंतर्गत न थी. हम लोगों को जान पड़ता था कि किसी दूसरे संसार में खड़े हैं. वास्तव में खंडहर के एक भयानक भाग में इस समय हम लोग खड़े थे, सामने एक बड़ी ईंटों की दीवार दीख पड़ी, जो औरों की अपेक्षा अच्छी दशा में थी. इसमें एक खुला हुआ द्वार था. इसी द्वार से हम दोनों ने इसमें प्रवेश किया. भीतर एक विस्तृत आंगन था, जिसमें बेर और बबूल के पेड़ स्वच्छंदतापूर्वक खड़े उस स्थान को मनुष्य जाति-संबंध से मुक्त सूचित करते थे. इसमें पैर धरते ही मेरे मित्र की दशा कुछ और हो गयी और वे चट बोल उठे, "मित्र, मुझे ऐसा जान पड़ता है कि जैसे मैंने इस स्थान को और कभी देखा हो. यही नहीं कह सकता, कब. प्रत्येक वस्तु यहां की पूर्व परिचित-सी जान पड़ती है." मैं अपने मित्र की ओर ताकने लगा. उन्होंने आगे कुछ न कहा, मेरा चित्त इस स्थान का अनुसंधान करने को मुझे बाध्य करने लगा. इधर-उधर देखा तो एक ओर मिट्टी पड़ते-पड़ते दीवार की ऊंचाई के अर्द्धभाग तक वह पहुंच गयी थी. इस पर से होकर हम दोनों दीवार पर चढ़ गये. दीवार के नीचे दूसरे किनारे में चतुर्दिकवेष्ठित एक कोठरी दिखाई दी, मैं उसमें उतरने का यत्न करने लगा. बड़ी सावधानी से एक उभरी हुई ईंट पर पैर रखकर हम दोनों नीचे उतर गये. यह कोठरी ऊपर से बिलकुल खुली थी, इसलिए चंद्रमा का प्रकाश इसमें बेरोक-टोक आ रहा था. कोठरी के दाहिनी ओर एक द्वार दिखाई दिया, जिसमें एक जीर्ण किवाड़ लगा हुआ था. हम लोगों ने निकट जाकर किवाड़ को पीछे की ओर धीरे से धकेला तो जान पड़ा कि वे भीतर से बंद हैं.

मेरे तो पैर कांपने लगे. पुनः साहस को धारणकर हम लोगों ने किवाड़ के छोटे-छोटे रंध्रों से झांका तो एक प्रशस्त कोठरी दीख पड़ी. एक कोने में मंद-मंद एक प्रदीप जल रहा था, जिसका प्रकाश द्वार तक न पहुंचता था. यदि प्रदीप उसमें न होता तो अंधकार के अतिरिक्त हम लोग और कुछ न देख पाते. हम लोग कुछ काल तक स्थिर दृष्टि से उसी ओर देखते रहे. इतने में एक स्त्री की आकृति देख पड़ी, जो हाथ में कई छोटे पात्र लिये उस कोठरी के प्रकाशित भाग में आयी. अब तो किसी प्रकार का संदेह न रहा. एक बेर इच्छा हुई थी कि किवाड़ खटखटायें, किंतु कई बातों का विचार करके हम लोग ठहर गये. जिस प्रकार से हम लोग कोठरी में आये थे, धीरे-धीरे उसी प्रकार निःशब्द दीवार से होकर फिर आंगन में आये. मेरे मित्र ने कहा, "इसका बोध अवश्य लगाओ कि यह स्त्री कौन है?" अंत में हम दोनों आड़ में, इस आशा से कि कदाचित वह फिर बाहर निकले, बैठे रहे. पौन घंटे के लगभग हम लोग इसी प्रकार बैठे रहे. इतने में यही वस्त्र वसन धारिणी स्त्री आंगन में सहसा आकर खड़ी हो गयी. हम लोगों को यह देखने का समय न मिला कि वह किस ओर से आयी.

उसका अपूर्व सौंदर्य देखकर हम लोग स्तंभित व चकित रह गये. चंद्रिका में उसके सर्वांग की सुंदरता स्पष्ट जान पड़ती थी. गौर वर्ण शरीर किंचित क्षीण और आभूषणों से सर्वथा

शुक्लजी का महत्व

हिंदी साहित्य में शुक्लजी का वही महत्व है, जो उपन्यासकार प्रेमचंद या कवि निराला का. उन्होंने आलोचना के माध्यम से उसी सामंती संस्कृति का विरोध किया, जिसका उपन्यास और कविता के माध्यम से प्रेमचंद और निराला ने. शुक्लजी ने न तो भारत के रूढ़िवाद को स्वीकारा, न पश्चिम के व्यक्तिवाद को. उन्होंने बाह्य जगत और मानव जीवन की वास्तविकता के आधार पर नये साहित्य सिद्धांतों की स्थापना की और उनके आधार पर सामंती साहित्य का विरोध किया और देशभक्ति और जनतंत्र की साहित्यिक परंपरा का समर्थन किया. उनका यह कार्य हर देशप्रेमी और जनवादी लेखक और पाठक के लिए दिलचस्प होना चाहिए. □

▣ डॉ. रामविलास शर्मा

रहित मुख उसका, यद्यपि उस पर उदासीनता और शोक का स्थायी निवास लक्षित होता था, एक अलौकिक प्रशांत कांति से देदीप्यमान हो रहा था. सौम्यता उसके अंग-अंग से प्रदर्शित होती थी. वह साक्षात देवी जान पड़ती थी.

कुछ काल तक किंकर्तव्यविमूढ़ होकर स्तब्ध लोचनों से उसी ओर हम लोग देखते रहे, अंत में हमने अपने को संभाला और उसी अवसर को अपने कार्योपयुक्त विचारा. हम लोग अपने स्थान पर से उठे और तुरंत उस देवीरूपिणी के सम्मुख हुए. वह देखते ही वेग से पीछे हटी. मेरे मित्र ने गिड़गिड़ाकर कहा, "देवी, ढिठाई क्षमा करो. मेरे भ्रमों का निवारण करो." वह स्त्री क्षण भर तक चुप रही, फिर स्निग्ध और गंभीर स्वर से बोली, "तुम कौन हो और क्यों मुझे व्यर्थ कष्ट देते हो?" इसका उत्तर ही क्या था? मेरे मित्र ने फिर विनीत भाव से कहा, "देवी, मुझे बड़ा कौतूहल है, दया करके यहां का सब रहस्य कहो."

इस पर उसने उदास स्वर से कहा, "तुम हमारा परिचय लेके क्या करोगे? इतना जान लो कि मेरे समान अभागिनी इस समय इस पृथ्वी-मंडल में कोई नहीं है."

मेरे मित्र से न रहा गया, हाथ जोड़कर उन्होंने फिर निवेदन किया, "देवि, अपने वृत्तांत से मुझे परिचित करो. इसी हेतु हम लोगों ने इतना साहस किया है. मैं भी तुम्हारे ही समान दुखिया हूं. मेरा इस संसार में कोई नहीं है." मैं अपने मित्र का यह भाव देखकर चकित रह गया.

स्त्री ने करुण-स्वर में कहा, "तुम मेरे नेत्रों के सम्मुख भूला-भुलाया मेरा दुख फिर उपस्थित करने का आग्रह कर रहे हो. अच्छा, बैठो."

मेरे मित्र निकट के एक पत्थर पर बैठ गये. मैं भी उन्हीं के पास जा बैठा. कुछ काल तक सब लोग चुप रहे. अंत में स्त्री बोली, "इसके प्रथम कि मैं अपने वृत्तांत से तुम्हें परिचित करूं, तुम्हें शपथपूर्वक यह प्रतिज्ञा करनी होगी कि तुम्हारे सिवाय यह रहस्य संसार में और किसी के कानों तक न पहुंचे, नहीं तो इस स्थान पर मेरा रहना दुष्कर हो जायेगा, आत्महत्या ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुक्लजी की कथा-आलोचना

कथा साहित्य पर शुक्लजी की टिप्पणियां बहुत संक्षिप्त और अपर्याप्त हैं. कैसे भी विधिवत मूल्यांकन का गौरव उन्हें शायद न दिया जा सकें, लेकिन इनके संदर्भ में जो बात विशेष महत्त्व की है, वह यह कि ये बहुत जिम्मेदारी के साथ की गयी टिप्पणियां हैं, जो अपनी विश्वसनीयता और प्रामाणिकता के कारण प्रभावित करती हैं. संभवतः इसी कारण उपन्यास और उपन्यासकारों के परवर्त्ती मूल्यांकन पर इनका प्रभाव सुस्पष्ट दिखाई देता है. साहित्य के किसी भी इतिहासकार और आलोचक की वैज्ञानिकता और वस्तुपरकता का इससे बड़ा प्रमाण और कुछ नहीं हो सकता कि प्रायः आधी शताब्दी के बाद भी उसकी तीन चौथाई स्थापनाएं झूठी नहीं पड़ी हैं.

▣ मधुरेश

मेरे लिए एकमात्र उपाय शेष रह जायेगा."

हम लोगों के नेत्र गीले हो गये. मेरे मित्र ने कहा, "देवि, मुझसे तुम किसी प्रकार का भय न करो, ईश्वर मेरा साक्षी है." स्त्री ने तब इस प्रकार कहना आरंभ किया, "यह खंडहर जो तुम देखते हो, आज से दस वर्ष पूर्व एक सुंदर ग्राम था. अधिकांश ब्राह्मण-क्षत्रियों की इसमें बस्ती थी. यह घर, जिसमें हम लोग बैठे हैं, चंद्रशेखर मिश्र यानी एक प्रतिष्ठित और कुलीन ब्राह्मण का निवास-स्थान था. घर में उनकी स्त्री और एक पुत्र था, इस पुत्र के सिवाय उन्हें और कोई संतान न थी. आज 11 वर्ष हुए कि मेरा विवाह इसी चंद्रशेखर मिश्र के पुत्र के साथ हुआ था."

इतना सुनते ही मेरे मित्र सहसा चौंक पड़े—'हे परमेश्वर, यह सब स्वप्न है या प्रत्यक्ष?' ये शब्द उनके मुख से निकले ही थे कि उनकी दशा विचित्र होने लगी. उन्होंने अपने को बहुत संभाला और फिर संभलकर बैठे. वह स्त्री उनका यह भाव देखकर विस्मित हुई और उसने पूछा, "क्यों, क्या है?" मेरे मित्र ने विनीत भाव से उत्तर दिया, "कुछ नहीं, यों ही मुझे एक बात का स्मरण आया. कृपा करके आगे कहो."

स्त्री ने फिर कहना आरंभ किया, "मेरे पिता का घर काशी के एक मुहल्ले में था. विवाह के एक वर्ष पश्चात ही इस ग्राम में एक भयानक दुर्घटना उपस्थित हुई. यहीं से मेरे दुर्दमनीय दुःख का जन्म हुआ. संध्या को सब ग्रामीण अपने-अपने कार्य से निश्चित होकर अपने-अपने घरों को लौटे. बालकों का कोलाहल बंद हुआ. निद्रादेवी ने ग्रामीणों के चिंता-शून्य हृदयों में अपना डेरा जमाया. आधी रात से अधिक बीत चुकी थी. कुत्ते भी थोड़ी देर तक भूंककर अंत में चुप हो रहे थे. प्रकृति निस्तब्ध हुई, सहसा ग्राम में कोलाहल मचा और धमाके के कई शब्द हुए. लोग आंख मींजते उठे. चारपाई के नीचे पैर देते हैं तो घुटने भर पानी में खड़े. कोलाहल सुनकर बच्चे भी जगे. एक-दूसरे का नाम ले-लेकर चिल्लाने लगे. अपने-अपने घरों में से लोग निकलकर खड़े हुए. भगवती जाह्नवी को द्वार पर बहते हुए पाया. भयानक विपत्ति. कोई उपाय नहीं. जल का वेग क्रमशः अधिक बढ़ने लगा. पैर कठिनता से ठहरते थे, फिर दृष्टि उठाकर देखा, जल ही जल दिखाई दिया. एक-एक करके सब सामग्रियां बहने लगीं. संयोगवश एक नाव कुछ दूर पर आती देख पड़ी.

"नौका आयी. लोग टूट पड़े और बलपूर्वक चढ़ने का यत्न करने लगे. मल्लाहों ने भारी विपत्ति सम्मुख देखी. नाव पर अधिक बोझ होने के भय से उन्होंने तुरंत अपनी नाव बढ़ा दी. बहुत से लोग रह गये. नौका पवन-गति से गमन करने लगी. नौका दूसरे किनारे पर लगी. लोग उतरे. चंद्रशेखर मिश्र नाव पर से उतरे और अपने पुत्र का नाम लेकर पुकारा. कोई उत्तर न मिला. उन्होंने अपने साथ ही उसे नाव पर चढ़ाया था, किंतु भीड़-भाड़ नाव पर अधिक होने के कारण वह उनसे पृथक हो गया था, मिश्रजी बहुत घबराये और तुरंत नाव लेकर लौटे. देखा, बहुत से लोग रह गये थे, उनसे पूछताछ किया. किसी ने कुछ पता न दिया. निराशा भयंकर रूप धारण करके उनके सामने उपस्थित हुई.

"संध्या का समय था, मेरे पिता दरवाजे पर बैठे थे. सहसा मिश्रजी घबड़ाये हुए आते देख पड़े. उन्होंने आकर आद्योपांत पूर्वोल्लिखित घटना कह सुनाई और तुरंत उन्मत्त की भांति वहां से चल दिये. लोग पुकारते ही रह गये. वे एक क्षण भी वहां न ठहरे. तब से फिर कभी वे दिखाई न दिये. ईश्वर जाने, वे कहां गये. मेरे पिता भी दत्तचित्त होकर अनुसंधान करने लगे. उन्होंने सुना कि ग्राम के बहुत से लोग नाव पर चढ़-चढ़कर इधर-उधर भाग गये हैं. इसलिए उन्हें आशा थी. इस प्रकार ढूंढ़ते ढूंढ़ते कई मास व्यतीत हो गये. अब तक वे समाचार की प्रतीक्षा में थे और उन्हें आशा थी, किंतु अब उन्हें चिंता हुई. चंद्रशेखर मिश्र का भी तब से कहीं कुछ समाचार न मिला. जहां-जहां मिश्रजी का संबंध था, मेरे पिता स्वयं गये, किंतु चारों ओर से निराश लौटे. किसी का कुछ अनुसंधान न लगा. एक वर्ष बीता, दो वष बीते, तीसरा वर्ष आरंभ हुआ. पिता बहुत इधर-उधर दौड़े, अंत में ईश्वर और भाग्य के ऊपर छोड़कर बैठे रहे. तीसरा वर्ष भी व्यतीत हो गया. मेरी अवस्था उस समय चौदह वर्ष की हो चुकी थी, अब तक तो मैं निर्बोध बालिका थी. अब क्रमशः मुझे अपनी वास्तविक दशा का ज्ञान होने लगा. मेरा समय भी अहर्निश इसी चिंता में अब व्यतीत होने लगा. शरीर दिन पर दिन क्षीण होने लगा. मेरे देवतुल्य पिता ने यह बात जानी. वे सदा मेरे दुख भुलाने का यत्न करते रहते थे. अपने पास बिठाकर रामायण आदि की कथा सुनाया करते थे. पिता अब वृद्ध होने लगे, दिवारात्रि की चिंता ने उन्हें और भी वृद्ध बना दिया. घर के समस्त काय-संपादन का भार मेरे बड़े भाई के ऊपर पड़ा. उनकी स्त्री का स्वभाव बड़ा क्रूर था, कुछ दिन तक तो किसी प्रकार चला. अंत में वह मुझसे डाह करने लगी और कष्ट देना प्रारंभ किया. मैं चुपचाप सब सहन करती थी. धीरे-धीरे आश्वास वाक्य के स्थान पर वह तीक्ष्ण वचनों से मेरा चित्त अधिक दुखाने लगी. यदि कभी मैं अपने भाई से निवेदन करती तो वे भी कुछ न बोलते, आनाकानी कर जाते और मेरे पिता की, वृद्धावस्था के कारण, कुछ नहीं चल सकती थी. मेरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुख को समझने वाला यहां कोई नहीं दीखता था. मेरी माता का पहले ही परलोकवास हो चुका था. मुझे अपनी दशा पर बड़ा दुख हुआ. हां, मेरा स्वामी यदि इस समय होता तो क्या मेरी यही दशा होती? पिता के घर क्या इन्हीं वचनों द्वारा मेरा सत्कार किया जाता. यही सब विचार करके मेरा हृदय फटने लगा था. अब क्रमशः मेरा हृदय मेघाच्छन्न होने लगा. मुझे संसार शून्य दिखाई देने लगा. एकांत में बैठकर अपनी अवस्था पर अश्रुवर्षण करती. उसमें भी यह भय लगा रहता कि कहीं भौजाई न पहुंच जाय. एक दिन उसने मुझे इसी अवस्था में पाया तो तुरंत व्यंग्य वचनों द्वारा आश्वासन देने लगी. खैर. शोकार्त्त हृदय अग्निशिखा की भांति प्रज्वलित हो उठा, किंतु मौनावलंबन के सिवाय अन्य उपाय ही क्या था? दिन-दिन मुझे यह दुख असह्य होने लगा. एक रात्रि को मैं उठी, किसी से कुछ न कहा और सूर्योदय के प्रथम ही अपने पिता का गृह मैंने परित्याग किया.

"मैं अब यह नहीं कह सकती कि उस समय मेरा क्या विचार था? मुझे एक बेर अपने पति के स्थान को देखने की लालसा हुई. दुख और शोक से मेरी दशा उन्मत्त की-सी हो गयी थी. संसार में मैंने दृष्टि उठा के देखा तो मुझे और कुछ न दिखाई दिया. केवल चारों ओर दुख? सैकड़ों कठिनाइयां झेलकर अंत में मैं इस स्थान तक आ पहुंची. उस समय मेरी अवस्था केवल 16 वर्ष की थी. मैंने इस स्थान को उस समय भी प्रायः इसी दशा में पाया था. यहां आने पर मुझे कई चिह्न ऐसे मिले, जिनसे मुझे यह निश्चय हो गया कि चंद्रशेखर मिश्र का घर यही है. इस स्थान को देखकर मेरे आर्त्त हृदय पर बड़ा कठोर आघात पहुंचा."

इतना कहते-कहते हृदय के आवेग ने शब्दों को उसके हृदय ही में बंदी कर रक्खा, बाहर प्रगट होने न दिया. क्षणेक पर्यंत वह चुप रही, सिर नीचा किये भूमि की ओर देखती रही. इधर मेरे मित्र की दशा कुछ और ही हो रही थी. लिखित चित्र की भांति बैठ वे एकटक ताक रहे थे, इंद्रियां अपना कार्य उस समय भूल गयी थीं. स्त्री ने फिर कहना आरंभ किया, "इस स्थान को देख मेरा चित्त दग्ध बहुत हुआ. हां, यदि ईश्वर चाहता तो किसी दिन मैं इसी गृह की स्वामिनी होती. आज ईश्वर ने मुझको इस अवस्था में दिखलाया. उसके आगे किसका वश है? अनुसंधान करने पर मुझे दो कोठरियां मिलीं, जो सर्व प्रकार से रक्षित और मनुष्य की दृष्टि से दुर्भेद्य थीं. लगभग चारों ओर मिट्टी पड़ जाने के कारण किसी को उनकी स्थिति का संदेह नहीं हो सकता था. मुझे बहुत सी सामग्रियां भी इनमें प्राप्त हुईं, जो मेरी तुच्छ आवश्यकताओं के अनुसार बहुत थीं. मुझे यह निर्जन स्थान अपने पिता के कष्टागार से प्रियतर प्रतीत हुआ. यहीं मेरे पति के बाल्यावस्था के दिन व्यतीत हुए थे. यही स्थान मुझे प्रिय है. यहीं मैं अपने दुखमय जीवन का शेष भाग उसी करुणामय जगदीश्वर की, जिसने मुझे इस अवस्था में डाला, आराधना में बिताऊंगी. यही विचार मैंने स्थिर किया. ईश्वर को मैंने धन्यवाद दिया, जिसने ऐसा उपयुक्त स्थान मेरे लिए ढूंढ़कर निकाला. कदाचित तुम पूछोगे कि इस अभागिनी ने अपने लिए इस प्रकार का जीवन क्यों उपयुक्त विचारा? तो उसका उत्तर है कि यह दुष्ट संसार भांति-भांति की वासनाओं से पूर्ण है, जो मनुष्य को उसके सत्यपथ से विचलित कर देती हैं, कुमार्गी लोगों के अत्याचार से वंचित रहना भी कठिन कार्य है,"

सौंदर्य और कवि

सच्चे कवि राजाओं की सवारी, ऐश्वर्य की सामग्री में ही सौंदर्य नहीं ढूंढ़ा करते. वे फूल के झोंपड़ों, धूल-मिट्टी में सने किसानों, बच्चों के मुंह में चारा डालते हुए पक्षियों, दौड़ते हुए कुत्तों और चोरी करती हुई बिल्लियों में कभी-कभी ऐसे सौंदर्य का दर्शन करते हैं, जिसकी छाया भी महलों और दरबारों तक नहीं पहुंच पाती. □

▣ आचार्य रामचंद्र शुक्ल

इतना कह के वह स्त्री ठहर गयी. मेरे मित्र की ओर उसने देखा. वे कुछ मिनट तक काष्ठ-पुतलिका की भांति बैठे रहे. अंत में एक लंबी ठंडी सांस भर के उन्होंने कहा, "ईश्वर, यह स्वप्न है या प्रत्यक्ष?" स्त्री उनका यह भाव देख-देखकर विस्मित हो रही थी. उसने पूछा, "क्यों, कैसा चित्त है?" मेरे मित्र ने अपने को संभाला और उत्तर दिया, "तुम्हारी कथा का प्रभाव मेरे चित्त पर बहुत हुआ है, कृपा करके आगे कहो." स्त्री ने कहा, "मुझे अब कुछ कहना शेष नहीं है. पांच वर्ष मुझे इस स्थान पर आये हुए, संसार में किसी मनुष्य को आज तक यह प्रकट नहीं हुआ. यहां प्रेतों के भय से कोई पदार्पण नहीं करता. इससे मुझे अपने को गोपन रखने में विशेष कठिनता नहीं पड़ती. संयोगवश रात्रि से किसी की दृष्टि मुझ पर पड़ी भी तो चुड़ैल के भ्रम से मेरे निकट तक आने का किसी को साहस न हुआ. यह आज प्रथम ऐसा संयोग उपस्थित हुआ है, तुम्हारे साहस को मैं सराहती हूं और प्रार्थना करती हूं कि तुम अपनी शपथ पर दृढ़ रहोगे. संसार में अब मैं प्रकट होना नहीं चाहती, प्रकट होने से मेरी बड़ी दुर्दशा होगी. मैं यहीं अपने पति के स्थान पर अपना जीवन शेष करना चाहती हूं. इस संसार में अब मैं बहुत दिन न रहूंगी."

मैंने देखा, मेरे मित्र का चित्त भीतर ही भीतर आकुल और संतप्त हो रहा था? हृदय का वेग रोककर उन्होंने प्रश्न किया, "क्यों, तुम्हें अपने पति का कुछ स्मरण है?"

स्त्री के नेत्रों से अनर्गल वारिधारा प्रवाहित हुई. बड़ी कठिनतापूर्वक उसने उत्तर दिया, "मैं उस समय बालिका थी. विवाह के समय मैंने उन्हें देखा था. वह मूर्ति यद्यपि मेरे हृदय-मंदिर में विद्यमान है, प्रचंडकाल भी उसको वहां से हटाने में असमर्थ है."

मेरे मित्र ने कहा, "देवी, तुमने बहुत कुछ रहस्य प्रकट किया, जो कुछ शेष है उसका वर्णन कर अब मैं इस कथा की पूर्ति करता हूं."

स्त्री व्याकुल लोचनों से मेरे मित्र की ओर निहारने लगी, मैं भी आश्चर्य से उन्हीं की ओर देखने लगा. उन्होंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा, "इस आख्यायिका से यही ज्ञात होना शेष है कि चंद्रशेखर मिश्र के पुत्र की क्या दशा हुई. चंद्रशेखर मिश्र और उनकी पत्नी क्या हुए. सुनो, नाव पर मिश्रजी ने अपने पुत्र को अपने साथ ही बैठाया. नाव पर भीड़ अधिक हो जाने के कारण वह उनसे पृथक हो गया. उन्होंने समझा कि वह नाव पर ही है, कोई चिंता नहीं. इधर मनुष्यों की धक्कामुक्की से वह लड़का नाव पर से नीचे जा गिरा. ठीक उसी समय मल्लाह ने नाव खोल दी. उसने कई बेर अपने पिता को पुकारा, किंतु लोगों के कोलाहल में उन्हें कुछ सुनाई न दिया. नाव चली गयी. बालक वहीं खड़ा रह गया. और लोग किसी प्रकार अपना अपना प्राण ले के इधर-उधर भागे. नीचे भयानक जल प्रवाह, ऊपर अनंत आकाश. लड़के ने एक छप्पर को बहते हुए अपनी ओर आते देखा, तुरंत वह उसी पर बैठ गया. इतने में जल का एक बहुत ऊंचा प्रबल झोंका आया. छप्पर लड़के सहित शीघ्र गति से बहने लगा. वह चुपचाप मूर्तिवत उसी पर बैठा रहा. उसे यह ध्यान नहीं कि इस प्रकार कै दिन तक वह बहता गया. वह भय और दुविधा से संज्ञाहीन हो गया था. संयोगवश एक व्यापारी की नाव, जिस पर रुई लदी थी, पूरब की ओर जा रही थी. नौका का स्वामी भी बजरे पर था. उसकी दृष्टि उस लड़के पर पड़ी. वह उसे नाव पर ले गया. लड़के की अवस्था उस समय मृतप्राय थी. अनेक यत्न के उपरांत वह होश में लाया गया. उस सज्जन ने लड़के की नाव पर बड़ी सेवा की. नौका बराबर चलती रही, बीच में कहीं न रुकी, कई दिनों के उपरांत कलकत्ते पहुंची.

वह बंगाली सज्जन उस लड़के को अपने घर पर ले गया और उसे उसने अपने परिवार में सम्मिलित किया. बालक ने अपने माता-पिता को देखने की इच्छा प्रकट की. उसने उसे बहुत समझाया और शीघ्र अनुसंधान करने का वचन दिया. लड़का चुप हो रहा.

इसी प्रकार कई मास व्यतीत हो गये. क्रमशः वह अपने पास के लोगों में हिल-मिल गया. बंगाली महाशय के एक पुत्र था. दोनों में भ्रात-स्नेह स्थापित हो गया. वह सज्जन उस लड़के के भावी हित की चेष्टा में तत्पर हुआ. ईस्ट इंडिया कंपनी के स्थापित किये हुए एक अंग्रेजी स्कूल में अपने पुत्र के साथ-साथ उसे भी वह शिक्षा देने लगा. क्रमशः उसे अपने घर का ध्यान कम होने लगा. वह दत्तचित्त होकर शिक्षा में अपना सारा समय देने लगा. इसी बीच कई वर्ष व्यतीत हो गये. उसके चित्त में अब अन्य प्रकार के विचारों ने निवास किया. अब पूर्व परिचित लोगों के ध्यान के लिए उसके मन में कम कम खयाल शेष रहा. मनुष्य का स्वभाव ही इस प्रकार का है. नौ वर्ष का समय निकल गया.

इसी बीच में एक बड़ी चित्ताकर्षक घटना उपस्थित हुई. बंगदेशी सज्जन के उस पुत्र का विवाह हुआ. चंद्रशेखर का पुत्र भी उस समय वहां उपस्थित था. उसने सब देखा, दीर्घकाल की निद्रा भंग हुई. सहसा उसे ध्यान हो आया, मेरा विवाह भी हुआ है, अवश्य हुआ है. उसे अपने विवाह का बारंबार ध्यान आने लगा. अपनी पाणिग्रहीता भार्या का भी उसे स्मरण हुआ.

'चिंतामणि' का तीसरा भाग

बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में हिंदी साहित्य को अपने चिंतन और सृजन से दृढ़ आधार प्रदान करनेवाले आचार्य रामचंद्र शुक्ल की प्रसिद्ध कृतियां हैं —हिंदी साहित्य का इतिहास, तुलसीदास, सूरदास, रसमीमांसा, 'चिंतामणि 1,2' डॉ. नामवर सिंह ने शुक्ल जी के 21 निबंध और खोज निकाले, जिसका सुखद परिणाम है 'चिंतामणि' का तीसरा भाग (संपादक : डॉ. नामवर सिंह, प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, 8 नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-110002) आचार्य शुक्ल के इस ग्रंथ में पाठक उनके द्वारा अनूदित कृति 'विश्व प्रपंच' में लिखी गयी इसकी बहुचर्चित भूमिका (संदर्भ : 'सारिका' के इसी अंक में पृष्ठ 69 पर प्रकाशित मुद्राराक्षस का लेख) भी पढ़ सकते हैं. कविता क्या है, उपन्यास, क्षात्रधर्म का सौंदर्य, कविता की परख तथा हिंदी और हिंदुस्तानी जैसे महत्त्वपूर्ण निबंधों के कारण शुक्लजी की यह कृति हिंदी साहित्य की अमूल्य धरोहर साबित होगी.

युवक का चित्त अधिक डावांडोल होने लगा. एक दिन उसने उस देवतुल्य सज्जन पुरुष से अपने चित्त की अवस्था प्रकट की और बहुत विनय के साथ विदा मांगी. आज्ञा पाकर उसने स्वदेश की ओर यात्रा की. देश में आने पर उसे विदित हुआ कि ग्राम में अब कोई नहीं है. उसने लोगों से अपने पिता-माता के विषय में पूछताछ की. कुछ लोगों ने कहा कि थोड़े दिन हुए, वे दोनों इस नगर में थे, और अब वे तीर्थ-स्थानों में देशाटन कर रहे हैं. वह अपनी धर्मपत्नी के दर्शनों की अभिलाषा से सीधे काशी गया. वहां तुम्हारे पिता के घर का वह अनुसंधान करने लगा. बहुत दिनों पश्चात तुम्हारे ज्येष्ठ भ्राता से उसका साक्षात हुआ, जिससे तुम्हारे संसार से सहसा लोप हो जाने की बात ज्ञात हुई. वह निराश होकर संसार में घूमने लगा. कदाचित तुम पूछोगी कि इस समय अब वह कहां है? यह वही अभागा मनुष्य तुम्हारे सम्मुख बैठा है."

हम दोनों के शरीर में बिजली-सी दौड़ गयी. वह स्त्री भूमि पर गिरने लगी. मेरे मित्र ने दौड़कर उसको संभाला. वह किसी प्रकार उन्हीं के सहारे बैठी. कुछ क्षण के उपरांत उसने बहुत धीमे स्वर से मेरे मित्र से कहा, "अपना हाथ दिखाओ." उन्होंने चट अपना हाथ फैला दिया, जिस पर एक काला तिल दिखाई दिया. स्त्री कुछ काल तक उसी की ओर देखती रही, फिर मुख ढांपकर सिर नीचा करके बैठ रही. लज्जा का प्रवेश हुआ, क्योंकि यह एक हिंदू-रमणी का उसके पति के साथ प्रथम संयोग था.

आज इतने दिनों के उपरांत मेरे मित्र का गुप्त-रहस्य प्रकाशित हुआ. उस रात्रि को मैं अपने मित्र का खंडहर में अतिथि रहा. सवेरा होते ही हम सब लोग प्रसन्नचित्त नगर में आये. □

● प्रस्तुति : मूलचंद गौतम

CC-0. In Public Domain.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

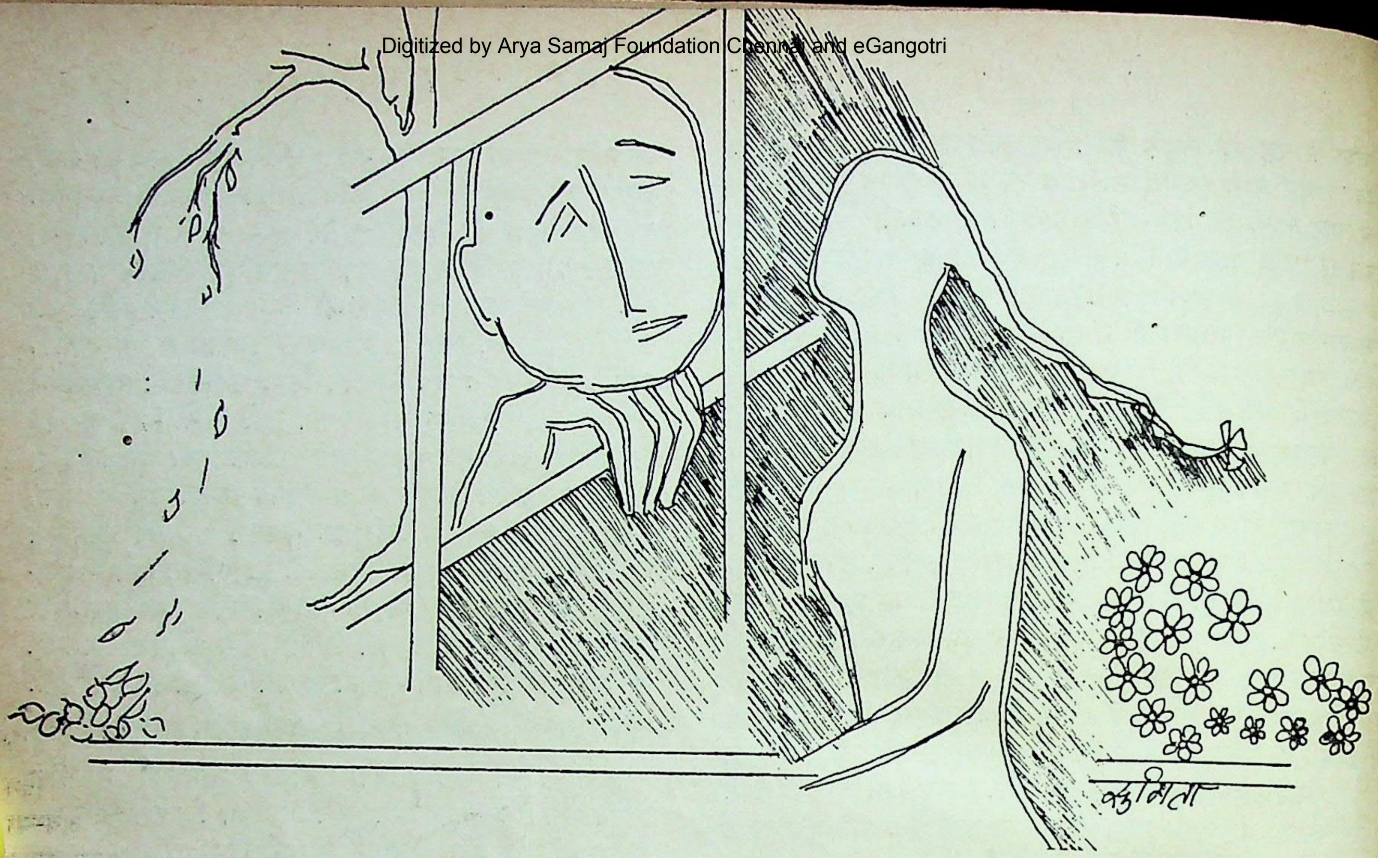

खामियाजा

• राकेश वत्स

"पता नहीं कहां मर गया कम्बख्त!" . . .भुनभुनाकर डॉ. वर्मा ने बाजुओं की पूरी ताकत लगाकर उठने की कोशिश की ताकि फ्रिज तक पहुंचकर एक गिलास ठंडा पानी पी सकें. पर वे सफल नहीं हो सके. उलटे दम और भी ज्यादा घुटने लगा. सांस फूल आई और खांसी के मारे बुरा हाल हो गया.

बमुश्किल थोड़ा शांत हुए तो सिरहाना छाती के नीचे रख औंधे मुंह लेट गये. पर ध्यान उनका अब भी बाहर का फाटक खुलने की आवाज की तरफ ही रहा.

नौकर की बेपरवाहियों या बुढ़ापे की अलामतों से ज्यादा ही परेशानकुन हो जाने के वक्त उन्हें आमतौर पर कनेडा में बैठी सुनीता की याद सताती है. उस सुनीता की, जिसे उन्होंने बेटी के तौर पर गोद लिया था और ऐसा करने के चार वर्ष बाद ही शादी के बंधन में बांधकर विदा करने के लिए मजबूर होना पड़ा था.

ये चार वर्ष उनके लिए अपनों और परायों की तीखी नुक्ताचीनी का शिकार होने के वर्ष थे. सभी की जबान पर एक ही सवाल था कि आखिर जवान लड़की को और वह भी अमीरजादी को गोद लेने की क्या तुक है? गोद ही लेना था तो बुढ़ापे के सहारे किसी गरीब लड़के को लेते. बहुत से विरोधियों ने तो उनके चरित्र पर भी तरह-तरह के लांछन लगाए थे. पर उन्होंने उन सब को जूती की नोक पर रखा था. अपनी भव्य कोठी में बेटी को साथ लेकर ठाठ के साथ रहे थे और जब बेटी ने एम. ए. पास करते ही शादी करने की इच्छा जाहिर की तब शादी भी उन्होंने ठाठ के साथ ही की थी.

आज सुनीता की याद उन्हें कुछ ज्यादा ही सता रही है. उसके साथ गुजरे दिनों का एक-एक लमहा उनकी आंखों के सामने धुएं के बादलों की तरह तैर रहा है. उनको यह विचार रह-रहकर सता रहा है कि लोगों की बातों के दबाव में आकर उनसे एक भारी भूल हो गई. सुनीता की शादी उन्हें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदेश में रह रहे लड़के के साथ करने की बजाय किसी लोकल या आसपास के लड़के के साथ करनी चाहिए थी. जब मन होता तो वे झट से जाकर मिल तो लेते, इस तरह तरसना तो न पड़ता शक्ल तक देखने के लिए.

हां ऽऽऽ वे अक्सर भूलें ही करते रहे हैं. गलतियों और कमजोरियों का पुतला हैं वे. सहसा उन्हें उन दिनों की याद आयी जब उन्होंने जूतियां घिसाऊ संघर्ष के बाद पहली नौकरी हासिल की थी. लंबे अरसे की फाकामस्ती के बाद सही ढंग से रोटी नसीब होनी शुरू हुई थी और गरीब मां-बाप के साथ-साथ अमीर दोस्तों की नजरों में भी थोड़ी बुक्कत बनी थी.

उनके सामने उन्हीं दिनों का एक जगमगाता टुकड़ा आ गया. एक खूबसूरत भरा-भरा-सा चेहरा. चेहरे पर बड़ी-बड़ी आंखें. और आंखों में पिघले हुए शीशों की मानिंद दो मोटे-मोटे आंसू. सहसा उनके कानों में एक समर्पित आवाज फुसफुसा उठी—"चलो, यहां से कहीं दूर निकल चलते हैं! किसी दूसरे शहर में जाकर शादी कर लेंगे! देखो, मेरी तरफ तो देखो!". . .

"कैसी बहकी-बहकी बातें कर रही हो आज!"

"बहकी-बहकी?"

"हां, बहकी-बहकी! जब तुम्हारे मां-बाप ने मजहब के नाम पर इस रिश्ते को पूरी तरह से रिजेक्ट कर दिया है तो भगोड़े बनकर गृहस्थी की नींव रखना ठीक होगा क्या?"

"क्यों, इसमें गलत होने की कौन-सी बात है?"

"ठीक है ही क्या?"

"सब कुछ ठीक ही तो है. लड़की को एक न एक दिन. . ."

"लेकिन इस तरह भगोड़े बनकर नहीं!"

"और कोई रास्ता भी तो नहीं है!"

"न सही, प्यार बिना शादी के भी जिंदा रह सकता है."

"यह तुम सोच-समझकर बोल रहे हो क्या?"

इसके जवाब में उनके मुंह से शब्द नहीं फूटा था.

"अच्छा तो फिर अलविदा!" संदीप कौर ने चुन्नी के लड़ से आंखें साफ की थीं और फिर छोटे-छोटे कदम रखती हुई उनके कमरे, कमरे के बाहर के लान और फिर दूर तक दिखाई देती सड़क पर से होती हुई उनकी आंखों से ओझल हो गयी थी. उस वक्त उनके अंदर जैसे कोई पुकारता ही रह गया था—सुनो! सिंदो सुनो!! सुनो तो!!! लेकिन उनके होंठ उसी तरह एक-दूसरे के साथ चिपके रह गये थे. मन की आवाज का होंठों ने साथ नहीं दिया था.

डॉ. वर्मा के मुख से एक नमीदार लंबी सांस निकली. उन्होंने संपुटों से आंखों के कोर साफ करके करवट बदली. करवट बदलते ही उन्हें फिर घुटन महसूस होने लगी. यह घुटन ब्लडप्रेशर की वजह से है, गैस की वजह से या दिल की कमजोरी की वजह से?. . . उनका ध्यान अतीत से कटकर अपने वर्तमान पर आ टिका. उन्होंने पहले पेट पर हाथ रखा फिर दिल पर. उसके बाद वे कनपटियों के आसपास की नसों को संपुटों से टटोल-टटोलकर देखने लगे. इसके बाद उनका हाथ पैरों पर चला गया. उन्हें सोजिश कुछ उतरी हुई लगी. उन्होंने एक पैर थोड़ा ऊपर उठाकर देखा. सचमुच में सोजिश काफी कम थी. उनका विश्वास पक्का होने लगा कि देसी दवाइयां उन पर असर कर रही हैं. उन्होंने इन दवाइयों के पक्ष में तर्क ढूंढने की कोशिश की. उनके हाथ लगा कि ये दवाइयां इस देश के क्लाइमेट के मुताबिक बनकर तैयार ई हैं. यहां की मिट्टी और बदलती रहनेवाली ऋतुओं में पले शरीरों के लिए ये ही ज्यादा मुफीद साबित हो सकती हैं. . . उनका मन यकीन करने को ललचा उठा कि वे बहुत जल्द अच्छे हो जायेंगे और पहले की ही तरह जिंदगी के जुलूस में सक्रिय रूप से भाग ले सकेंगे.

इसी समय बाहर का फाटक खुलने की आवाज सुनाई दी और ऐसा होते ही उनकी प्यास फिर जाग उठी, लेकिन नौकर की बजाय कोई और ही था जो बिजली न होने की वजह से घंटी के बटन को कई बार दबाने के बाद अब आवाजें लगाने लगा था—"डॉ. साहब!. . . डॉ. साहब!!"

वे कुछ देर तो चुप रहकर सोचते रहे—कौन होगा? फिर तुरंत निर्णय लिया कि कोई भी हो बिना कोई जवाब पाये जायेगा थोड़े ही! उनके मुंह से निकल गया, "कौन है! अंदर ही चले आइए!"

दो पल बाद ही महिंदर सिंह सतश्रीअकाल की मुद्रा में उनके सामने खड़ा था. "कहिए, अब आप जी दी तबीयत कैसी है?"

डॉ. साहब ने उसके सवाल का जबाव न देकर उलटे उसी से सवाल कर लिया, "कहो, कैसे आना हुआ?"

"रजनी ने जानना चाहेया है कि हुन आप जी दी तबीयत कैसी है?"

"रजनी ने जानना चाहा है?"

"जी नहीं, मैं खुद भी. . ."

डॉ. वर्मा कुछ पल चुप रहे. फिर उन्हें इस विचार ने कचोटा कि पता नहीं बिना दांतों के उनका मुख इस सरदार को कैसा लग रहा होगा? पर उन्होंने दांत उठाकर उसके सामने लगाना ठीक नहीं समझा. कड़वी-सी आवाज में सवाल किया, "रजनी खुद कहां है?"

"बड़े हस्पताल में पड़ी है. दो दिन पहले उसके पेट की रसौली का आप्रेशन हुआ है."

—'कहां हैं वे चेहरे? आखिर कहां चले गये सब-के-सब? उपहार भेंट करने वाले चेहरे, झुककर सलाम करने वाले चेहरे, चापलूसी की भाषा बोलने वाले चेहरे, सब के सब. . .?' बस इसी मोर्चे पर वे अपने दुश्मनों से शिकस्त खा गये? क्या उसी का, उसी आदर्शवाद का खामियाजा भुगत रहे हैं वे आज. . .? वृद्धावस्था के अकेलेपन में कैद एक अतीतजीवी प्रबुद्ध वृद्ध की कथा—

CC-0. In Public Domain

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप्रेशन का नाम सुनते ही डॉ. वर्मा की धुंधली नजर महिंदर सिंह के दहकते चेहरे से उतर फर्श पर जा बिछी. वे याद करने लगे कि रजनी की तस्वीर शीशे वाले कार्नस से हटाकर उन्होंने कहां रख दी है? उन्हें शायद याद आया कि उस तस्वीर को तो उन्होंने आग की भेंट कर दिया था और उसकी जगह फ्रेम में अपनी जवानी के दिनों में बनवाई रंगीन तस्वीर जड़ दी थी.

उन्हें याद आया कि उन्होंने रजनी को समझाने की लाख कोशिश की थी कि महिंदर उस जैसी पढ़ी-लिखी और टेलेंटिड लड़की के काबिल लड़का नहीं है. दूसरे, एक धर्म की लड़की दूसरे धर्म के परिवार में कभी सम्मान नहीं पा सकती. उन्होंने यकीन दिलाया था कि वह एक-दो साल रुके, कोई अच्छा-सा लड़का देखकर वे खुद उसकी शादी का इंतजाम कर देंगे. पर रजनी ने उनकी एक नहीं सुनी थी. उसका तर्क था कि वह उसी से शादी करना चाहती है जिससे उसका लव अफेयर है. महिंदर अब और ज्यादा इंतजार नहीं कर सकता. उन्होंने थोड़ा गुस्सा दिखाया था तो वह घायल शेरनी की तरह बिफर उठी थी, "आपको तो सिर्फ अपनी फिक्र है! किसी दूसरे की जिंदगी बिगड़े या संवरे आपको इससे कोई मतलब नहीं. पहले ही मैं ओवरएज हो चुकी हूं. दो साल बाद कौन करेगा मुझसे शादी? आप करेंगे? बोलो करेंगे आप?"

लेकिन साठ साल के बूढ़े वे तीस साल की लड़की के साथ कैसे कर सकते थे शादी! कैसा भद्दा मजाक किया था उसने. उनके होंठ इस बार भी आपस में चिपककर रह गए थे. रजनी भी काठ की एड़ियां बजाती हुई निकल गयी थी. लेकिन संदीप की तरह शांत हवा के झोंके की तरह नहीं, तेज आंधी की तरह. और चार दिन बाद ही उसने महिंदर के साथ कोर्ट में सिविल मैरिज रचा ली थी.

उनका मन हुआ कि वे सामने खड़े रजनी के पति को डपटकर कहें कि चले जाओ यहां से! दुबारा इस कोठी में कदम रखा तो मुझसे बुरा कोई नहीं होगा! लेकिन उनकी जबान से जो शब्द निकले उनका मतलब यह नहीं था बल्कि इससे बिल्कुल बरअक्स था—"तुम्हें एक तकलीफ देना चाहता हूं!"

"हां, हां कहिये!" महिंदर सिंह दो कदम आगे बढ़ आया. उसे भी अपना असली रूप डॉ. वर्मा के सामने रखने का अवसर ही नहीं मिला था.

"उस सामने के कमरे में फ्रिज पड़ा है, उसमें से मुझे एक गिलास पानी लाकर पिला दो!"

महिंदर सिंह ने खुशी-खुशी पानी लाकर पिला दिया.

"एक गिलास और!"

महिंदर सिंह ने धार्मिक छबील वर दायें बाजू पर बायां हाथ रखकर श्रद्धापूर्वक लस्सी पिलानेवालों की तरह बोतल से दूसरा गिलास भी भर दिया.

अब डॉ. वर्मा ने तृप्ति की सांस ली और अपनी पीठ सिरहाने के साथ टेककर तनिक सीधे होकर बैठ गये. उनके मन में आया कि वे रजनी के बारे में पूछें. लेकिन क्यों पूछें! जब बात ही खत्म हो गई तो फिर पूछने का फायदा? क्या कुछ नहीं दिया था उन्होंने रजनी को! कोठी तो खैर सुनीता के नाम है, अपना ढेर सारा पैसा उसके नाम करने की सोची थी उन्होंने अपने मन में. बदले में सिर्फ इतना-सा चाहा था कि वह उन्हें अपने गृहस्थी के बिखर जाने का दुःख भुलाने में थोड़ी मदद करे. तकलीफ में सहारा दे.

सुनीता के साथ बिताए दिनों का सुख उन दिनों उनसे भुलाये नहीं भूल रहा था. उसके विदेश के लिए विदा होते ही उन्हें लगा था कि उनका सुख-चैन भी उसी के साथ विदेश विदा हो गया है. घर की हर चीज में उन्हें सुनीता की तस्वीर दिखाई देती थी. दीवारों में से उसके कहकहे फूटते दिखाई देते रहते थे. "बस आप भी कमाल के आदमी हैं"... "क्या चीज बनाया है खुदा ने आपको"... "अगर मैं आप की हम उम्र होती तो अल्ला कसम आपसे शादी बना लेती"... "देखिए इस तरह आंखें मत दिखाइये आप हमें, जब हम नहीं रहेंगे तो इन्हीं आंखों से आंसू बहाएंगे जार-जार"... जैसे सैकड़ों दिलकश वाक्य आज भी उनके जहन पर उसी तरह से ताजा हैं जैसे उसके जिंदगी में प्रवेश पाने के दिनों में थे. क्या कमाल की लड़की थी वह. चेहरा बिलकुल संदीप कौर जैसा... और आंखें भी बिलकुल उसी जैसी बड़ी-बड़ी. चलती थी तो पीछे से ऐसे लगती थी जैसे हू-ब-हू संदीप कौर चली जा रही है.. पता नहीं अब संदीप कौर कहां होगी?.. क्या पता होगी भी या नहीं भी होगी...

कुछ देर वे सूनी दीवार पर टकटकी लगाए अतीत की खुशबुओं और बदबुओं के साथ जूझते रहे. फिर उन्होंने मन पक्का किया कि वे जिस तरह भी हो संदीप कौर का पता लगाएंगे और उससे मिलकर कहेंगे—मुझे मुआफ कर दो सिंदो! जो ज्यादती मैंने तुम्हारे साथ की थी उसका बदला मैं सूद के साथ भुगत रहा हूं.

लघुकथा

मां

■ ज्ञानप्रकाश विवेक

रोज-रोज की पति की मारपीट, उपेक्षा, तिरस्कार से तंग आकर उसने सोचा—'इस जिंदगी से क्या मौत अच्छी नहीं?'

दरवाजा बंद किया. पंखे के हुक में रस्सी बांधी. फंदा तैयार किया. फंदे को गले में डालते हुए वह सोचने लगी—'बस कुछ ही मिनटों का तड़पना और फिर उम्रभर के लिए इस नारकीय जीवन से छुटकारा.'

पैरों के नीचे पड़े स्टूल को हटा ही रही थी कि दरवाजे पर दस्तक हुई, "मम्मी, दरवाजा खोलो! मम्मी दरवाजा खोलो न, मैं पंकज हूं."

'ओह! मेरा पंकज! मां के बिना उसकी कैसी हालत हो जायेगी? क्या शराबी बाप उसे खुश रख सकेगा?'

झटपट उसने पंखे से रस्सी खोली. दरवाजा खोलकर पंकज को ऐसे प्यार किया जैसे मुद्दत बाद मिली हो. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महिंदर सिंह चला गया. डॉ. वर्मा ने बाहर का फाटक खुलने और बंद होने की आवाजें सुनीं और फिर निढाल होकर पहले की,तरह पसर गए. लेकिन अब फिर वही गहरा सूनापन. . . और उस सूनेपन के बीच उभरते सैकड़ों जनाना और मर्दाना चेहरे. ऐसे चेहरे जिनके साथ उनका उन दिनों वास्ता पड़ा था जिन् दिनों वे कुर्सी की ताकत के मालिक थे. बहुत कुछ संवार और बिगाड़ देने के बसीले थे उनके पास. लेकिन आज इस निहत्थे की हालत में किसी एक चेहरे का भी कहीं कुछ अतापता नहीं था.

'कहां हैं वे चेहरे? आखिर कहां चले गये सब-के-सब?'.. उन्होंने अपने आप से सवाल किया. 'उपहार भेंट करनेवाले चेहरे, झुककर सलाम करनेवाले चेहरे, चापलूसी की भाषा बोलनेवाले चेहरे, सब के सब.'. . .

'मतलब था निकल गया तुमसे चेहरों का और चेहरों से तुम्हारा.' उनके आप ने उन्हें जवाब दिया. 'क्या तुमने बिना किसी मतलब के उन चेहरों को याद किया था?. . . पानी का गिलास तक भी मतलब से ही पिलाया था तुमने उन चेहरों को. फिर बिना मतलब के वे चेहरे तुम्हें क्यों याद करें? अब पेड़ पर फल कहां हैं जो पंछी डाल पर उतरेंगे?'

उन्हें लगा कि उनका आप सच बोल रहा है. एकला चालो रे के विश्वास ने उन्हें इस हद तक अहमन्यता से भर दिया था कि किसी को कुछ गिना ही नहीं था. किसी ने एक पैसे का नुकसान पहुंचाया, तो जब तक उसे एक रुपये का नुकसान नहीं पहुंचा दिया उन्हें चैन नहीं मिला था. हां ऽ ऽ ऽचैन नहीं मिला था. तब फिर दोष किसका है?. . . किसका है दोष?. . . सारा दोष उन्हीं का है. . . हां ऽ ऽ ऽ उन्हीं का है. उनके मुख से जलती हुई सांस का गुब्बारा फूटा और वे और भी अधिक ढीले पड़ गए.

अब उनके सामने उन लोगों के चेहरे थे जो उनके दुश्मन थे और सारी जिंदगी दुश्मन ही रहे. बहुत-से दुनिया से कूच कर गये और बहुत-से उन्हीं की तरह ऊंचे-ऊंचे ओहदों से रिटायर होकर अपने-अपने बुढ़ापे के साथ लड़ रहे हैं. लेकिन उन सब की भरपूर गृहस्थियां हैं—बाल बच्चे हैं उन सबके. बस इसी मोर्चे पर वे अपने दुश्मनों से शिकस्त खा गये. अपनी एक छोटी-सी बेवकूफी. . . छोटी-सी गलती या थोथे आदर्शवाद के कारण.. .

अगर वे अपना धर्म बदल लेते तो उनका क्या बिगड़ जाता?. . . आज वे किस धर्म को मानते हैं भला?. . . रोजगार का क्या था, कहीं न कहीं तो मिल ही जाता. बहुत बड़ी भूल हो गई है उनसे. बहुत बड़ी बलंडर. नहीं तो आज उनके भी बेटे-बेटियां होते. बेटियां अपने घर चली जातीं पर बेटे और उनकी बहुएं उनके आसपास मंडराते रहते. बड़ा सकून मिलता उनकी ठंडी छाया में. दुःख-सुख के साथी होते. इस तरह की प्यास में तो न सुलगना पड़ता. लेकिन अब क्या हो सकता है? अब कू ऽ ऽ ऽ छ नहीं हो सकता.

उन्हें फिर संदीप कौर की याद हो आई—"अच्छा फिर अलविदा! ". . . लगा कि कोई गैबी हाथ उनके कलेजे तक पहुंचकर उनके अंदर से कुछ निकालने की कोशिश कर रहा है. उनके मुंह से एक दर्दीली कराह फूट पड़ी—"हाय मैं गया! "... थोड़ा संभले तो उन्होंने अपने सूख रहे मुंह को खाना खाने की तरह चप-चप चलाकर तर किया. उन्हें लगा कि प्यास उनके गले में फिर जाग उठी है. दिल की जगह आग का गोला-सा धधक रहा है.

बाहर फाटक खुलने की आवाज सुनाई दी तो वे संभले. होठों में ही फुसफुसाया—'लो आ गया कमीना! इस जैसा बेवकूफ और कामचोर नौकर मैंने पूरी जिंदगी में कोई दूसरा नहीं देखा.' वे अपने आप को नौकर पर बरसने और उसके साथ सख्ती से पेश आने के लिए तैयार करने लगे. . .

लेकिन जब तक नौकर लाया हुआ सामान अपनी-अपनी जगह पर संभालकर उनके सामने आया तब तक सख्ती से पेश आने का उनका विचार बदल चुका था. उनकी समझ जाग उठी थी कि अगर बिरजा उन्हें छोड़कर चला गया तो दूसरा नौकर इतनी आसानी से नहीं मिलेगा.

उन्होंने बड़ी नरमी के साथ बिरजा से पहले लाये गये सामान के बारे में पूछताछ की. तसल्लीबख्श जवाब मिल जाने पर फिर डाक्टर के बारे में पूछा. जवाब मिला, "किसी काम की वजह से वे सवेरे बाहर चले गये थे, अब शाम को पांच बजे लौटेंगे तो आपको भी देखने आयेंगे."

इसके बाद उन्होंने उसे पानी का गिलास लाने कहा.

बिरजा के पीठ मोड़ते ही सबसे पहले उनकी नजर पीठ पर जगह-जगह फटी उसकी कमीज पर पड़ी. फिर पैरों के साथ घिसकर पैर बन गई चप्पलों पर. सहसा उनको बिलकुल नये लेकिन काफी गहरे एहसास ने अंदर तक कचोटा—काश उन्होंने बिरजा जैसे ही किसी अनाथ बच्चे को गोद लिया होता तो. . .और वे इस बात से डरे न होते कि विरोधी उन पर किसी और तरह का अभद्र और गंदा लांछन न लगा दें. □

● **77-बी, शास्त्री कालोनी, अंबाला छावनी (हरियाणा).**

चलते-चलते

'धर्म-निरपेक्षता और राष्ट्रीय एकता के लिए एक तरीका यह है कि हम लोगों का जीवन-स्तर समान हो, यानी लोगों के जीवन-स्तर को ऊपर उठाया जाये, उन्हें शिक्षित बनाया जाये, उन्हें तर्कसम्मत बात को सुनने-समझने के और उनके अनुसार जीवन में आचरण करने योग्य बनाया जाये. सामान्यतः लोग सांप्रदायिक या कट्टर नहीं होते. उच्च वर्ग में ही नहीं, साधारण शिक्षित मध्यवर्ग में ही देखिए, अब जात-पात और धार्मिक कर्म-कांडों में कितने लोगों का विश्वास रह गया है! बस, एक परिपाटी है जिसको पीटे जा रहे हैं लोग. लेकिन आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से उनमें जो ऊंच-नीच है, वह उनमें एक-दूसरे के प्रति घृणा पैदा करती है. इसलिए सोचना यह चाहिए कि ये मौके किस तरह पैदा हो जाते हैं? उन्हें कौन पैदा करता है? कौन है जो लोगों को आपस में लड़ाता है? किसको फायदा है उससे?' □

—विष्णु प्रभाकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul K...

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस उपचुनाव में पार्टी का टिकट पाने के लिए हर कोई अपने-अपने दांव लगा रहा था कि तभी कुछ युवकों ने दो विधायकों, एक टिकट प्रत्याशी और एक पत्रकार का अपहरण कर लिया. . .अपहरणकर्ता युवकों का मानना था कि यह उनका एक क्रांतिकारी कदम है तो चारों बंधकों की मान्यता थी कि यह पूर्व नियोजित षड्यंत्र है.. .मगर दर हकीकत यह तमाशा था क्या. . .किसका . . राजनीति के अंधेरे गलियारों का छल-छद्म उजागर करती एक कथा रचना—

षड्यंत्रकारी और क्रांतिकारी

▫ राजेंद्र कुमार मिश्र

विधायक जगतपति के सरकारी बंगले की बैठक में आठ-दस लोग सोफों-कुर्सियों पर विराजमान थे और तीन-चार लोग खड़े थे. दो-दो, तीन-तीन के समूहों में बातचीत हो रही थी कुछ महीने पहले एक विधायक की जर्मनी में, जहां वे सरकारी खर्च पर कैंसर के इलाज के लिए गये थे, मृत्यु हो जाने से जो सीट खाली हुई थी, उसके लिए उप-चुनाव होने जा रहा था. चुनाव आयोग ने अधिसूचना जारी कर दी थी और राज्य की राजधानी में सत्तारूढ़ तथा विरोधी दलों में अपने-अपने उम्मीदवार का चुनाव करने के लिए मंत्रणा हो रही थी.

इस वक्त बठक में जो लोग मौजूद थे, वे सब एक दल के सदस्य थे. इनमें से ज्यादातर इस उपचुनाव के लिये खुद टिकट लेने या किसी को टिकिट दिलवाने या किसी का टिकिट कटवाने आये थे. बचे हुए लोगों में कुछ पैसा कमाने आये थे और कुछ सिर्फ तमाशबीन थे. टिकट के उम्मीदवारों, उनके समर्थकों और विरोधियों में से हरेक या तो पहले ही यह घोषणा कर चुका था कि वह टिकट के लिए नहीं आया था या पूछे जाने पर ऐसा कहने के लिए तैयार था. हरेक को यह भी मालूम था कि उसकी बात पर कोई यकीन नहीं करेगा.

थोड़ी-देर में तीन-चार लोग कमरे में और आ गये और करीब इतने ही चले गये. पहले से बैठे-खड़े लोगों और नवागंतुकों ने एक दूसरे की ओर देखा. सभी की आंखों में इस बात की स्वीकृति थी कि इस कमरे और घर में इतने लोगों के लिए जगह नहीं है, पर यहां से हटेगा कोई नहीं.

उपचुनाव में किस दल के उम्मीदवार के जीतने की सर्वाधिक संभावना थी, इस पर हो रही बातचीत, जो बैठक में लगातार लोगों के आवागमन के कारण कुछ देर पहले तीसरी या चौथी बार रुक गयी थी, फिर होने लगी. कमरे में उपस्थित लोगों में से कई को यकीन था. (जाहिर था ऐसे यकीन वालों को टिकट नहीं मिलने वाला था.) कि किसी को भी टिकट मिले उनके दल का प्रत्याशी हरगिज नहीं जीत सकता. इनमें से कुछ ने यह बेबाक राय भी जाहिर की कि उनके दल के प्रत्याशी की पराजय दल के हितों में होगी. इससे यह स्पष्ट था कि दल में आंतरिक प्रजातंत्र और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता भरपूर मात्रा में थी.

अपने दल के प्रत्याशी की हार की कामना करने वाले एक सज्जन ने कहा, "मैं अपनी पार्टी का दुश्मन नहीं हूं. उसके आदर्शों और सिद्धांतों का निष्ठापूर्वक पालन करने के कारण ही आज मेरी यह हालत हो गयी है. इसका मुझे कोई अफसोस नहीं है, पर एक झटका लगना जरूरी है."

तीन-चार लोग कमरे से चले गये और चार-पांच लोग शोर मचाते हुए आ गये. बातचीत फिर बंद हो गयी.

सहसा एक सज्जन ने, जिनके चेहरे से प्रतीत होता था कि वे इस बातचीत में इसलिए भाग नहीं ले रहे थे कि वे इसे निम्न स्तर का समझते थे, और जिनके मुख पर नैतिक आक्रोश का स्थायी भाव था, जिसे देखकर बीच-बीच में लोग उनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बारे में एक दूसरे के कान में व्यंग्य से मुस्कराकर कुछ कह देते थे, असंतुष्ट स्वर में कहा, "इतने सभी लोगों को तो टिकट मिल नहीं जायेगा. सीट एक ही है. आप लोग जगपतिजी को ख्वामख्वाह कष्ट दे रहे हैं. कुछ लोग कहीं और क्यों नहीं चले जाते?"

लोग एक दूसरे की ओर देखने लगे. इन सज्जन ने व्यंग्य से कहा, "आजकल दूसरे की तकलीफ का खयाल रखना सभ्यता का चिह्न नहीं है."

लोग इस व्यक्ति की धृष्टता पर चकित होकर उसकी तथा एक दूसरे की ओर फिर देखने लगे. खुद बिना जगतपति की मर्जी के यहां रुका हुआ था. (जगतपति ने लगभग सभी के बारे में यह बात कही थी.) और दूसरों को लेक्चर दे रहा था. बैठक में मौजूद लोगों में से अधिकांश लंबे समय से राजनीति में थे और किसी भी तरह के नैतिक या ऐसे उपदेश, जिससे आपको असुविधा किंतु दूसरों को आराम मिले, से उन्हें इतनी अरुचि थी कि वे अक्सर मामूली कायदे की बात को भी नैतिकता (यानी पाखंड) की बात समझकर खीज उठते थे या उसका विद्रूप करने लगते थे और सिर्फ उसी आदमी को ईमानदार समझते थे, जो अपने स्वार्थ की बात करता था और दूसरों को उनके स्वार्थ की बात बताता था.

एक ने नाराजी से कहा, "प्रयागजी, टिकट आपको ही मिलना चाहिए, क्योंकि उस पर आपका पुश्तैनी हक है. आपके पिताजी मंत्री थे और आपके बड़े भाई संसद सदस्य हैं."

दूसरा व्यंग्य से बोला, "हम लोग तो आपको मुबारकबाद देने आये हैं और आप एतराज कर रहे हैं!"

"मैं टिकट के लिए नहीं आया हूं. टिकट मेरे लिए कोई बड़ी चीज नहीं है. मेरे पास और काम भी हैं." प्रयागजी ने तिलमिलाकर उत्तर दिया.

"राजनीति में सच बोलना जैसे गुनाह है," तीसरे व्यक्ति ने कहा, "मेरी समझ में नहीं आता कि यह मान लेने में हर्ज क्या है कि आप टिकट के लिए कोशिश कर रहे हैं? क्या यह कोई जुर्म है?"

प्रयागजी बिफर गये. "सिंह साहब, मैं कोई कुत्ता नहीं हूं, जो टिकट की खातिर नेताओं के दरवाजों के आसपास चक्कर लगाऊं. मैं उस जमाने का हूं, जब राजनीति का अर्थ सेवा और त्याग था. हमारा खून ही दूसरा है!"

मुंह से शब्द निकलते ही प्रयागजी को तत्काल उस क्रोध की स्वयं अनुभूति हुई; जो उन्होंने महसूस किया, उनकी बात सुनकर लोगों के मन में अनिवार्यतः उत्पन्न होना. इस क्रोध के साथ उनका स्वयं का क्रोध, जो झूठ बोलने के आरोप ने उनमें उत्पन्न किया था, मिल गया और वे इस दुगने क्रोध को संयत करने की कोशिश करने लगे.

एक व्यक्ति ने नाराजी से कहा, "प्रयागजी, मुझे आपकी बात पर सख्त एतराज है. आप टिकट की कोशिश करनेवाले हर आदमी के बारे में ऐसा नहीं कह सकते. हालांकि मैं खुद टिकट के लिए नहीं आया हूं."

"तो मैंने आपके बारे में कब कहा? मैंने तो एक सामान्य बात कही." प्रयागजी ने स्पष्टीकरण दिया.

"आपने तो सभी को लपेट लिया. मुझे सख्त एतराज है. आप कृपया अपने शब्द वापस लें."

"मैं अपने शब्द वापस नहीं लूंगा. मैंने जो कहा है, वह सत्य है." प्रयागजी ने उत्तर दिया. उनके मुख पर नैतिक आक्रोश का स्थायी भाव गहरा हो गया. जब भी उन्हें एहसास होता कि वे झूठ बोल रहे हैं या पाखंड कर रहे हैं, उनका यह भाव अपने आप गहरा हो जाता.

एतराज करने वाले ने सबकी ओर देखा. उसकी आंखों में हरेक से यह प्रश्न था कि क्या वे प्रयागजी की बात से सहमत हैं. यदि सहमत नहीं हैं तो उन्हें अपने शब्द वापस लेने के लिए कहें.

प्रयागजी ने अपनी घड़ी पर नजर डाली और उठकर खड़े हो गये जैसे किसी से मिलने का समय हो आया हो. वे कमरे से बाहर चले गये.

कुछ लोग एतराज करनेवाले की 'नासमझी' और 'नातजुर्बेकारी' पर टिप्पणी करने लगे, जिससे वह अंततः लज्जित महसूस करने लगा. कुछ लोग सोफे पर प्रयागजी द्वारा खाली की गयी जगह पर बैठने के लिए लपके, पर वे बीच में ही रुककर एक दूसरे से कहने लगे, "आप बैठ जाइए," "नहीं, आप बैठिए," "एक ही बात है, आप ही बैठ जाइए." कुछ देर तक वे संकोचवश खड़े रहे, फिर उनमें से एक खाली जगह पर बैठते हुए दूसरे से बोला, "बैठ जाइए!"

ठीक से पालथी मार लेने के बाद उसने अपने कुर्ते की जेब से बटुआ निकालकर उस व्यक्ति की ओर बढ़ा दिया, जिसे उसने अपनी बगल में काल्पनिक स्थान पर बैठने के लिए आमंत्रित किया था.

"सुपाड़ी-जर्दा सेवन करेंगे?"

"जी नहीं, लौंग हो तो एक दे दीजिए."

"लौंग भी है. उसने तीन-चार लौंग इलायचियां अपनी हथेली पर रखकर उनकी ओर बढ़ा दीं. फिर उसने और लौंग इलायचियां निकालकर खड़े और बैठे लोगों की ओर हथेली घुमाई. दो-तीन मिनट के अंदर बटुआ खाली हो गया. कुछ लौंग, इलायची, सुपाड़ी चबाने लगे और कुछ हथेली पर जर्दा मलने लगे.

सहसा एक व्यक्ति ने ड्राइंगरूम में घुसकर वहां उपस्थित लोगों की ओर उद्धत भाव से देखा. उसके मुंह से किमाम और कपड़ों से इत्र की महक आ रही थी. फिर उसके चेहरे पर गंभीरता आ गयी, व्यंग्यपूर्ण गंभीरता.

"गिरीशजी, आप दो मिनट के लिए जरा बाहर तो आइए." उसने बुजुर्ग से अधिकार के स्वर में कहा.

'शायद कोई अच्छी खबर है!' गिरीशजीने विश्वास करने की स्वयं की आतुरता पर व्यंग्य से सोचा और आसपास लोगों की ओर देखकर यूं मुस्कराये जैसे उनसे कह रहे हों कि वे यह न सोच लें कि यह धूर्त उन्हें बेवकूफ बना सकता है. फिर वे गंभीर हो गये. उन्होंने सोचा, 'राम शंकर मुझे धोखा तो नहीं दे रहा है?'

यह प्रश्न बारबार उनके मन में उठता था और इसके साथ ही हर बार उन्हें यह खयाल भी आता कि रामशंकर जानता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul K...

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि वे उसके बारे में क्या सोचते हैं. रामशंकर यह जानता है कि वह उन्हें धोखा दे रहा है, यह सोचते ही उनका यह शक कि रामशंकर उन्हें धोखा दे रहा है, बढ़ जाता है और वे चाहने लगते कि वे रामशंकर पर विश्वास कर सकें ताकि रामशंकर शायद यह सोचकर कि वे उस पर विश्वास करते हैं, उन्हें धोखा न दे, जिससे उन्हें उसकी बात पर विश्वास हो सके. पर यह बात संभव नहीं थी, क्योंकि तब रामशंकर रामशंकर न रहता, कुछ और हो जाता, और उसकी उपयोगिता नष्ट हो जाती.

"क्या खबर लाये हो?" उन्होंने पूछा.

"इस वक्त सिर्फ चार नाम चल रहे हैं."

"कौन-कौन?" गिरीशजी की आंखें उत्सुकता से कुछ ज्यादा खुल गयीं. उनकी अंतिम जानकारी के अनुसार टिकट की दौड़ में छः लोग थे यानी अब उनके तीन ही प्रतिद्वंद्वी बचे थे.

"सदाशिव त्रिपाठी, प्रयागजी, अशोक अग्रवाल और आप."

"यह जानकारी तुम्हें कहां से मिली?"

"श्रीमालजी से."

श्रीमालजी चुनाव समिति के अध्यक्ष और रामशंकर के संरक्षक थे.

"चुनाव समिति में मेरा समर्थक कौन है?" गिरीशजी ने पूछा.

"जो लोग त्रिपाठी, प्रयागजी और अशोक अग्रवाल को टिकट दिये जाने के खिलाफ हैं." रामशंकर ने उत्तर दिया.

गिरीशजी को संतोष नहीं हुआ. उन्होंने कहा, "ऐसे लोगों को मैं अपना समर्थक समझूं?"

"जी हां, ऐसे ही समर्थक तो सबसे अधिक विश्वसनीय होते हैं."

गिरीशजी ने संदिग्ध भाव से उसकी ओर देखा.

"आप जिन समर्थकों के बारे में सोच रहे हैं, आजकल उनकी संख्या बहुत कम है और जो हैं भी उन पर कोई भरोसा नहीं करता."

रामशंकर चला गया. गिरीशजी जैसे ही बैठक में वापस पहुंचे अशोक अग्रवाल, जो एक मिनट पहले ही वहां आये थे, के ये शब्द उनके कान में पड़े.

"मैं गंभीरता से सोच रहा हूं कि राजनीति छोड़ दूं. निम्न हथकंडे मैं अपना नहीं सकता और आजकल उनके बगैर गुजारा नहीं है."

कई लोग एक दूसरे को ओर देखकर मुस्कराने लगे.

सहसा एक आदमी तूफान की तरह बैठक में घुस आया और इसके पहले कि लोग संभल सकें, साप्ताहिक की शक्ल का एक अखबार वितरित करने लगा. कुछ लोगों ने अपने आप हाथ बढ़ाकर एक-एक प्रति ले ली और कुछ के हाथों में उसने इसे थमा दिया और जिस तेजी से कमरे में घुसा था, उसी तेजी से बाहर हो गया. लोग अपनी-अपनी प्रति पढ़ने लगे. आधा मुखपृष्ठ सुर्खियों से भरा था.

एक ने पढ़ा, "राजधानी में अवसरवादियों, दलबदलुओं, षडयंत्रकारियों और अन्य जन-विरोधी तत्वों का जमाव. त्याग और सेवा भावना का खेदजनक अभाव! पतौली विधानसभा क्षेत्र में उपचुनाव की टिकट के लिये अशोभनीय छीना-झपटी!" उसने क्षण भर रुककर कहा, "प्रयागजी के खिलाफ वह आरोप-पत्र पृष्ठ पांच पर है. पहले मैं राजनीतिक संवाददाता की रपट पढ़ता हूं."

"घमंड के पुतले और भ्रष्टाचार में आकंठ डूबे प्रयाग दत्त की सभी कोशिशें नाकाम हो गयीं हैं! आज पतौली क्षेत्र के कई निष्ठावान कार्यकर्त्ताओं ने चुनाव समिति को प्रयाग दत्त के खिलाफ एक आरोप-पत्र देकर मांग की है कि उसने केंद्रीय सहकारी बैंक से कर्ज दिलवाने के बहाने हजारों गरीब किसानों से जो लाखों रुपये घूस के बतौर वसूल किये हैं. इससे पतौली में घोर असंतोष व्याप्त है. यदि इस शख्स को टिकट दिया गया तो न केवल इसकी जमानत जब्त हो जायगी बल्कि इससे दल की प्रतिष्ठा को जो आघात लगेगा, उससे दल बरसों तक उबर नहीं सकेगा. आरोप पत्र में यह मांग भी की गयी है कि प्रयाग दत्त के भ्रष्टाचार की उच्चस्तरीय जांच होनी चाहिए."

एक दूसरा आदमी जोर से पढ़ने लगा, "अशोक अग्रवाल द्वारा दल के नेताओं को खुली धमकी. सुविज्ञ सूत्रों से ज्ञात हुआ है कि अशोक अग्रवाल की अनुशासनहीनता इतनी बढ़ गयी है कि अब वे धमकी देने लगे हैं कि यदि उन्हें पतौली उपचुनाव के लिये टिकट नहीं दिया गया तो वे एक विरोधी दल के उम्मीदवार के रूप में खड़े हो जायेंगे. इस विरोधी दल के प्रांताध्यक्ष से कल अशोक अग्रवाल की लंबी बातें हुई हैं."

अशोक अग्रवाल स्तंभित होकर लोगों की ओर लोग उनके विस्मय पर व्यंग्य और अविश्वास से उनकी ओर देखने लगे. कुछ लोग अनुमान लगाने लगे कि ये खबरें किसने छपवायी हैं और इन पर कितना खर्च आया होगा.

सुपारी-जर्दा फांककर किसी तीसरे ने पढ़ना शुरू किया, "राष्ट्रपिता के जन्म दिन, पिछले दो अक्टूबर को दल की प्रांतीय कार्यकारिणी की बैठक में एक प्रस्ताव पारित कर यह स्तुत्य निर्णय लिया गया था कि दल के सेवा और त्याग के पुराने आदर्शों को पुनर्जीवित करने का समय आ गया है! क्योंकि

धर्म की खिड़कियां

▣ निर्मल वर्मा

हर धर्म की दो खिड़कियां होती हैं : एक आस्था की तरफ खुलती हैं, दूसरी जिज्ञासा की तरफ. हम आस्था से जिज्ञासा की ओर अग्रसर होते हैं और जिज्ञासा से आस्था की ओर. यह हमारा दुर्भाग्य ही माना जायेगा कि स्वतंत्र भारत में 'धर्मनिरपेक्षता' के नाम पर हमने आस्था और जिज्ञासा की खिड़कियों पर परदे गिरा दिये हैं. मनुष्य का धर्म उसका व्यक्तिगत सरोकार बनकर रह गया है. हमारे सार्वजनिक जीवन में विविध धार्मिक विश्वासों का मुक्त आदान-प्रदान नष्ट हो चुका है. यही कारण है कि यह धर्म अब कुछ वर्गों का निहित स्वार्थ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनकर चोर-दरवाजे से हमारी राजनीति में दखल देता है. हमें डर लगता है कि यदि हम खुलकर विभिन्न धार्मिक विश्वासों पर बातचीत करेंगे तो 'सांप्रदायिकता' के दोषी ठहरा जायेंगे. क्या एक अच्छा हिंदू या अच्छा मुसलमान अच्छा भारतीय नहीं बन सकता? गांधीजी ने धर्म-निरपेक्षता के आधार पर नहीं हर भारतीय की धार्मिक अस्थिरता को स्वीकार करके देश में राष्ट्रीय भावना को जागृत किया था. हिंदुत्व के केंद्र बिंदु पर रहकर उन्होंने सब अन्य धर्मों को सम्मान दिया था. मुझे लगता है कि जब तक हम अपने देश में मुक्त रूप से विभिन्न धार्मिक संप्रदायों के बीच मुक्त, सौहार्द्रपूर्ण संवाद के दरवाजे नहीं खोलेंगे, तब तक उनके बीच अविश्वास और भय की दीवार हमेशा खड़ी रहेगी. ☐
['कला का जोखिम' से]

जनता मौजूदा हालात अधिक दिनों तक बर्दाश्त नहीं कर सकती. इस दिशा में कार्य करने के लिए पांच सदस्यों की एक उप-समिति बनायी गयी थी. इस समिति ने आज अपनी अनुशंसाएं प्रस्तुत कर दी हैं. हमारे राजनीतिक संवाददाता के अनुसार पहली अनुशंसा यह है कि अनुशासनहीनता और दल की प्रतिष्ठा को आघात पहुंचाने के लिए प्रयाग दत्त और अशोक अग्रवाल से स्पष्टीकरण मांगे जायें और यदि उनके उत्तर असंतोषजनक हों तो उनके खिलाफ सख्त कार्रवाई की जाये. उपसमिति की दूसरी अनुशंसा यह है कि दल के आदर्शों के प्रति निष्ठावान और लोकप्रिय नेताओं को ही जनता का प्रतिनिधित्व करने के अवसर दिये जायें. इस संदर्भ में उपसमिति ने पतौली उप चुनाव के टिकट के लिए सदाशिव त्रिपाठी के नाम का अनौपचारिक सुझाव चुनाव समिति को दिया है.

"यह काम त्रिपाठी का है." एक ने कहा.

"महेशजी, आप इतने अनुभवी होकर भी ऐसी बात करते हैं," एक दूसरे ने कहा, "त्रिपाठी यह सब छपवाकर क्या खुद को मरवायेगा? क्या उस पर फौरन शक नहीं होगा? यह उसके विरोधियों का काम है जो उसे बदनाम करके उसका टिकट कटवाना चाहते हैं?"

"इसीलिए तो त्रिपाठी ये बातें छपवायेगा, जिससे प्रतीत हो कि यह उसके विरोधियों का काम है." महेशजी ने कहा.

बैठक में सुबह आठ बजे से जो भीड़ लगना शुरू हुई थी, वह धीरे-धीरे कम हो गयी. लोग बैठक से लगे दोनों कमरों में अपना-अपना बिस्तर बिछाकर या पेटी-बिस्तर ठीक से रखकर दोपहर का भोजन करने जाने लगे.

गिरीशजी रुक गये. उन्होंने सुबह गाजर का हलुवा खाया था, जिससे उन्हें भूख नहीं थी. उनके अलावा विभिन्न कारणों से तीन लोग और रुक गये. बाकी लोग चले गये. गिरीशजी ने सेंटर टेबिल अपने पास खींचकर साप्ताहिक की एक प्रति उस पर बिछा ली और एकबार फिर सुर्खियां पढ़ते और यह सोचते हुए कि इस अंक के निकलवाने में त्रिपाठी का हाथ था या उसके विरोधियों का, बटुआ खोलकर सुपारी, सरौता, तंबाकू, लौंग और पिपरमिंट की शीशी साप्ताहिक पर रख दी और बाकी तीन सज्जनों से पूछा, "आप लोगों लोगों के लिए भी बनाऊं?"

सहसा जगतपति ने दौड़ते हुए कमरे में प्रवेश किया और जल्दी से बाथरूम के दरवाजे की जंगखाई सिटकिनी जोर लगाकर खोलने लगे. उनके घबराये चेहरे को देखकर गिरीशजी ने उनसे पूछा, "क्या हो गया?"

बाकी तीनों लोग भी कौतूहल से उनकी ओर देखने लगे. सिटकिनी खुल गयी. जगतपति ने बाथरूम के अंदर घुसते हुए गिरीशजी के प्रश्न का उत्तर दिया, "कोई बात नहीं!" और अंदर से दरवाजा बंद कर लिया. गिरीशजी ने कुछ हैरान महसूस करते हुए सुपारी को सरौते के बीच में रखा. सहसा किसी और दरवाजे के बंद होने की आवाज सुनकर उन्होंने जैसे ही अपने सामने देखा कि सुपाड़ी और सरौता हाथ से छूटकर जमीन पर गिर गये और उनके दोनों हाथ अपने आप ऊपर उठ गये. बाकी तीनों लोगों के हाथ भी ऊपर उठ गये.

टेरीकाट की फुलपैंट और बुश्शर्ट पहने एक दुबला, लंबा, घनी दाढ़ीवाला युवक उनकी ओर रिवाल्वर ताने दरवाजे पर खड़ा था.

"वह आदमी कहां गया?" उसने गिरीशजी से पूछा. दो और युवक अंदर आ गये. उनके हाथ में भी एक-एक रिवाल्वर था. 'वह' का अर्थ समझकर गिरीशजी ने बाथरूम के दरवाजे की ओर गर्दन हिला दी. अपने भय के बावजूद उन्हें यह सोचकर खुशी हुई कि ये लोग जगतपति के लिए आये थे! फिर उन्हें यह सोचकर अफसोस हुआ कि शायद जगतपति इनके चंगुल से निकल गया है, क्योंकि बाथरूम में एक बड़ी खिड़की थी, जिससे वह बाहर कूद सकता था, हालांकि वह जमीन से काफी ऊंचाई पर थी.

बाद में आये दोनों रिवाल्वरधारी ड्राइंगरूम से लगे दो कमरों में से एक-एक में घुस गये. दाढ़ीवाला रिवाल्वर ताने खड़ा रहा. अपनी मृत्यु के भय से अधिक गिरीशजी को फिर यह आशंका हुई कि यदि बाथरूम का दरवाजा खोलने में देर हुई तो शायद जगतपति तब तक खिड़की से कूदने की हिम्मत जुटा ले. उन्होंने दाढ़ीवाले से कहा, "उन कमरों में कोई नहीं है. वह यहीं बाथरूम में है."

दूसरे बंधक ने कहा, "आप बाथरूम का दरवाजा तोड़ने में देर मत कीजिए!"

दाढ़ीवाले युवक ने बंधकों से कहा, "मेरा नाम ज्ञानचंद्र शर्मा है. आप कौन हैं?"

तीन लोग अपना परिचय देने में हिचकिचाये, पर गिरीशजी ने कहा, "मैं हूं गिरीश शुक्ल, एक मामूली पब्लिक वर्कर. आप दोनों विधायक हैं. द्वारकादास गोयल और रामलाल सोनी, और आप पत्रकार हैं, राजारामजी."

सोनीजी ने कहा, "आप दस-पंद्रह सेकेंड पहले आ जाते तो आपका आदमी आपको मिल जाता."

"अगर जगतपति नहीं मिलता है तो आप हमारे आदमी होंगे!" ज्ञानेंद्र ने उत्तर दिया.

गिरीशजी का शक कि ये नवयुवक आतंकवादी हैं, जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी उद्देश्य से जगतपति या सत्तारूढ़ दल के किसी भी महत्वपूर्ण व्यक्ति या व्यक्तियों को बंधक बनाना चाहते हैं, मजबूत हो गया. उन्हें यह सोचकर भय से कुछ राहत महसूस हुई कि आतंकवादी गोयलजी और सोनीजी को उनसे अधिक महत्वपूर्ण समझेंगे, इस कारण शायद वे उन दोनों को रोक लें और उन्हें रिहा कर दें. उनकी नजर सोनीजी से जा मिली. सोनीजी भी न सिर्फ गिरीशजी की तरह सही नतीजे पर पहुंच गये थे, बल्कि उन्हें यह असुविधाजनक खयाल आ गया था कि शायद गिरीशजी महत्वपूर्ण न होने के कारण छोड़ दिये जायें. उन्हें गिरीशजी के प्रति द्वेष पर इसके साथ ही जो नीचता वे स्वयं करने जा रहे थे (मन में विचार आते ही उन्हें ऐसा एहसास हुआ कि जैसे वे यह सोच नीच कृत्य कर चुके हैं.) उस पर लज्जा की अनुभूति हुई. उन्होंने ज्ञानेंद्र को सुनाकर गिरीशजी से कहा, "आप भी शीघ्र ही विधायक हो जायेंगे! पतौली में किसी विरोधी दल के उम्मीदवार के जीतने का सवाल ही नहीं है."

"क्या आपको पतौली से टिकट मिल गया है?" गोयलजी ने गिरीशजी से पूछा. अभी उनके दिमाग में स्थिति स्पष्ट नहीं हुई थी. ज्ञानेंद्र ने दिलचस्पी से गिरीशजी की ओर और गिरीशजी ने नफरत से सोनीजी की ओर देखा. कुछ कहने के लिए गिरीशजी के होंठ हिले, पर तभी ज्ञानेंद्र के साथियों ने कमरों से खाली हाथ वापस आकर कहा, "वहां कोई नहीं है." उन्होंने बैठक से लगे दोनों कमरों के दरवाजे अपनी तरफ से बंद कर लिए.

"वह अंदर है, दरवाजा तोड़ो." ज्ञानेंद्र ने बाथरूम की ओर इशारा किया. वे दरवाजा तोड़ने लगे.

ज्ञानेंद्र से आंखें मिलते ही गिरीशजी के मुंह से निकला, "मुझे टिकट मिलने का सवाल ही नहीं है!" मैं तो भूतपूर्व मुख्यमंत्री मालवीयजी के ग्रुप का हूं. मुझे कौन पूछता है?"

ज्ञानेंद्र मुस्कराया.

बाथरूम का दरवाजा चरमराकर गिर गया. ज्ञानेंद्र के साथियों ने अंदर निगाह डालकर कहा, "वह भाग गया. खिड़की खुली हुई है."

'जगतपति के हाथ-पैर टूट गये होंगे.' गिरीश को खयाल आया

गिरीशजी का चेहरा देखकर गोयलजी ने सोचा, ये शायद सोच रहे हैं कि यदि जगतपति की इतनी ऊंचाई से कूदने से मृत्यु हो जाती है, तो संभव है, और इन्हें पतौली से टिकट नहीं मिलता है तो ये मगनपुर से टिकट की कोशिश करेंगे!"

गोयलजी ने अपने खयाल की पुष्टि के लिए गिरीशजी की ओर फिर देखा. गिरीशजी भी उनके मन की बात का अनुमान लगाने लगे. गोयलजी ने सोचा कि गिरीशजी ने शायद उनके मन की बात का अनुमान लगा लिया है.

ज्ञानेंद्र ने अपने साथियों से कहा, "तुम इन लोगों को टेलीफोन वाले कमरे में ले चलो."

चारों बंधक अपने हाथ ऊपर किये हुए उल्टे कदमों से टेलीफोन वाले कमरे में जाने लगे.

ज्ञानेंद्र ने अपने साथियों से कहा, "मुकर्जी, तुम पुलिस कमिशनर को फोन करो. और प्रताप सिंह तुम सब दरवाजे चेक कर लो और इन लोगों पर नजर रखो."

मुकर्जी डायल करने लगे. प्रताप सिंह ने दरवाजे अंदर से बंद कर बंधकों से कहा, "आप लोग उस दीवाल की ओर पीठ करके बैठ जाइए और अपने हाथ नीचे कर लीजिए."

राजाराम ने प्रताप सिंह से कहा, "मैं सिगरेट पी सकता हूं?" उसके चेहरे पर भय नहीं था.

"गो अहेड!"

"पुलिस कमिश्नर आन द लाइन." मुकर्जी ने ज्ञानेंद्र को फोन दिया.

राजाराम के अलावा बाकी तीनों बंधक भयमिश्रित उत्सुकता से फोन की बात का इंतजार करने लगे.

ज्ञानेंद्र ने पुलिस कमिश्नर से कहा, "मेरा नाम ज्ञानेंद्र शर्मा है. मैं एम. एल. ए. जगतपति के बंगले से बोल रहा हूं. मेरे दो दोस्त मेरे साथ हैं. वी आर पोलिटिकल वर्कर्स एंड वी आर. आर्म्ड. हमने रूलिंग पार्टी के दो विधायकों द्वारकादास गोयल और रामलाल सोनी को होस्टेज बना लिया है. उनके अलावा दो और भी हैं. गिरीश शुक्ला जिन्हें शायद पतौली से होने वाले बाइ इलेक्शन के लिए टिकट दिया जा रहा है. चौथे होस्टेज एक जर्नलिस्ट हैं—राजाराम. सरकार से हमारी कुछ मांगे हैं. लक्ष्मणपुर काटन मिल के मजदूर सात महीने से बेकार हैं. पहले तीन महीने वे हड़ताल पर थे और अब चार महीने से लाक आउट है. सरकार और मिल मालिक इसके लिए जिम्मेदार हैं. इन मजदूरों की सभी मांगें मंजूर होने और लाकआउट खत्म होने का एलान आज शाम छः बजे की रेडियो बुलेटिन में होना चाहिए. इसके बाद हम इंतजार नहीं करेंगे और होस्टेजेस को शूट कर देंगे. जबर्दस्ती रिहा कराने की कोशिश की तो भी हम इन्हें शूट कर देंगे."

"लक्ष्मणपुर काटन मिल जगतपति के चुनाव क्षेत्र में हैं". गोयलजी ने आतंक से धीमी आवाज में सोनीजी से कहा.

"यस, यू कैन टाक टु द गवर्नमेंट." ज्ञानेंद्र ने पुलिस कमिशनर से कहा और फोन काट दिया.

गिरीशजी ने अपनी घड़ी देखी. दो बजने में पांच मिनट बाकी थे. उन्हें खयाल आया कि उनका तंबाकू-सुपाड़ी का बटुआ ड्राइंगरूम में छूट गया था. उन्हें जोर की तलब महसूस हुई.

तीनों आतंकवादी कुर्सियों पर बैठ गये और सिगरेट जलाकर पीने लगे. राजाराम का सिगरेट खत्म हो गया था. उसने दूसरा सिगरेट जला लिया.

'ये हत्यारे तो नहीं मालूम होते.' गिरीशजी ने सोचा. गोयलजी और सोनीजी की ओर देखकर उन्हें लगा कि शायद उनका भी ऐसा ही खयाल था.

समय तकलीफदेह धीमी गति से बीत रहा था. बाहर से तमाम आदमियों द्वारा की जा रही हलचल की आवाजें कमरे में आने लगी थीं.

ज्ञानेंद्र ने मुकर्जी को इशारा किया. उसने एक कुर्सी पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खड़े होकर ऊपर की खिड़की से बाहर झांककर देखा. कुर्सी से उतरकर उसने कहा, "बाहर बहुत बड़ा पुलिस फोर्स आ गया है."

"पुलिस फोर्स आयेगा ही." ज्ञानेंद्र ने सहज भाव से कहा.

'ये हत्या करनेवाले तो नहीं मालूम होते?' गिरीशजी ने जैसे स्वयं से प्रश्न किया. उन्होंने ज्ञानेंद्र की ओर देखा.

ज्ञानेंद्र के चेहरे पर सहज मुस्कान आ गयी जैसे उन्हें आश्वस्त कर रहा हो कि वे घबरायें नहीं.

कुछ देर बाद साहस करके गिरीशजी ने ज्ञानेंद्र से पूछा, "यदि आपकी मांगें शासन ने मंजूर नहीं कीं तो. . ."

"हम आपको शूट कर देंगे." ज्ञानेंद्र ने मुस्कराकर उत्तर दिया.

"यदि शासन आपकी वाजिब मांगें मंजूर नहीं करता है तो इसमें हमारी क्या गलती है?" गोयलजी ने कहा.

"आपकी कोई गलती नहीं है. हमें आपसे कोई शिकायत नहीं है."

तीनों खामोश हो गये. आतंकवादी उन्हें आदर्शवादी प्रतीत होने लगे जो अपरिपक्वता के कारण अपने भविष्य को खतरे में डाल रहे थे.

धीरे-धीरे एक घंटा और बीत गया. इस दौरान विधान सभा में विरोध पक्ष के नेता, एक देशविख्यात प्रगतिशील बुद्धिजीवी और एक सर्वोदयी नेता के फोन आये. उन्होंने ज्ञानेंद्र को आत्मसर्पण करने और शांतिपूर्ण तरीके अपनाने की सलाह दी, जिसे ज्ञानेंद्र ने नामंजूर कर दिया.

ज्ञानेंद्र ने सिगरेट जलाकर राजाराम से पूछा, "आपके अखबार का क्या नाम है?"

"सत्यवक्ता."

गोयलजी कोशिश करने के बावजूद खुद को यह कहने से रोक न सके, "ये ब्लैकमेलर हैं, जो मंत्रियों, विधायकों, सरकारी अफसरों वगैरह से पैसा ऐंठते हैं."

राजाराम ने कहा, "गोयलजी मंत्री बनते जा रहे थे कि मैंने इनके भ्रष्टाचार का भंडाफोड़ कर दिया, जिससे मंत्रिपद इनके हाथ से चला गया."

ज्ञानेंद्र ने गोयलजी की ओर देखा.

गोयलजी खामोश रहे.

ज्ञानेंद्र ने मुस्कराकर कहा, "आप लोग और हम वक्त काटने के लिए कुछ बातचीत तो कर ही सकते हैं, अगर आपको एतराज न हो. हम एक दूसरे को दोस्त मानें तो कोई हर्ज है?"

तीनों राहत और विस्मय से ज्ञानेंद्र का मुंह देखने लगे. डर उनके दिमाग से गायब हो गया.

सोनीजी खुद को यह कहने से रोक न सके, "गोयलजी के खिलाफ सत्यवक्ता को जानकारी मुख्यमंत्री ने भेजी थी."

ज्ञानेंद्र ने उत्सुकता से गोयलजी की ओर देखा.

सोनीजी ने कहा, "इसके पहले मुख्यमंत्री ने ही गोयल जी को पत्र लिखा था कि वे दल की एकता के हित में मंत्रि-मंडल में शामिल होने का उनका अनुरोध स्वीकार कर लें!"

हाजिर जवाबी

रामधारी सिंह दिनकर उन दिनों पोलैंड की यात्रा पर गये हुए थे. वहां पर वारसा विश्वविद्यालय में एक कवि सम्मेलन था. दिनकरजी भी उसमें काव्यपाठ के लिए आमंत्रित कवि के रूप में स्टेज पर बैठे विश्व-काव्य का आनंद ले रहे थे.

तभी इंग्लैंड के कवि लारी ली ने एक कविता पढ़ी. शीर्षक थाः—'बांबे अराइवल.' इस कविता में अंग्रेजों के पहले-पहल भारत आने का आलेख था.

काव्य-पाठ के तुरंत बाद ही श्री ली ने दिनकरजी की ओर देखा ही था कि वे तुरंत मीठी चुटकी ले उठे, "मिस्टर ली, अब आप दूसरी कविता 'बांबे डिपारचर' लिख डालिये. क्योंकि वे बंबई से पलायन कर चुके हैं."

ली साहब झेंप कर रह गये. ▣

● प्रस्तुति : बालमुकुंद

कमरे में माकूल राजनीतिक वातावरण निर्मित हो गया, जिसमें तीनों बंधक अत्यंत सुरक्षित महसूस करने लगे.

गिरीशजी ने ज्ञानेंद्र के चेहरे पर ताज्जुब देखकर कहा, "आप आदर्शवादी हैं. आप आजकल की राजनीति की गंदगी का अनुमान भी नहीं लगा सकते. सोनीजी जो कह रहे हैं, वह सच है."

सोनीजी ने कहा, "गोयलजी असंतुष्टों के नेता थे. मुख्यमंत्री ने इनसे मंत्रिमंडल में शामिल होने की स्वीकृति प्राप्त कर उसका प्रचार कर दिया और फिर सत्यवक्ता में इनके खिलाफ भ्रष्टाचार के आरोप छपवाकर इनकी धूमिल छवि का बहाना लेकर इन्हें मंत्रिमंडल में शामिल नहीं किया."

गोयलजी जानते थे कि सत्यवक्ता को उनके खिलाफ मुख्यमंत्री ने ज्ञानकारी नहीं दी थी, पर चूंकि वे मंत्रिमंडल में लिए न जाने की वजह से मुख्यमंत्री से क्षुब्ध थे, इसलिए चाहते थे कि लोग सोचें कि मुख्यमंत्री ने ऐसा किया था. सोनीजी, गिरीशजी तथा कुछ और लोगों को भी मालूम था कि गोयलजी जानते हैं कि मुख्यमंत्री ने यह काम नहीं किया था, फिर भी वे कुंठा से चाहते हैं कि लोग मुख्यमंत्री पर यह आरोप लगाते थे. ऐसे अवसरों पर गोयलजी, सोनीजी, गिरीशजी वगैरह को महसूस होता कि जैसे वे जो कह-सुन रहे थे, वह वास्तव में घटित हुआ हो.

"शायद मंत्रिमंडल की आपात बैठक हो रही हो कि इस समस्या से कैसे निपटा जाये. एहतियातन पुलिस फोर्स तैनात कर दी गई है, "गिरीशजी ने सोचा. खुद उनकी समझ में नहीं आया कि समस्या का क्या समाधान निकल सकता था. उनके दिमाग में कई विकल्प उत्पन्न हुए थे, पर उनमें से कोई संतोषजनक नहीं था. वे यह सोचने में डरते थे कि शासन द्वारा मांगें मंजूर किये न जाने की हालत में ये युवक अंततः उन्हें बिना कोई नुकसान पहुंचाये आत्म-समर्पण कर देंगे.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डर की वजह यह भयावह वैकल्पिक संभावना थी कि यदि आतंकवादियों ने यह सोचकर कि उन्हें तो हर हालत में सजा मिलेगी ही, बिना बंधकों को नुकसान पहुंचाये आत्म-समपर्ण नहीं किया तो! वे ऐसा समाधान चहते थे, जिससे आदर्शवादी नौजवानों को कोई नुकसान न हो और जिसका विकल्प भी खतरनाक न हो.

आधा घंटा और बीतने पर गिरीशजी ने कुछ कहने के लिए ज्ञानेंद्र से कहा, "आप लोग बड़े क्वालीफाइड मालूम होते हैं."

"मैं क्वालीफाइड इंजीनियर हूं. मुकर्जी यूनिवर्सिटी में टीचर था और प्रताप सिंह फ्री लांस जर्नलिस्ट." ज्ञानेंद्र ने उत्तर दिया.

गिरीशजी ज्ञानेंद्र के उत्तर देने की सहजता से प्रभावित हुए. इन नौजवानों और उनके बीच में किसी तरह की दुर्भावना, दबाव या मानसिक प्रतिबंध नहीं था.

"हम तो आपकी तुलना में बहुत कम पढ़े-लिखे हैं." सोनीजी ने कहा.

"शासन हमारे जैसे लोगों के हाथ में है. यही तो देश का दुर्भाग्य है." गोयलजी बोले.

"आप जैसे आदर्शवादी युवक ही देश की आशा हैं." गिरीशजी ने कहा.

"अगर हमारी मृत्यु से देश को फायदा होता हो तो हम मरने को तैयार हैं." गोयलजी ने कहा. उन्होंने सोचा, शायद ये सोचें कि हमने समझ लिया है कि हम मरेंगे नहीं, इसलिए मैं ऐसा कह रहा हूं.

"हमने यह कभी नहीं सोचा कि वे लोग हत्या कर सकते थे. क्रांतिकारी या आतंकवादी, आप उन्हें जो भी कहें वे इतने बहादुर फिर भी इतने शिष्ट, इतने बुद्धिवादी फिर भी इतने सरल थे कि हम उन्हें कभी नहीं भूल सकते. हम उनकी तुलना में कितने तुच्छ हैं." गिरीशजी ने कहा. कई कैमरों के फ्लैश बल्ब चमके. भीड़ का दबाव बढ़ने लगा. कई पत्रकार उनसे एक साथ प्रश्न करने लगे.

"वे स्वयं शोषणमूलक व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष करते हुए मारे गये, पर हमें, जिन्हें जिंदा रहने का उनसे बहुत कम हक है, उन्होंने छोड़ दिया. पुलिस ने तीन आदर्शवादी नौजवानों को कुत्तों की तरह मार दिया. गिरीशजी ने आक्रोश से पुलिस कमिश्नर की ओर देखकर कहा.

पत्रकार उनका यह 'स्टेटमेंट' लिखने लगे. एक पत्रकार ने जेब से एक सिगरेट पैकेट की साइज का टेपरिकार्डर निकालकर उनके सामने बढ़ा दिया और कहा, "आप इसे फिर से कह दें."

पुलिस कमिश्नर ने टेपरिकार्डर छीन लिया, "आप इनका स्टेटमेंट टेप नहीं कर सकते. अभी ये जज्बात से भरे हुए हैं और नहीं जानते, क्या कह रहे हैं. ये इस्तगासे के महत्वपूर्ण गवाह हैं. एक भी आतंकवादी नहीं मरा है. तीनों सिर्फ घायल हैं."

गिरीशजी ने कहा, "हम आपकी मर्जी के मुताबिक झूठी गवाही देकर उन आदर्शवादी नौजवानों को नहीं फंसायेंगे. यदि वे बच जाते हैं तो हम पूरी कोशिश करेंगे कि उन्हें सजा न मिले, या कम से कम सजा मिले."

"आप लोगों को भूख लग रही होगी. हमारे पास बिस्किट्स हैं," ज्ञानेंद्र ने कहा.

गिरीशजी भविष्य से वर्तमान में आ गये. ऐसे वर्तमान में जिसमें भविष्य की उस सुखद कल्पना ने अतिरिक्त आशा का संचार कर दिया था. वे यह देखकर वास्तव में प्रसन्न हुए कि एक भी आतंकवादी नहीं मारा गया था.

प्रताप सिंह ने झोले से बिस्किट का पैकेट निकालकर बंधकों की ओर खिसका दिया.

बाहर से लाउडस्पीकर पर पुलिस की चेतावनी आने लगी, "ज्ञानेंद्र शर्मा और उसके साथी आत्म-समर्पण कर दें. वरना पुलिस को उनके खिलाफ सख्त कार्रवाई करनी पड़ेगी, जिसके परिणाम उनके सिर पर होंगे."

पंद्रह मिनट बाद टेलीफोन की घंटी बजने लगी. गृहमंत्री का फोन था. उन्होंने बड़ी देर तक उसे समझाने की बेकार कोशिश करने के बाद अंततः ज्ञानेंद्र से अनुरोध किया कि वह समय सीमा छः बजकर दस मिनिट के बजाय रात सवा नौ बजे तक कर दें. ज्ञानेंद्र ने उनका अनुरोध स्वीकार कर लिया.

तीनों बंधकों को अपने सौभाग्य पर एकाएक विश्वास नहीं हुआ. उन्हें लगा कि जैसे उनकी उम्र बीस साल बढ़ गयी हो.

"आप हमें गृहमंत्रीजी से बात करने का मौका दें. हम उन्हें समझाने की कोशिश करेंगे." सोनीजी ने कहा.

ज्ञानेंद्र ने उन्हें फोन दे दिया. सोनीजी को बरबस गृहमंत्रीजी के खिलाफ दिया हुआ अपना वह वक्तव्य, उस पर गृहमंत्री की प्रतिक्रिया और उस प्रतिक्रिया पर अपनी प्रतिक्रिया का स्मरण हो आया और क्षण भर के लिए उनकी वाणी लुप्त हो गयी. फिर उन्होंने संभलकर कहा, "जैन साहब, मैं सोनी बोल रहा हूं. हमारे आपके सैद्धांतिक मतभेद जो भी रहे हों, पर इस वक्त हम तीनों के प्राण आपके हाथ में हैं (उन्हें राजाराम का खयाल नहीं आया) इनकी मांगें भी वाजिब हैं."

"शासन धमकी के सामने नहीं झुकेगा, पर आप घबरायें न. अभी समय है. आपको कुछ नहीं होगा." गृहमंत्री ने उत्तर दिया.

"क्या कहा जैन साहब ने?" गोयलजी ने व्यग्र होकर पूछा.

"वे अंत तक कोशिश करेंगे कि बिना मांगें स्वीकार किये हमें बचा सकें. यदि यह संभव नहीं हुआ तो वे अंततः मांगें स्वीकार कर लेंगे." सोनीजी ने उत्तर दिया.

"क्या उन्होंने स्पष्ट ऐसा कहा है या आपका ऐसा खयाल है?" सोनीजी खामोश हो गये.

मुकर्जी झोले से रेडियो निकालकर ट्यून करने लगा. छः बजे की बुलेटिन में घटना का लंबा विवरण था. जैसा गिरीशजी ने सोचा था, मंत्रिमंडल की आपात-बैठक हो रही थी. जगतपति को सिर्फ मामूली चोटें आयीं थीं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सौंदर्य और मनुष्य

बंदर को शायद बंदरिया के मुंह में सौंदर्य दिखाई पड़ता होगा, पर मनुष्य पशु-पक्षी, फूल-पत्ते और रेत-पत्थर में भी सौंदर्य पाकर मुग्ध होता है. इस हृदय-प्रसार का स्मारक स्तंभ काव्य है, जिसकी उत्तेजना से हमारे जीवन में एक नया जीवन आ जाता है. हम सृष्टि के सौंदर्य को देखकर रसमग्न होने लगते हैं, कोई निष्ठुर कार्य हमें असह्य होने लगता है.

▣ आचार्य रामचंद्र शुक्ल

तीन घंटे का समय, जो तीनों बंधकों को बीस साल के बराबर लगा था, उतनी ही जल्दी बीत रहा था जितनी जल्दी आदमी की जिंदगी के बीस साल बीत जाते हैं. इस दौरान मुख्यमंत्री के अलावा दो और महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों ने ज्ञानेंद्र को यह कहकर समझाने की कोशिश की कि वे आत्मसमर्पण कर दें और उनकी मांगों पर सहानुभूतिपूर्वक विचार किया जायेगा. गोयलजी, सोनीजी और गिरीशजी ने मुख्यमंत्री से याचना की कि वे मांगें मंजूर कर लें. मुख्यमंत्री ने भी उनसे कहा कि वे उन्हें कुछ नहीं होने देंगे.

सहसा पुलिस की चेतावनी फिर लाउडस्पीकर पर आने लगी. कमरे के बाहर कई लोगों के कदमों की आवाजें सुनाई दीं. शायद पुलिस ताकत का इस्तेमाल करने की तैयारी कर रही थी. तीनों बंधकों को अब यह लगभग स्पष्ट हो गया था कि शासन दबाव में आकर मांगें मंजूर नहीं करेगा और आतंकवादी उनकी हत्या कर देंगे.

रात नौ बजे की न्यूज बुलेटिन शुरू होने में दस मिनट बाकी थे. आतंकवादियों ने रिवाल्वर हाथ में ले लिये. गिरीशजी ने खुद पर काबू पाकर ज्ञानेंद्र से कहा, "मरने के पहले हम कुछ लिखना चाहेंगे. आपके पास कागज-कलम हो तो हमें दे दीजिए."

मुकर्जी ने झोले से एक पैड और पेंसिल निकालकर गिरीशजी की ओर फेंक दिये. गोयलजी और सोनीजी ने भी अपने-अपने कलम निकाल लिये और पैड से पन्ने फाड़कर कागज जमीन पर रखकर कांपती उंगलियों से लिखने लगे.

कुछ वाक्य लिखने के बाद गिरीशजी बेइख्तियार होकर कल्पना करने लगे कि वे इस अंतिम पत्र को लोगों को दिखाते हुए कह रहे हैं कि जब वे इसे लिख रहे थे, तब उन्होंने सोचा था कि वे अपने अंतिम शब्द लिख रहे हैं. उनकी कल्पना समाप्त हो गयी और उन्हें खयाल आया, 'ये मेरे अंतिम वाक्य हैं!'

राजाराम ने नया सिगरेट जलाकर खाली डिब्बी फेंक दी. उसने अपने डर पर काबू पा लिया था. उसके चेहरे से उसका यकीन जाहिर हो रहा था कि उसे नहीं मारा जायगा. आतंकवादी एक ब्लैकमेलर की हत्या नहीं करेंगे.

न्यूज बुलेटिन शुरू हो गयी.

तीनों ने लिखना बंद कर दिया और अपनी सांस रोककर खबर सुनने लगे. पांच मिनट बीत गये. फिर दस मिनट, फिर ग्यारह मिनट, फिर बारह मिनट, तेरह मिनट. इस बुलेटिन में भी इस घटना की लंबी चर्चा थी, पर मांगों का कोई जिक्र नहीं था.

मृत्यु की निकटता ने गिरीशजी का डर दूर कर दिया. उन्होंने मुकर्जी के रिवाल्वर की ओर देखते और रेडियो पर 'अब आप मुख्य समाचार फिर से सुनिए' सुनते हुए कहा, "आप हमें मारने जा रहे हैं. इसके पहले ठीक समझें तो हमारे एक सवाल का जवाब दे दीजिए. हमें मारने या अपनी जिंदगी बरबाद करने से आपको फायदा क्या होगा?" उन्होंने फायदे की उम्मीद के बगैर कभी कोई काम नहीं किया था.

ज्ञानेंद्र ने संजीदगी से उनकी ओर देखा. जिस व्यक्ति का वह जीवन समाप्त करने जा रहा था, उसके आखिरी सवाल का जवाब न देना हैवानियत होगी. उसने ट्रिगर पर उंगली रखते हुए कहा, "हम स्टेट्सों के खिलाफ हैं."

गिरीशजी भी स्टेट्स के खिलाफ थे. वे पिछले पंद्रह साल से विधायक बनने की कोशिश कर रहे थे. विधान सभा की तस्वीर उनकी आंखों के सामने आ गयी. अगले क्षण तस्वीर गायब हो गयी.

गोयलजी के जीवन में असंख्य बार दुविधाएं उत्पन्न हुई थीं, पर इस क्षण वे अपने जीवन की सर्वाधिक यंत्रणापूर्ण दुविधा में थे. वे जानते थे कि यह सोचना अविश्वसनीय और अन्यायपूर्ण था कि गृहमंत्री और मुख्यमंत्री ने जानबूझकर उनकी मृत्यु की इच्छा से मांगें मंजूर न करने का निर्णय लिया था. पर मरने के पहले वे यकीन करना चाहते थे कि उन दोनों ने इसी कारण मांगें मंजूर नहीं की थीं. मरने के बाद उनकी आत्मा को शांति मिल सकती थी. यह यकीन उन्हें नहीं हो पा रहा था.

सहसा दरवाजे पर बड़े जोर का धमाका हुआ और वह अंदर की ओर गिरने लगा. मुकर्जी की गोली ने गोयलजी की दुविधा का अंत कर दिया.

प्रताप सिंह के रिवाल्वर को देखते ही सोनीजी को महात्मा गांधी की हत्या का खयाल आ गया. सीने पर गोली लगने के बाद उन्होंने अपने हत्यारे की ओर देखकर हाथ जोड़े थे. गोली लगने के पहले सोनीजी के हाथ भी जुड़ गये. वे स्वयं को हमेशा गांधीवादी कहते रहे थे. अंततः उन्होंने एक बार गांधीजी का अनुकरण किया था. चेतना लुप्त होने के पहले उन्हें इस बात पर अपने जीवन की सार्थकता की अनुभूति हुई. राजाराम टेलीफोन की टेबिल गिराकर उसके पीछे लेट गया था. उसने वहीं से कहा, "मुझे मत मारिए. मैं पत्रकार हूं." सब-इंस्पेक्टर ने पत्रकार शब्द सुनते ही रिवाल्वर का घोड़ा दबा दिया.

गोली टेबिल को चीरकर राजाराम को छूते हुए निकल गयी. राजाराम चिल्लाया, "मैं मुख्यमंत्री का आदमी हूं."

एक डिप्टी पुलिस सुपरिंटेंडेंट ज्ञानेंद्र के गिरे हुए शरीर पर दो गोलियां दागने के बाद राजाराम की ओर फायर करने जा रहा था. 'मुख्य मंत्री' नाम सुनते ही उसका हाथ रुक गया. उसने दौड़कर राजाराम को उठा लिया और कहा, "आपको चोट तो नहीं आयी." □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुनाव के बारे में गंभीरता से सोचने वाले लोग आजादी के सैंतीस साल बाद भी मौजूद हैं.. . जरा देखिए, आप ऐसे लोगों से कहां तक सहमत हैं . . . . बस 'अपनी और उनकी इज्जत' सलामत रखिएगा.

एक गंभीर चुनाव चिंतन

▣ सुरेश उनियाल

हमारे एक मित्र हैं आचार्य नरेंद्र कोहली. पहले व्यंग्य लिखते थे. हुआ यह कि लोग उन्हें टोकते कि आप हमेशा व्यंग्य ही लिखते रहेंगे, कभी गंभीर नहीं लिखेंगे. अपनी पूरी कोशिशों के बावजूद वे अपने पाठकों को यह विश्वास न दिला पाये कि वे व्यंग्य में गंभीर होते हैं. लिहाजा गंभीरता में व्यंग्य शुरू कर दिया और रामायण लिख डाली. मैं शुरू से ही आगाह हूं और श्रीमान पाठक, आप को पहले ही बता देना चाहता हूं कि अगली पंक्तियों में आप जो कुछ पढ़ने जा रहे हैं, वह पूरी तरह से एक गंभीर चिंतन है. आप उसे गंभीरता से ही लें. अगर आपने इसे व्यंग्य मानकर पढ़ा तो इससे होने वाले किसी भी दुष्परिणाम के प्रति आप स्वयं ही जिम्मेवार होंगे, मैं नहीं.

अपना चुनाव चिंतन प्रस्तुत करते हुए गंभीरता का यह वातावरण बनाना इसलिए भी जरूरी है कि चुनावों को कोई गंभीरता से लेता ही नहीं. न चुनाव जीतनेवाले, न हारने वाले और न ही चुनाव में इस्तेमाल होनेवाले यानी वोटर. कहीं मेरे इस चुनाव चिंतन को भी उसी तरह हल्के-फुल्के ढंग से टरका दिया गया तो यह मेरे लिए और पाठक महोदय, आपके लिए भी शर्म की बात होगी. अतः आपको मैं यही सलाह दूंगा कि आप भी हमारे राजनीतिज्ञों की तरह, गंभीर चाहे न हों, गंभीरता का मुखौटा जरूर चढ़ा लें.

आप तो हंसने लगे. क्या आप यह जरा भी मानने के लिए तैयार नहीं हैं कि चुनाव को गंभीरता से लिया जाये. अरे भाई, चुनाव कोई अमिताभ बच्चन की फिल्म के कॉमेडी सीक्वेंस की तरह नहीं होते कि दिमाग का इस्तेमाल किये बिना आप उन पर हंसते ही चले जायें. अगर आप चुनावों को किसी कोमेडी सीक्वेंस के रूप में देखना ही चाहते हैं तो चार्ली चेपलिन की 'गोल्ड रश' के उस सीक्वेंस की तरह लें, जिसमें बिग जिम को चार्ली एक 'चिकन' की तरह नजर आता है. और वह उसे हलाल करने के लिए चाकू उठा लेता है. सारी राजनीतिक पार्टियां चुनावों में बेचारे वोटर को चिकन मानकर हलाल करने के लिए उसके पीछे दौड़ती रहती हैं. फर्क इतना है कि चार्ली को पता है कि दैत्य उसे हलाल करने की फिराक में है जबकि बेचारे वोटर को ऐसी कोई आशंका भी नहीं होती और उसका हलाल होना निश्चित होता है.

आप भी सोच रहे होंगे कि मैं चुनावों में फिल्मों के प्रतीक घुसेड़ने की कोशिश क्यों कर रहा हूं. भला फिल्मों और चुनावों का एक-दूसरे से संबंध ही क्या है.

संबंध है जनाब! अगर आप गौर से सोचें तो आपको संबंध ही संबंध नजर आयेंगे. दरअसल, मेरा चुनाव-चिंतन यहीं से शुरू होता है. दक्षिण में एम.जी.आर. तथा एन.टी.आर. के राजनीति में भीषण रूप से सफल होने और अब ए.बी. (अमिताभ बच्चन) और एस.डी. (सुनील दत्त) के चुनावी अखाड़े में उतर जाने के बाद मुझे लगा कि चुनाव चिंतन के चक्रव्यूह में उतरने के लिए सबसे सुरक्षित रास्ता इधर से ही जाता है.

जब मैं चुनाव तथा राजनीति की संगतियों और विसंगतियों पर चिंतन करने लगा तो कुसंगतियों ने मेरे ध्यान को सब से पहले आकर्षित किया. कुसंगतियां दोनों के लिए ही जरूरी हैं. काले पैसे के बिना चुनाव लड़ना और फिल्म बनाना दोनों ही कठिन हैं. ढिशुंग-ढिशुंग भी दोनों के लिए ही जरूरी है. बिना ढिशुंग-ढिशुंग के सफल फिल्म नहीं बन सकती और राजनीति में भी, आप जानते हैं कि अगर आपमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ढिशुंग-ढिशुंग वाली ताकत नहीं है तो बेहतर है कि कोई और रास्ता ढूंढ़ लें.

अब आप देखिए कि अपने ए.बी. और एस.डी. ही क्यों चुनाव के अखाड़े में उतरे. आर. के. (राजकपूर) क्यों नहीं. इसलिए न कि पर्दे पर ए.बी. और एस.डी.की छवि मारा-मारी के उस्तादों की है. आर.के. की नहीं जो फिल्म 'जिस देश में गंगा बहती है' में हथियार के नाम पर चम्मच निकालकर दिखाता है. इसीलिए आर.के. को चुनाव के अखाड़े में उतारने की बात किसी भी दल ने नहीं सोची. हालांकि ए.बी. के पिता और एस.डी. की पत्नी की ही तरह आर.के. के पिता भी राज्य सभा के मनोनीत सदस्य रह चुके हैं.

कुसंगति के नाम पर मैंने काले धन की बात भी कही थी. दरअसल, राजनीति और फिल्में ही दो ऐसे क्षेत्र हैं जहां काले धन के बिना कुछ भी संभव नहीं है. आपने देखा और सुना ही होगा कि जितनी फिल्में प्रदर्शित होती हैं उससे अधिक बनने की प्रक्रिया की किसी न किसी अवस्था में रुक जाती हैं. लाखों रुपया खर्च हो जाने के बाद जाहिर है कि डिब्बा बंद फिल्म के निर्माता का दीवाला निकल जाना चाहिए. पर कुछ दिन बाद यह देखने में आता है कि वह निर्माता बाकायदा एक नयी फिल्म घोषित करता है. यही नहीं वह बोरीवली का फ्लैट छोड़कर जूहू या बांद्रा में फ्लैट ले लेता है. दरअसल यह एक प्रक्रिया के अंतर्गत होता है जिसे फिल्मवाले 'पैसा अंदर करना' कहते हैं. जैसे-जैसे फिल्म बनती जाती है, निर्माता जितना खर्च करता है उस से अधिक की वह रसीदें इकट्ठी करता है. और इस प्रकार जो पैसा बचता है उसे 'अंदर कर लेता है'. लगभग ऐसी ही प्रक्रिया मैंने चुनावों में भी देखी है. एक उम्मीदवार को मैंने कभी चुनाव जीतते नहीं देखा. पर देखा कि हर चुनाव के बाद उसके मकान में दो-चार कमरे बन जाते, नयी कार या जीप आ जाती या कहीं गांव में वह जमीन खरीद लेता. जाहिर है कि बिना 'पैसा अंदर किए' यह संभव नहीं है.

श्रेष्ठ भारतीय कथा-साहित्य की झलक

यानी

ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता कथाकार विशेषांक

एक और दो

1 से 15 जनवरी और 16 से 31 जनवरी 1985

एक-दो महीने पहले एक तस्कर सम्राट ने घोषणा की थी कि वे एक राजनीतिक पार्टी का गठन कर रहे हैं. उन्हीं तस्कर सम्राट ने 1975 में आपात् स्थिति के दौरान कुछ ऐसे फोटो प्रकाशित करवाये थे जिनमें कुछ महत्त्वपूर्ण फिल्म निर्माता उनके पांव छू रहे हैं. जाहिर है कि इनका काला पैसा ही फिल्म और राजनीति के क्षेत्र में एक ही अंदाज में गुल खिला रहा है.

इसीलिए तो मैं कहता हूं जनाब कि चुनाव के इल्म की सही पूंजी आपको फिल्म में ही मिलेगी.

चलते-चलते एक बात और बता दूं. फिल्मी हस्तियों के राजनीति में इस तरह चले आने से जो राजनीतिज्ञ नेता लोग बेकार हो गए हों उन्हें चाहिए कि वे बंबई की गाड़ी लें और वहां फिल्मों में वही कुछ करें जो यहां राजनीति में करते रहे हैं. स्थापित फिल्म निर्माताओं, निर्देशकों, अभिनेता-अभिनेत्रियों आदि-आदि सभी को चमचों की हमेशा जरूरत रहती है. वहां ये सब लोग फिट हो सकते हैं. यदि वहां घुसपैठ न हो सके तो जूनियर आर्टिस्टों के दलालों के पास अपना नाम पंजीकृत करा लें. वहां अगर वे कुछ कर पाने में सफल हो गए तो संभव है एक दिन राजनीति में भी उनके दिन फिर जायें. □

● व्यंग्यचित्र : बदर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकों की बढ़ती कीमतों के खिलाफ एक कारगर कदम

नव वर्ष के उपहार के साथ डाक व्यय से पूरी छूट

राजकमल पेपरबैक्स

उत्कृष्ट साहित्य कलात्मक रूपाकार

सस्ता इतना कि आप खरीद सकें

नये वर्ष पर एक दुर्लभ उपहार

महाकवि कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तलम् का
राजा लक्ष्मणसिंह कृत सरस गद्य-पद्यानुवाद

शकुन्तला नाटक

20 कलात्मक चित्रों से अलंकृत

नयी पुस्तकें

- भगवान परशुराम/कन्हैयालाल मुंशी/17.00
- रोमियो जूलियट और अँधेरा
- यान ओत्वेनाशेक अनु: निर्मल वर्मा/11.00
- शेष यात्रा/उषा प्रियम्वदा/8.00
- प्रतिनिधि कहानियाँ/काशीनाथ सिंह/10.00
- प्रतिनिधि कविताएँ/नागार्जुन/10.00

उपहार के लिए निम्नांकित सूची में से 60/- मूल्य की पुस्तकों का आदेश यथाशीघ्र भेजें

उपन्यास

- अनामदास का पोथा / हजारीप्रसाद द्विवेदी / 12.00
- बाणभट्ट की आत्मकथा / हजारीप्रसाद द्विवेदी / 15.00
- मैला आँचल / फणीश्वरनाथ रेणु / 17.00
- राग दरबारी / श्रीलाल शुक्ल / 18.00
- आधा गाँव / राही मासूम रज़ा / 17.00
- वे दिन / निर्मल वर्मा / 11.00
- एक चिथड़ा सुख / निर्मल वर्मा / 10.00
- मित्रो मरजानी / कृष्णा सोबती / 6.00
- डार से बिछुड़ी / कृष्णा सोबती / 6.00
- तमस / भीष्म साहनी / 15.00
- बसन्ती / भीष्म साहनी / 10.00
- रेखा / भगवतीचरण वर्मा / 15.00
- सुहाग के नूपुर / अमृतलाल नागर / 12.00
- कुरु-कुरु स्वाहा / मनोहरश्याम जोशी / 13.00
- अँधेरे बन्द कमरे / मोहन राकेश / 18.00
- लोग / गिरिराज किशोर / 11.00
- शह और मात / राजेन्द्र यादव / 13.00
- रुकोगी नहीं राधिका / उषा प्रियम्वदा / 6.00
- नंगा शहर / भीमसेन त्यागी / 6.00
- सूखा पत्ता / अमरकान्त / 12.00
- अठारह सूरज के पौधे / रमेश बक्षी / 6.00
- आधा पुल / जगदीशचन्द्र / 12.00
- एक चूहे की मौत / बदीउज़्ज़माँ / 11.00
- अध चाँदनी रात / गुरदयालसिंह / 10.00
- अजनबी / आल्बेयर कामू / 6.00
- उस रात के बाद / ग्रेहम ग्रीन / 12.00
- हिरोशिमा के फूल, वियतनाम को प्यार / एदिता मोरिस / 11.00
- और मौत मर गयी / उषा शेठ / 8.00
- बीसवीं सदी का जिन्न / लाज़ार लागिन /6.00

कहानी

- प्रतिनिधि कहानियाँ / फणीश्वरनाथ रेणु / 10.00
- प्रतिनिधि कहानियाँ / भगवतीचरण वर्मा / 10.00
- प्रतिनिधि कहानियाँ / अमरकान्त / 10.00
- प्रतिनिधि कहानियाँ / मन्नू भण्डारी / 10.00
- प्रतिनिधि कहानियाँ / ज्ञानरंजन / 10.00

व्यंग्य

- प्रतिनिधि व्यंग्य / हरिशंकर परसाई / 10.00

नाटक

- पगला गोंडा, एवम् इन्द्रजित / बादल सरकार / 10.00
- बहू / अक्स पहेली / त्रिपुरारी शर्मा / 10.00

कविता

- प्रतिनिधि कविताएँ / मुक्तिबोध / 10.00
- प्रतिनिधि कविताएँ / सर्वेश्वरदयाल सक्सेना / 10.00
- प्रतिनिधि कविताएँ / फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ / 10.00
- प्रतिनिधि कविताएँ / अमृता प्रीतम / 10.00

संस्मरण

- अपनी खबर / पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' / 6.00
- मीना बाजार / सआदत हसन मण्टो / 6.00

शोधालोचना

- दूसरी परम्परा की खोज / डॉ. नामवरसिंह / 10.00

आलोचना पुस्तक परिवार के सदस्य बनकर
लागत-मात्र मूल्य पर घर-बैठे श्रेष्ठ पुस्तकें मँगाइए

राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड

8, नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-110 002
शाखा : साइंस कालिज के सामने, पटना - 800006

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इलाहाबादी फर्ज

▫ विभा देवसरे

इलाहाबाद का आदमी इलाहाबाद के बाहर हो या भीतर उसके दिमाग से अपने शहर का भूत आसानी से उतरता नहीं...कैसा होता है यह भूत...?

सारे देश की निगाहें इलाहाबाद के चुनाव पर हैं. चर्चा का विषय बना हुआ है, तो भला मैं ये क्यों भूल जाऊं कि मैं भी इलाहाबादी हूं. बच्चे, बूढ़े, पुरुष, महिलाएं सभी के बीच एक ही चर्चा है 'अपना अमिताभ इलाहाबाद से चुनाव लड़ रहा है.' यहां इलाहाबाद से दूर रहकर भी मैं हर गली और मुहल्ले की और घर-आंगन की चर्चा का काल्पनिक रसास्वादन कर पा रही हूं तो उनका रसास्वादन आप क्यों न करें.

बिट्टी की अम्मा के घर सुबह-सुबह बिन्नो की बुआ, लल्लू बाबू की अम्मा और सरोजनी की चाची आ धमकीं. बिन्नो की बुआ जरा मसखरे मिजाज की है सो सरोजनी की चाची को छेड़ते हुए बोली, "कहो चाची, इस बार तो तुम अमिताभ को वोट दोगी." सरोजनी की चाची के हाथ मटकाते हुए कहा, "और तुम क्या अपना वोट कूड़ेदान में डालोगी, अरे मइय्या, ई समझो कि हम लोगन के भाग्य का उदय भवा है, नहीं तो अपने अमिताभ बंबई और दिल्ली नगरिया छोड़कर इलाहाबाद से नहीं खड़े होते. ई जानो कि गंगा की पवित्तर मिट्टी उनका खींच लाई है, नहीं तो ई जानो कि उ तो कौनो बंजर भूमि से खड़े हो जाये, तबौ खेत लहलहा उठेगा." लल्लू की अम्मा कुछ गंभीर किस्म की है, राजनीति की समझ समझ भी उनको थोड़ी बहुत है. सो मुंह बिचका के बोलीं, "हवा ऐसी चल गयी है कि बात तुम्हारी सोलह आने सही उतरेगी. पर ई समझो कि सिनेमा के पर्दे पर जौन कर्म-कुकर्म अमिताभ करते हैं, उ सब राजनैति में नहीं चल सकत है, ओके बरे तो अभी उ बच्चा हैं. लड़कियन के कमर में हाथ डार के नाचै-कूदे से राजनैति नहीं ..."

बिन्नो की बुआ ने बात काटते हुए कहा, "देखो लल्लू की अम्मा, एमे, कौनो बुरा माने की बात नहीं है, अब तुमहूं अमिताभ का मुकाबला लल्लू के मामा से कर रही हो. कहां राजदुलार अमिताभ और कहां...अब रहा लड़कियन के कमर में हाथ डार के नाचै की बात, तो का भगवान कृष्ण गोपियन के संग नाही नाचत रहे, पर बखत पड़ै पर अपनी कानी अंगरी पर गोवर्धन पर्वत उठाय लिए रहे, यहै तो हम कहत हैं कि लल्लू की अम्मा, दिन-रात चूल्हा-चौकी में मूड़ न घुसेरे रहा करो, अरे भाई, आदमी का समय के साथ चलै का चाही. . ."

सरोजनी की चाची ने आगे की बागडोर सम्हालते हुए कहा, "और नहीं तो क्या, पर लल्लू की अम्मा को राजनैति से फुरसत मिले तब न, अरे ई नहीं समझेंगी कि बच्चे, बूढ़े, जवान सभी अमिताभ के रंग में रंगे हैं, औउर तो औउर, ओकर बड़प्पन तो देखो, ऐसी कठिन घड़ी में जब राजीव मझधार में अकेले खड़े हैं. कइसन आपन राज-पाठ छोड़कर राजीव का हाथ बटावे के बारे में राजनैति में आय गवा है."

चर्चा से ये स्पष्ट है कि सरोजनी की चाची, बिन्नो की बुआ में जागरूकता कुछ कम नहीं है. ये बात अलग है कि लल्लू की अम्मा अमिताभ को जिम्मेदार नहीं समझ रही हैं. पर ये पूर्ण रूप से विश्वसनीय है कि अमिताभ ने राजीव की ओर जो हाथ बढ़ाया है वो सच्ची दोस्ती का हाथ है. मुझे तो 31 अक्तूबर की रात का वो टी. वी. दृश्य नहीं भूलता जब सारा देश शोक के सागर में डूबा हुआ था और तीन मूर्ति में हम सबकी प्रिय प्रधानमंत्री चिर निद्रा में लीन थी. उस दिन भी राजीव के साथ अमिताभ ने भी उन्हें कंधा दिया था.

भीड़ उमड़ी पड़ रही थी, उस दुखद दृश्य से सबके मन में उदासी और आंखों में आंसू थे--उस घनघोर अंधेरे में बिजली की चमक की तरह केवल अमिताभ ही दिखाई दे रहे थे. और तब जब अपनी वज़नदार आवाज में अमिताभ ने अपनी श्रद्धांजलि व्यक्त की... "उन्होंने मेरा मस्तिष्क चूमा-आज वे हमारे बीच न होते हुए भी प्रत्येक भारतवासी के मस्तिष्क पर हाथ फेर रही हैं."

चुनाव से देश में जो एक ताजगी आई है उसका श्रेय अमिताभ को जाता है. जिस तरह अमिताभ चर्चा का विषय बने हैं वैसी चर्चा किसी राजनेता की नहीं है.

मुझे पूरा विश्वास है कि लल्लू की अम्मा को, सरोजनी की चाची और बिन्नो की बुआ अमिताभ की फिल्में दिखाएंगी और वे उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रहेंगी, आखिर उन्हें अपने इलाहाबादी होने का फ़र्ज भी तो पूरा करना ही है. □

● एम. 233 विकासपुरी, नयी दिल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

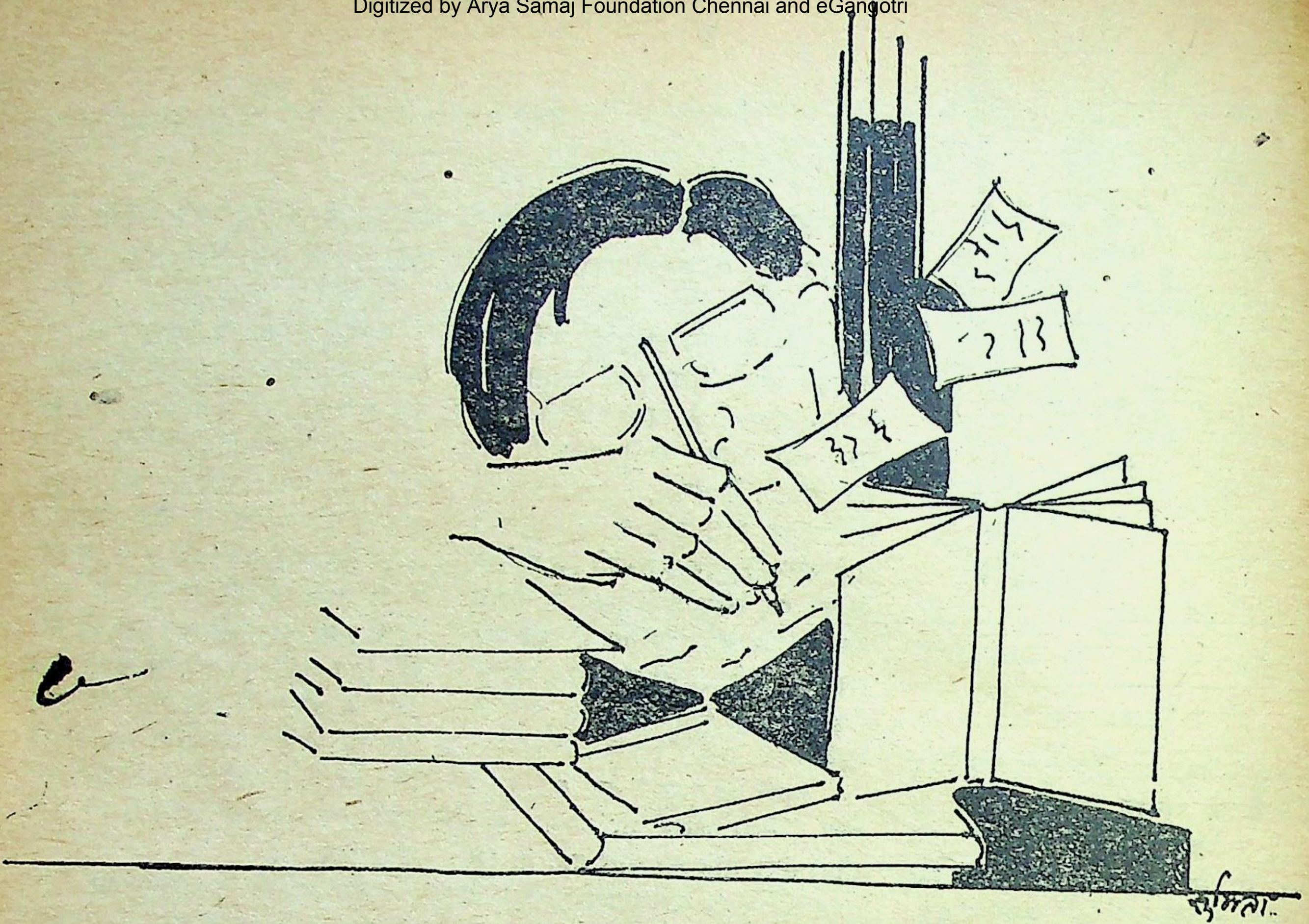

पहली सीख

▣ बलराम

पहले ही स्वीकार कर लूं कि दैनिक 'सरताज' से मैं इसलिए नहीं जुड़ा था कि पत्रकारिता या लेखन को लेकर मेरे कोई खास सपने थे या कि मैं जन्मजात लेखक था या कि पत्रकारिता मेरे बाप-दादों की पुश्तैनी जीविका थी.

इन बातों में से कोई भी बात ऐसी नहीं है, जिससे मैं दूर-दराज का भी अपना कोई संबंध कायम कर सकूं. सच तो यह है कि पत्रकारिता से पढ़ने-लिखने का जितना अधिक संबंध है, मेरे बाप-दादों को पढ़ने-लिखने से शायद उतरी ही चिढ़ थी, अन्यथा क्या कारण था कि उनमें से कभी किसी ने उर्दू-फारसी या अंग्रेजी तो दूर, हिंदी तक की वर्णमाला नहीं सीखी थी, पर जैसे ही अंग्रेजों ने कांग्रेस को सत्ता सौंपी, पढ़ने-लिखने की कुछ ऐसी हवा बही कि हिंदुस्तान का घर-घर शिक्षा की रोशनी से जगमगा उठा. हवा बही थी तो फिर बहकर हमारे गांव-घर तक भी आनी ही थी और घर का सबसे बड़ा बेटा होने के कारण मुझे स्कूल जाना ही था. जाना था तो मैं स्कूल गया, कालेज भी गया और फिर कानपुर विश्वविद्यालय से हिंदी में एम. ए. करके मां-बाप की छाती पर मूंग दलने लगा. पढ़ाई-लिखाई के दौरान जो कठिनाइयां आनी थीं, आयीं ही. एम. ए. हो जाने के बाद वे और बढ़ गयीं, क्योंकि अब मैं गांव-घर में रहकर खेती-बाड़ी करने लायक नहीं रह गया था और यदि खेती-बाड़ी ही करनी थी तो घरवालों का इतना रुपया-पैसा फूंककर पढ़ने की जरूरत क्या थी ? कुल मिलाकर समस्याएं बढ़ गयी थीं—समस्याएं, जो सिर्फ मेरी नहीं थीं. जितनी मेरी थीं, उतनी ही घर वालों की भी. घर, जिसमें मां थी, भाई-बहन थे, पिता और बाबा भी. बाबा थे कि आंखें मींचने से पहले मेरी भांवरें पड़ती देख लेना चाहते थे और पिता की रुचि मेरी शादी में इसलिए थी कि काम करते-करते थक जाने का ताना मां से उन्हें अक्सर मिलने लगा था और खेती-बाड़ी में लगे छोटे भाइयों की मेरी शादी करवा देने की रुचि का अपना कारण था, उचित कारण.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरी शादी हो जाये तो उनका नंबर लगे, लेकिन मैं था कि नौकरी से पहले छोकरी के जंजाल में बिलकुल भी नहीं पड़ना चाहता था.

पहले नौकरी, फिर छोकरी, और छोकरी भी कैसी, अपने मन की, रूपवती, गुणवती और पढ़ी-लिखी, जबकि घर के लोगों की नजर में पढ़ी-लिखी लड़की का मतलब चिट्ठी-पत्री लिख लेने भर तक सीमित था. मामा ने ऐसी एक लड़की देखकर उससे मेरी शादी की बात तय भी कर रखी थी, लेकिन मैं एम. ए. से कम पढ़ी-लिखी लड़की के साथ शादी करने के संबंध में कोई बात सुनना भी पसंद नहीं करता था. तभी मां को अचानक न जाने कैसे टिटनेस हुई और वे गुजर गयीं और घर चलाने के लिए किसी लड़की का बहू बनकर घर-परिवार में आना जरूरी हो गया. तब बिना किसी चीं-चपड़ के मामा की देखी हुई लड़की के साथ मेरी भांवरें पड़ गयीं. एक सपने का अंत हुआ और दूसरे का जन्म.

एक उम्र होती है सपनों की, अच्छे-अच्छे सपनों की, अच्छी नौकरी के सपने, अच्छी छोकरी के सपने, अच्छी जिंदगी के सपने, पर हालात की पहली पटखनी से ही कैसे सब कुछ टूट-फूटकर जिंदगी की राहों पर किरचों की तरह बिखर जाता है और शेष रहते हैं लहूलुहान पांव. युवा मानसिकता को रेखांकित करती कथा--

दूसरा सपना था, अच्छी-सी नौकरी. कई जगह अर्जियां भेजीं, जवाब सिर्फ 'सरताज' से आया. लिखित जांच हुई और फिर साक्षात्कार. मैं चुन लिया गया--प्रशिक्षणार्थी पत्रकार.

चयन के बाद मैंने पहली तारीख से दैनिक 'सरताज' ज्वाइन कर लिया और मेरा प्रशिक्षण शुरू हो गया. प्रधान संपादक ने मुझे अपने केबिन में बुलाया और बताया कि डाक एडीशन के साथ मुझे प्रति सप्ताह दो फिल्मों की समीक्षा भी लिखनी है. दो फिल्मों के पास देते हुए उन्होंने कहा कि परसों सुबह तक इनकी समीक्षा मिल जानी चाहिए.

यह काम पाकर मैं काफी खुश हुआ. घटिया और स्तरहीन फिल्मों की खाट खड़ी करके रख दूंगा, मैंने तय किया था. 'सरताज' चूंकि प्रदेश का सर्वाधिक बिक्रीवाला अखबार है, इसलिए जनता पर मेरे लिखे हुए का असर पड़ेगा, सोचकर मैंने बड़े उत्साह से दोनों फिल्में देखीं और समीक्षाएं लिख डालीं.

दैनिक समाचार पत्र के लिहाज से मैंने बोधगम्य भाषा में अपनी दोटूक राय जाहिर कर दी थी. मुझे उम्मीद थी कि समीक्षाएं संपादकजी को पसंद आयेगी. अखबार में अब तक छपती रही घिसी-पिटी समीक्षाओं की तुलना में मेरी समीक्षाएं प्रधान संपादक को भी पसंद आनी चाहिए, मैंने सोचा और संपादकजी की बजाय सीधे प्रधान संपादक को दिखाने के इरादे से उनकी केबिन में घुस गया, लेकिन वे एक हफ्ते के लिए बाहर चले गये थे. मन मारकर समीक्षाएं संपादकजी की मेज पर रखकर उनके सामने खड़ा हो गया. मेरी लिखी समीक्षाएं पढ़कर वह आगबबूला हो उठे और समीक्षाएं मेरे मुंह पर दे मारीं. मेरी समझ में नहीं आया कि समीक्षाओं में ऐसा क्या है कि संपादकजी इस कदर भड़क उठे.

किसी पिटे हुए मोहरे की तरह मैं वहां कुछ देर चुपचाप खड़ा रहा तो फिर शायद उन्हें लगा कि मेरे जैसे एकदम नये आदमी के साथ उन्हें ऐसा नहीं करना चाहिए था. तब उन्होंने मुझे बैठने का संकेत किया और समझाते हुए बोले, "तुम्हारी राय अपनी जगह सही हो सकती है, पर ये टाकीजें भवानी साहब की हैं और वे हमें हर महीने अपने किसी न किसी प्रतिष्ठान का विज्ञापन देते हैं. तुम्हारी समीक्षा छपते ही उनके विज्ञापन बंद हो सकते हैं और इसी तरह से अगर हम दस-बीस लोगों को नाराज करके बैठ गये तो हमारा अखबार बंद हो जायेगा और अखबार बंद हो गया तो समझो हमारी नौकरी खत्म. इसलिए ऐसा कुछ मत लिखो, जिससे विज्ञापनदाता नाराज हों. जाओ और इन समीक्षाओं को दुबारा लिखकर दिखाओ."

पत्रकारिता की इस पहली सीख ने ही मुझे ऐसी जमीन पर पटक दिया, जहां मेरे हाथ-पांव लुंज-पुंज हो गये.

अगले दिन समीक्षाओं का पुनर्लेखन किया और मध्य-मार्ग का अनुसरण कर फिल्मों की थोड़ी तारीफ की, थोड़ी-सी धुनाई, लेकिन वे समीक्षाएं भी संपादकजी को पसंद नहीं आयीं. तीसरी बार फिर लिखने का आदेश देते हुए वे बोले, "आपकी इन समीक्षाओं से न तो यह पता लगता है कि फिल्में अच्छी हैं और न ही यह कि फिल्में खराब हैं. इतने बड़े अखबार में लिखते हुए आपको इसकी गरिमा का खयाल तो रखना ही चाहिए."

तीसरी बार लिखकर मैंने समीक्षाएं फिर संपादकजी के सामने परोस दीं. ताज्जुब है कि फिल्मों की सतही तारीफ संपादकजी को पसंद आयी और दोनों समीक्षाएं तत्काल कंपोजिंग विभाग को भेज दी गयीं. पंचिंग और कास्टिंग के बाद चार बजे तक गैलियां मेरे सामने थीं. हीरो-हीरोइनों के कुछ उत्तेजक चित्रों के ब्लाक भी बनकर आ गये.

आठ बजे मैंने चौथे पेज का स्टोनप्रूफ देखा, उसमें अपनी करतूत देखी और उसके नीचे छपा अपना नाम देखा तो एकबारगी मन किया कि यहां से भाग जाऊं, पर तुरंत ही सवाल उठ खड़ा हुआ कि यहां से भागकर जाऊंगा तो दूसरी नौकरी कहां धरी है? तय है कि मैं नहीं भाग सकता. अब दैनिक 'सरताज' में मेरे नाम से जो भी छपता है, वह, वह नहीं होता, जो मैं लिखना चाहता हूं, वह वह होता है, जो संपादकजी चाहते हैं और संपादकजी क्या चाहते हैं, उन्होंने पहले दिन ही अच्छी तरह से समझा दिया था. □

● एफ-1917 नेताजी नगर, नयी दिल्ली-110023

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युवा-लेखन कहानी प्रतियोगिता

सिरी उपमा जोग

• शिवमूर्ति

किर्र-किर्र-किर्र. घंटी बजती है. एक आदमी पर्दा उठाकर कमरे से बाहर निकलता है. अर्दली बाहर प्रतीक्षारत लोगों में से एक आदमी को इशारा करता है. वह आदमी जल्दी-जल्दी अंदर जाता है.

सबेरे आठ बजे से यही क्रम जारी है. अभी दस बजे ए.डी.एम. साहब को दौरे पर भी जाना है, लेकिन भीड़ है कि कम होने का नाम ही नहीं ले रही. किसी की खेत की समस्या है तो किसी की सीमेंट की. किसी की चीनी की तो किसी की लाइसेंस की. समस्याएं ही समस्याएं.

पौने दस बजे एक लंबी घंटी बजती है. प्रत्युत्तर में अर्दली भागा-भागा भीतर जाता है.

"कितने मुलाकाती हैं अभी?"

"हुजूर, सात-आठ होंगे."

"सबको एक साथ भेज दो."

अगले क्षण कई लोगों का झुंड अंदर घुसता है, लेकिन दस-ग्यारह साल का एक लड़का अभी भी बाहर बरांडे में खड़ा है. अर्दली झुंझलाता है, "जा-जा, तू भी जा अंदर."

"मुझे अकेले में मिला दो." लड़का फिर मिनमिनाया.

इस बार अर्दली भड़क जाता है, "आखिर ऐसा क्या है, जो तू सबेरे से अकेले-अकेले की रट लगा रहा है. क्या है इस चिट्ठी में, बोल तो, क्या चाहिए—चीनी, सीमेंट, मिट्टी का तेल .."

लड़का चुप रह जाता है. चिट्ठी वापस जेब में डाल लेता है. अर्दली लड़के को ध्यान से देख रहा है. मटमैली-सी सूती कमीज और पायजामा. गले में लाल रंग का गमछा. छोटे, कड़े, खड़े, रूखे बाल. नंगे पांव. धूल-धूसरित चेहरा, मुरझाया हुआ. अपरिचित माहौल में किंचित संभ्रमित. अविश्वासी और कठोर. दूर देहात से आया हुआ लगता है.

कुछ सोचकर अर्दली आश्वासन देता है, "अच्छा, इस बार तू अकेले में मिल ले." लेकिन जब तक अंदर के लोग बाहर आयें, साहब ऑफिस-रूम से बेड-रूम में चले जाते हैं.

ड्राइवर आकर जीप पोंछने लगता है. फिर इंजन स्टार्ट करके पानी डालता है. लड़का जीप के आगे-पीछे हो रहा है.

थोड़ी देर में अर्दली निकलता है—साहब की मैगजीन, रूल, पान का डिब्बा, सिगरेट का पैकेट और माचिस लेकर. फिर निकलते हैं साहब, धूपछांही चश्मा लगाये. चेहरे पर आभिजात्य और गंभीरता ओढ़े हुए.

लड़के पर नजर पड़ते ही पूछते हैं, "हां, बोलो बेटे, कैसे?" लड़का सहसा कुछ बोल नहीं पा रहा है. वह संभ्रम नमस्कार करता है.

"ठीक है, ठीक है." साहब जीप में बैठते हुए पूछते हैं, "काम बोलो अपना, जल्दी, क्या चाहिए?"

अर्दली बोलता है, "हुजूर, मैंने लाख पूछा कि क्या काम है, बताता ही नहीं. कहता है, साहब से अकेले में बताना है."

"अकेले में बताना है तो कल मिलना, कल."

जीप रेंगने लगती है. लड़का एक क्षण असमंजस में रहता है और फिर जीप के बगल में दौड़ते हुए जेब से एक चिट्ठी निकालकर साहब की गोद में फेंक देता है.

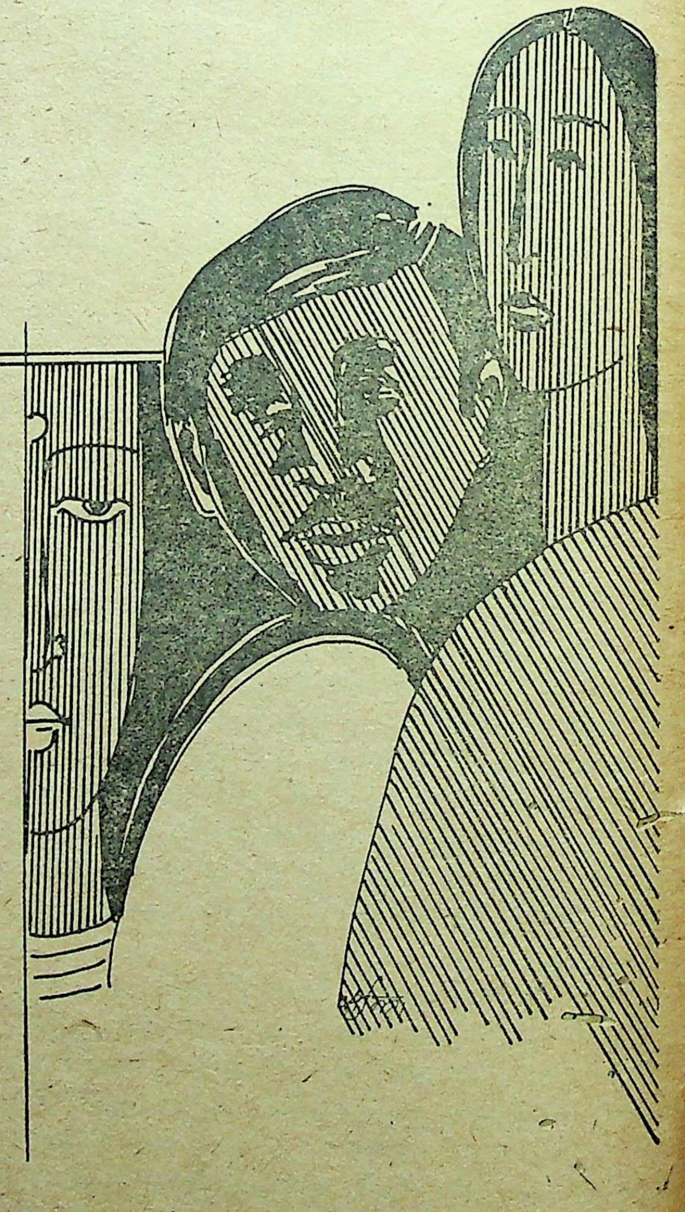

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"वे चाहते हैं कि हम लोग गांव छोड़कर भाग जायें तो सारी खेती-बारी, घर-दुवार पर उनका कब्जा हो जाये. आठ दिन हुए, आपके चाचाजी हमें बड़ी मार मारे. मेरा एक दांत टूट गया. हाथ-पांव सूज गये हैं. कहते हैं, गांव छोड़कर भाग जाओ, नहीं तो महथारी-बेटे का मूंड़ काट लेंगे." अपनी मेहनत और निष्ठा से अपने भतार को ऊंची कुर्सी पर पहुंचानेवाली ठेठ भारतीय नारी के संघर्ष का अपूर्व आख्यान पेश करती दिसंबर, १९८४ की युवालेखन कहानी-प्रतियोगिता की पुरस्कार विजेता कहानी—

"ठीक है, ठीक है. एक हफ्ते बाद मिलना." साहब एक चालू आश्वासन देते हैं. तब तक लड़का पीछे छूट जाता है.

लेकिन चिट्ठी की गंवारू शक्ल उनकी उत्सुकता बढ़ा देती है. उसे आटे की लेई से चिपकाया गया है.

चिट्ठी खोलकर वे पढ़ना शुरू करते हैं—"सरब सिरी उपमा जोग, खत लिखा लालू की माई की तरफ से, लालू के बप्पा को पांव छूना पहुंचे. . .

अचानक जैसे करेंट लग जाता है उनको. लालू की माई की चिट्ठी, इतने दिनों बाद. पसीना चुहचुहा आया है उनके माथे पर. सन्न.

बड़ी देर बाद प्रकृतिस्थ होते हैं वे. तिरछी आंखों और बैक-मिरर से देखते हैं—ड्राइवर निर्विकार जीप चलाये जा रहा है. अर्दली ऊंघते हुए झूलने लगा है.

वे फिर चिट्ठी खोलते हैं—"आगे समाचार मालूम हो कि हम लोग यहां पर राजी-खुशी से हैं और आपकी राजी-खुशी भगवान से नेक मनाया करते हैं. आगे, लालू के बप्पा को मालूम हो कि हम अपनी याद दिलाकर आपको दुखी नहीं करना चाहते, लेकिन कुछ ऐसी मुसीबत आ गयी है कि लालू को आप के पास भेजना जरूरी हो गया है. लालू दस महीने का था, तब आप आखिरी बार गांव आये थे. उस बात को दस साल होने जा रहे हैं. इधर दो-तीन साल से आपके चाचाजी ने हम लोगों को सताना शुरू कर दिया है. किसी न किसी बहाने से हमको, लालू को और कभी-कभी कमला को भी मारते-पीटते रहते हैं. जानते हैं कि आपने हम लोगों को छोड़ दिया है, इसलिए गांव भर में कहते हैं कि 'लालू' आपका बेटा नहीं है.

वे चाहते हैं कि हम लोग गांव छोड़कर भाग जायें तो सारी खेती-बारी, घर-दुवार पर उनका कब्जा हो जाये. आज आठ दिन हुए, आपके चाचाजी हमें बड़ी मार मारे. मेरा एक दांत टूट गया. हाथ-पांव सूज गये हैं. कहते हैं—गांव छोड़कर भाग जाओ, नहीं तो महतारी-बेटे का मूंड़ काट लेंगे. अपने हिस्से का महुए का पेड़ वे जबरदस्ती कटवा लिये हैं. कमला अब सत्रह वर्ष की हो गयी है. मैंने बहुत दौड़-धूप कर एक जगह उसकी शादी पक्की की है. अगर आपके चाचाजी मेरी झूठी बदनामी लड़केवालों तक पहुंचा देंगे तो मेरी बिटिया की शादी भी टूट जायेगी. इसलिए आपसे हाथ जोड़कर विनती है कि एक बार घर आकर अपने चाचाजी को समझा दीजिए. नहीं तो लालू को एक चिट्ठी ही दे दीजिए अपने चाचाजी के नाम. नहीं तो आपके आंख फेरने से तो हम भीगी बिलार बने ही हैं, अब यह गांव-डीह भी छूट जायेगा. राम खेलावन मास्टर ने अखबार देखकर बताया था कि अब आप इस जिले में हैं. इसी जगह पर लालू को भेज रही हूं."

चिट्ठी पढ़कर वे लंबी सांस लेते हैं. उन्हें याद आता है कि लड़का पीछे बंगले पर छूट गया है. कहीं किसी से अपना परिचय दे दिया तो? लेकिन अब इतनी दूर आ गये हैं कि वापस लौटना उचित नहीं लग रहा है. फिर वापस चलकर सबके सामने उससे बात भी तो नहीं की जा सकती है. उन्हें प्यास लग आयी है. ड्राइवर से कहते हैं, "जीप रोकना, प्यास लग आयी है." पानी और चाय पीकर सिगरेट सुलगाया उन्होंने. तब धीरे-धीरे प्रकृतिस्थ हो रहे हैं.

जीप आगे बढ़ रही है.

उनके मस्तिष्क में दस साल पुराना गांव उभर रहा है. गांव, जहां उनका प्रिय साथी था—महुए का पेड़, जो अब नहीं रहा. उसी की जड़ पर बैठकर सबेरे से शाम तक 'कंपटीशन' की तैयारी करते रहते थे वे. गांव, जहां उनकी उस समय की प्रिय बेटी कमला थी, जिसके लाल-लाल नरम होंठ कितने सुंदर लगते थे. महुए के पेड़ पर बैठकर कौआ जब कां! कां! बोलता तो जमीन पर बैठी नन्हीं कमला दुहराती—कां! कां! कौआ थक-हारकर उड़ जाता तो वह ताली पीटती थी. वह बिटिया अब सयानी हो गयी है. उसकी शादी होने वाली है. एक दिन हो भी जायेगी. विदा होते समय अपने छोटे भाई का पांव पकड़कर रोयेगी. बाप का पांव नहीं रहेगा पकड़कर रोने के लिए. भाई आश्वासन देगा कंधा पकड़कर, आफत-बिपत में साथ देने का. बाप की शायद कोई धुंधली-सी तस्वीर उभरे उसके दिमाग में.

फिर उनके दिमाग में पत्नी के टूटे दांत वाला चेहरा घूम गया. दीनता की मूर्ति, अति परिश्रम, कुपोषण और पति की निष्ठुरता से कृश, सूखा शरीर. हाथ-पांव सूजे हुए, मार से. बहुत गरीबी के दिन थे, जब उनका गौना हुआ था. इंटर पास किया था उस साल. लालू की माई बलिष्ठ कद-काठी की हिम्मत और जीवटवाली महिला थी, निरक्षर लेकिन आशा और आत्मविश्वास की मूर्ति. उसे देखकर उनके मन में श्रद्धा होती थी उसके प्रति. इतनी आस्था हो जिंदगी और परिश्रम में तो संसार की कोई भी वस्तु अलभ्य नहीं रह सकती. बी.ए. पास करते-करते कमला पैदा हो गयी थी. उसके बाद बरोजगारी के वर्षों में लगातार हिम्मत बंधाती रहती थी. अपने गहने बेचकर प्रतियोगिता परीक्षा के शुल्क और पुस्तकों की व्यवस्था की थी उसने. खेती-बारी का सारा काम अपने जिम्मे लेकर उन्हें परीक्षा की तैयारी के लिए मुक्त कर दिया था. रबी की सिंचाई के दिनों में सारे दिन बच्चों को पेड़ के नीचे लिटाकर कुएं पर पुर हांका करती थी. बाजार से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक मुलाकात फ़ैज से

▣ कृश्न चंदर

मैं और फैज, दोनों होटल मस्क्वा में ठहरे हुए थे, मगर एक दूसरे से मिलने की नौबत नहीं आती थी. पहली शाम जब मैं होटल मस्क्वा के लंबे-चौड़े डाइनिंग हाल में खाने के लिए गया तो देखा कि हर देश के प्रतिनिधियों के लिए एक मेज अलग से सजी हुई है और उस मेज पर उस देश का एक छोटा-सा झंडा लहरा रहा है. मैंने देखा तो कहीं आसपास पाकिस्तान की मेज नजर न आयी. बहुत खोजने के बाद मालूम हुआ कि पाकिस्तान की मेज और हिंदुस्तान की मेज के बीच कम से कम दस और मेजों की दूरी है. मैं मुस्कराकर चुप रहा और अपनी मेज पर बैठ गया. फैज अभी अपनी मेज पर न आये थे. पंद्रह-बीस मिनट शराब पीने में गुजरे. इतने में मैंने देखा कि फैज किसी दूसरे बरामदे के दरवाजे से दाखिल होकर अपनी मेज की तरफ बढ़ रहे हैं. कुर्सी पर बैठकर उन्होंने मेरी तरह चारों ओर नजर दौड़ाई. शायद उन्हें भी किसी दूसरी मेज की तलाश थी. यकायक मेरी और फैज की आंखें चार हुईं. वह फौरन अपनी कुर्सी से उठ खड़े हुए, मैं अपनी कुर्सी से. उस वक्त सारा हाल हम दोनों की तरफ अजीब निगाहों से देख रहा था.

फिर हुआ यह कि मैं अपनी मेज से हिंदुस्तान का झंडा लिये उठा और फैज अपनी मेज से पाकिस्तान का झंडा लिये उठे और हम दोनों एक दूसरे की तरफ बढ़ते हुए, मेजें पार करते हुए बीच की किसी मेज पर आकर रुक गये. उस मेज पर दोनों ने हिंदुस्तान और पाकिस्तान के झंडे साथ-साथ लहरा दिये और एक दूसरे के गले लग गये. सारा हॉल तालियां पीटने लगा.

"क्या समझते हैं ये लोग? क्या हम लोग भी अपने वैर-भाव रखने वाले राजनीतिज्ञों की तरह एक-दूसरे के दुश्मन हैं. साहित्य में यह दुश्मनी नहीं चलती और काश! कहीं भी न चले." मैंने कहा, "मगर इस बदकिस्मती को क्या कहिए कि तुम्हारी मेरी मुलाकात अब न तो हिंदुस्तान में होती है, न पाकिस्तान में. और होती है तो सिर्फ 'मास्को' में."

"इन लोगों को चाहिए," फैज ने हंसकर कहा, "अपने रूसी साहित्यकारों की कांग्रेस हर साल किया करें. इसी बहाने मिल लिया करेंगे. फिर मेरी ओर झुककर पूछा, "तुम्हारी दुभाषिया तो बड़ी खूबसूरत है, कहां से ऐंठी?" मैंने कहा, "बदल लो, मगर याद रखना, यह यहूदिन है." हम सब हंसने लगे. फिर जाम से जाम टकराने लगे. दो झंडे एक साथ लहराने लगे.

उसके बाद जितने भी दिन हम होटल मस्क्वा में रहे, मेरी और फैज की मेज एक ही रही. हिंदुस्तान और पाकिस्तान एक ही मेज पर खाना खाते रहे. □

हरी सब्जी खरीदना संभव नहीं था, लेकिन छप्पर पर चढ़ी हुए नेनुआ की लताओं को वह अगहन-पूस तक बाल्टी भर-भर कर सींचती रहती थी, जिससे उन्हें हरी सब्जी मिलती रहे. रोज सबेरे ताजी रोटी बनाकर उन्हें खिला देती और खुद बासी खाना खाकर लड़की को लेकर खेत पर चली जाती थी. एक बकरी लायी थी वह अपने मायके से, जिससे उन्हें सबेरे थोड़ा दूध या चाय मिल सके. रात को सोते समय पूछती, "अभी कितनी किताब और पढ़ना बाकी है, साहबी वाली नौकरी पाने के लिए."

वे उसके प्रश्न पर मुस्करा देते, "कुछ कहा नहीं जा सकता. सारी किताबें पढ़ लेने के बाद भी जरूरी नहीं कि साहब बन ही जायें."

"ऐसा मत सोचा करिए," वह कहती, "मेहनत करेंगे तो भगवान उसका फल जरूर देंगे."

यह उसी के त्याग, तपस्या और आस्था का परिणाम था कि एक ही बार में उनका सेलेक्शन हो गया था. परिणाम निकला तो वे खुद आश्चर्यचकित थे. घर आकर एकांत में पत्नी को गले से लगा लिया था. वाणी अवरुद्ध हो गयी थी. उसको पता लगा तो वह बड़ी देर तक निस्पंद रोती रही, बेआवाज. सिर्फ आंसू झरते रहे थे. पूछने पर बताया, "खुशी के आंसू हैं ये. गांव की औरतें ताना मारती थीं कि खुद ढोयेगी गोबर और भतार को बनायेगी कप्तान, लेकिन अब कोई कुछ नहीं कहेगा. मेरी पत बच गयी."

वे भी रोने लगे थे उसका कंधा पकड़कर.

जाने कितनी मनौतियां माने हुए थी वह. सत्यनारायण . . .संतोषी. . . शुक्रवार. . विध्याचल. . .सब एक-एक करके पूरा किया था. जरा-जीर्ण कपड़े में पुलकती घूमती उसकी छवि, जिसे कहते हैं, राजपाट पा जाने की खुशी.

सर्विस ज्वाइन करने के बाद एक-डेढ़ साल तक वे हर माह के द्वितीय शनिवार और रविवार को गांव जाते रहे थे. पिता, पत्नी, पुत्री सबके लिए कपड़े-लत्ते तथा घर की अन्य छोटी-मोटी चीजें, जो अभी तक पैसे के अभाव के कारण नहीं थीं, वे एक-एक करके लाने लगे थे. पत्नी को पढ़ाने के लिए एक ट्यूटर लगा दिया था. पत्नी की देहाती ढंग से पहनी गयी साड़ी और घिसे-पिटे कपड़े उनकी आंखों में चुभने लगे थे. एक-दो बार शहर ले जाकर फिल्म वगैरह दिखा लाये थे, जिसका अनुकरण कर वह अपने में आवश्यक सुधार ले आये. खड़ी बोली बोलने का अभ्यास कराया करते थे, लेकिन घर-गृहस्थी के अथाह काम और बीमार ससुर की सेवा से इतना समय वह न निकाल पाती, जिससे पति की इच्छा के अनुसार परिवर्तन ला पाती. वह महसूस करती थी कि उसके गंवार-पने के कारण वे अक्सर खीझ उठते और कभी-कभी तो रात में कहते कि उठकर नहा लो और कपड़े बदलो, तब आकर सोओ. मूसे जैसी महक आ रही है तुम्हारे शरीर से. उस समय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह कुछ न बोलती. चुपचाप आदेश का पालन करती, लेकिन जब मनोनुकूल वातावरण पाती तो मुस्कराकर कहती, "अब मैं आपके 'जोग' नहीं रह गयी हूं. कोई शहराती 'मेम' ढूंढ़िए अपने लिए."

"क्यों, तुम कहां जाओगी?"

"जाऊंगी कहां. यहां रहकर ससुरजी की सेवा करूंगी. आपका घर-दुवार संभालूंगी. जब कभी आप गांव आयेंगे, आपकी सेवा करूंगी."

"तुमने मेरे लिए इतना दुख झेला है. तुम्हारे ही पुण्य-प्रताप से आज मैं धूल से आसमान पर पहुंचा हूं. गाढ़े समय में सहारा दिया है. तुम्हें छोड़ दूंगा तो नरक में भी जगह मिलेगी मुझे?"

लेकिन उनके अंदर उस समय भी कहीं कोई चोर छिपा बैठा था, जिसे वे पहचान नहीं पाये थे.

जिस साल लालू पैदा हुआ, उसी साल पिताजी का देहांत हो गया. क्रिया-कर्म करके वापस गये तो मन गांव से थोड़ा-थोड़ा उचटने लगा था. दो बच्चों की प्रसूति और कुपोषण से पत्नी का स्वास्थ्य उखड़ गया था. शहर की आबोहवा तथा साथी अधिकारियों के घर-परिवार का वातावरण हीन भावना पैदा करने लगा था. जिंदगी के प्रति दृष्टिकोण बदलने लगा था. गांव कई-कई महीनों बाद आने लगे थे और आने पर पत्नी जब घर की समस्याएं बताती तो लगता, ये किसी और की समस्याएं हैं. इनसे उन्हें कुछ लेना-देना नहीं है. वे शहर में अपने को 'अनमैरिड' बताते थे. इस समय तक उसकी जान-पहचान जिला न्यायाधीश की लड़की ममता से हो चुकी थी और उसके सानिध्य के कारण पत्नी से जुड़ा रहा-सहा रागात्मक संबंध भी अत्यंत क्षीण हो चला था.

तीन-चार महीने बाद फिर गांव आये तो पत्नी ने टोका था, "इस बार काफी दुबले हो गये हैं. लगता है, काफी काम रहता है. बहुत गुमसुम रहने लगे हैं. क्या सोचते रहते हैं."

वे टाल गये थे. रात में उसने कहा, "इस बार मैं भी चलूंगी साथ में. अकेले में तो आप की देह गल जायेगी."

वे चौंक गये थे, "लेकिन यहां की खेती-बारी, घर-दुवार कौन देखेगा? अब तो पिताजी भी नहीं रहे."

"तो खेती-बारी के लिए अपना शरीर सुखाइएगा?"

"तुम तो फालतू में चिंता करती हो." लेकिन वह कुछ और सुनना चाहती थी, बोली थी, "फिर आप शादी क्यों नहीं कर लेते वहां किसी पढ़ी-लिखी लड़की से. मैं तो शहर में आपके साथ रहने लायक भी नहीं हूं."

"कौन सिखाता है तुम्हें इतनी बातें?"

"सिखायेगा कौन? यह तो सनातन से होता आया है. मैं तो आपकी सीता हूं. जब तक बनवास में रहना पड़ा, साथ में रही, लेकिन राजपाट मिल जाने के बाद तो सोने की सीता ही साथ में सोहेगी. लालू के बाबू, सीता को तो आगे भी बनवास ही लिखा रहता है."

"चुपचाप सो जाओ," लेकिन सोयी नहीं वह. बड़ी देर तक छाती पर सिर रखकर पड़ी रही. फिर बोली, "एक गीत सुनाऊंगी आपको. मेरी मां कभी-कभी गाया करती थी.

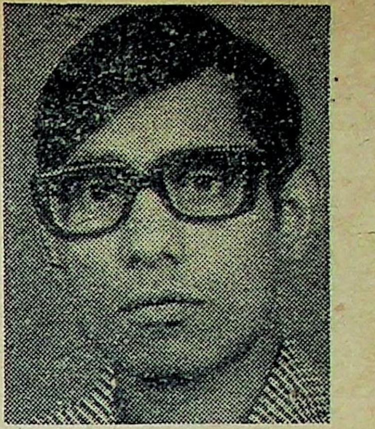

◘ शिवमूर्ति, जन्म: 11 मार्च, 1950 गोरखपुर विश्वविद्यालय से स्नातक. संप्रति: मऊनाथ-भंजन में बिक्रीकर अधिकारी. मात्र पांच कहानियां लिखकर अपूर्व ख्याति. पहली किताब 'कसाईबाड़ा' (नाटक) प्रकाशित. दूसरी किताब 'भरत-नाट्यम्' (कहानी संग्रह) प्रेस में. इन दिनों स्वातंत्र्योत्तर भारत के ग्रामीण जीवन पर आधारित एक उपन्यास पर काम कर रहे हैं.

फिर बड़े करुण स्वर में गाती रही थी वह, जिसकी एकाध पंक्ति ही अब उन्हें याद है—सौतनिया संग रहस रचावत, मों संग रहस भुलान, यह बतिया कोऊ कहत बटोही, त लगत करेजवा में बान, संवरिया भूले हमें. . .

मैं उसे दिलासा देता रहा कि वह भ्रम में पड़ गयी है, पर वह तो जैसे भविष्यद्रष्टा थी. आगत, जो अभी मेरे सामने भी बहुत स्पष्ट नहीं था, उसने साफ देख लिया था. मेरे सीने में उसने कहीं 'ममता' की गंध पा ली थी.

उस बार गांव से आये तो फिर पांच-छह महीने तक वापस जाने का मौका नहीं लग पाया. इसी बीच ममता से उनका विवाह हो गया. शादी के दूसरे या तीसरे महीने गांव से पत्नी का पत्र आया कि कमला को चेचक निकल आयी है. लालू भी बहुत बीमार है. मौका निकालकर चले आइए, लेकिन गांव वे पत्र मिलने के दो हफ्ते बाद ही जा सके. कोई बहाना ही समझ में नहीं आ रहा था, जो ममता से किया जा सकता. दोनों बच्चे तब तक ठीक हो चुके थे, लेकिन उनके पहुंचने के साथ ही उसकी आंखें झरने-सी झरती शुरू हो गयी थीं. शायद कुछ बोली नहीं थी. रात में फिर वही गीत बड़ी देर तक गाती रही थी और उनका हाथ पकड़कर बार-बार कहती थी, "लगता है, आप मेरे हाथों से फिसले जा रहे हैं और मैं आपको संभाल नहीं पा रही हूं."

वे इस बार कोई आश्वासन नहीं दे पाये थे. उसका रोना-धोना उन्हें काफी अन्यमनस्क बना रहा था. वे उकताये हुए से थे. अगले ही दिन वे वापस जाने को तैयार हो गये थे. घर से निकलने लगे तो वह आधे घंटे तक पांव पकड़कर रोती रही थी. फिर लड़की को पैरों पर झुकाया था. नन्हें लालू को पैरों पर लिटा दिया था, जैसे सब कुछ लुट गया हो. ऐसी लग रही थी वह, दीन-हीन-मलिन.

वे जान छुड़ाकर बाहर निकल आये थे. वही उनका अंतिम मिलन था. तब से दस साल के करीब होने को आये, वे न कभी गांव गये, न ही कोई चिट्ठी-पत्री लिखी.

हां, करीब साल भर बाद पत्नी की चिट्ठी जरूर आयी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी. पता नहीं कैसे उसे पता लग गया था. लिखा था—कमला नयी अम्मा के बारे में पूछती है. कभी ले आइए उनको गांव. दिखां-बता जाइए कि गांव में भी उनकी खेती-बारी, घर-दुवार है. लालू अब दौड़ लेता है. तेवारी बाबा उसका हाथ देखकर बता रहे थे कि लड़का भी बाप की तरह तोता-चशम होगा. जैसे तोते को पालिए-पोसिए, खिलाइए-पिलाइए, लेकिन मौका पाने पर उड़ जाता है. पोस नहीं मानता. वैसे ही यह भी ...... तो मैंने कहा, "बाबा, तोता 'पंछी' होता है, फिर भी अपनी आन नहीं छोड़ता. जरूर उड़ जाता है. तो आदमी होकर भला कोई कैसे अपनी आन छोड़ दे? पोसना कैसे छोड़ दे? मैं तो इसे इसके बापू से भी बड़ा साहब बनाऊंगी. . ."

उन्होंने पत्र का कोई उत्तर नहीं भेजा था. हां, वह पत्र ममता के हाथों में जरूर पड़ गया था, जिसके कारण महीनों घर में रोना-धोना और तनाव व्याप्त रहा था. और करीब नौ साल बाद आज यह दूसरा पत्र है.

पत्र उनके हाथों में बड़ी देर तक कांपता रहा और फिर उसे उन्होंने जेब में रख लिया. मन में सवाल उठने लगे—क्या मिला उसको उन्हें आगे बढ़ाकर. वे बेरोजगार रहते, गांव में खेती-बारी करते. वह कंधे से कंधा भिड़ाकर खेत में मेहनत करती. रात में दोनों सुख की नींद सोते. तीनों लोकों का सुख उसकी मुट्ठी में रहता. छोटे से संसार में आत्मतुष्ट हो जीवन काट देती. उन्हें आगे बढ़ाकर वह पीछे छूट गयी. माथे का सिंदूर और हाथ की चूड़ियां निरंतर दुख दे रही हैं उसे.

सारे दिन किसी कार्यक्रम में उनका मन नहीं लग सका.

शाम को जीप वापस लौट रही है, उनके मस्तिष्क में लड़के का चेहरा उभर आया था—जैसे मरुभूमि में खड़ा हुआ अशेष जिजीविषा वाला बबूल का कोई शिशु झाड़, जिसे कोई झंझावत डिगा नहीं सकता. कोई तपिश सुखा नहीं सकती. उपेक्षा की धूप में जो हरा-भरा रह लेगा. अनुग्रह की बाढ़ में जो गल जायेगा.

जीप गेट के अंदर मुड़ती है तो गेट से सटे चबूतरे पर लड़का औंधा लेटा दिखायी देता है. अंगोछे से उसने सारा शरीर ढक लिया है. जीप आगे बढ़ जाती है.

अंदर उनकी चार साल की बेटी टी.वी. देख रही है. आहट पाकर दौड़ी आती है और पैरों से लिपट जाती है. फिर महत्त्वपूर्ण सूचना देती है तर्जनी उठाकर, "पापा, पापा, वो बदमाश लड़का, बरांडे तक घुस आया था. मम्मी पूछती तो बोलता नहीं था. भगाती तो भागता नहीं था. मैंने अपनी मोटर फेंककर मारा. उसका माथा कट गया.—खून बहकर मुंह में जाने लगा तो थू-थू —करता हुआ भागा. और पापा, वह जरूर बदमाश था. जरा भी नहीं रोया. बस, घूर रहा था. बाहर चपरासियों के लड़के मार रहे थे, लेकिन मम्मी ने मना करवा दिया.

वाश-बेसिन की तरफ बढ़ते हुए वे ममता से पूछते हैं, "कौन था?"

"शायद आपके गांव से आया है. भेंट नहीं हुई क्या?"

"मैं तो अभी चला आ रहा हूं, कहां गया?"

"नाम नहीं बताता था. काम नहीं बताता था. कहता था, सिर्फ साहब को बताऊंगा. फिर लड़के तंग करने लगे तो बाहर चला गया."

"कुछ खाना-पीना?"

"पहले यह बताइए, वह है कौन?" एकाएक ममता का स्वर कर्कश और तेज हो गया, "उस चुड़ैल की औलाद तो नहीं, जिसे आप गांव का राज-पाट दे आये हैं. ऐसा हुआ तो खबरदार, जो उसे गेट के अंदर भी लाये, खून पी जाऊंगी"

वे चुपचाप ड्राइंगरूम में आकर सोफे पर निढाल पड़ गये हैं. चक्कर आने लगा है, शायद रक्तचाप बढ़ गया है. बाहर फागुनी जाड़ा बढ़ता जा रहा है.

सबेरे उठकर उन्होंने देखा तो चबूतरे पर 'गांव'—नहीं था. उन्होंने चैन की सांस ली. □

● बिक्रीकर अधिकारी, मऊनाथभंजन, जिला : आजमगढ़ (उत्तर प्रदेश)

मर्द के साये में धूप नहीं लगती

▣ रेशमा

जब मैं पहली बार जहाज पर बैठी थी तो मुझे अलमारी (खिड़की) की तरफ सीट मिली. जब जहाज ऊपर उड़ा तो मैंने नीचे झांका. मेरा कलेजा कांपा. मैंने कहा.—रेशमा, तेरी बोटी-बोटी हो जायेगी. मैंने अपने खाविंद को वहां बिठा दिया और उसका उड़ता हुआ रंग देखने लगी. मैंने पूछा, कांप रहा है न कलेजा? हां, बैठे रहो. गाना भी मुश्किल काम है! ऐसे जहाजों में जाना पड़ता है, वह गुमसुम रहा.

प्रोग्रामवालों ने बड़ा इंतजाम किया था. पुलिस थी, दरियां बिछी थीं. दरी तो उसके (पति के) बाप ने भी कभी न देखी होगी. लोगों ने बड़े प्यार से और इज्जत से उससे बात की. फिर थोड़ा सुधरा.

पर आदमी के आगे कलेजा निकाल के रख दो, ये ऐसी कौम है कि क्या कहूं? बीवी का नाम किस खाविंद को हजम होता है? कुढ़ते हैं, जलते हैं. मैं तो इसीलिए अपने खाविंद को प्रोग्रामों में लेकर नहीं जाती. बस, एक बार दिखा दिया जल्वा, अब सुनो और कुढ़ो, पर औरत का फर्ज है, मर्द की दो बात सुन भी ले.

जहां औरत-मर्द प्यार से रहें, वह घर जन्नत होता है. मर्द के साये में हमें धूप नहीं लगती. (कुल मिलाकर) मर्द घाटे का सौदा नहीं होता. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कैसे क्या हुआ

• शंकर दयाल सिंह

इंसान, जो रह-रहकर स्नेह, सहानुभूति, दया और ममता की अपेक्षा दूसरों से करवाता है. . .क्यों वही अनायास ऐसा हो जाता है कि सारे मानव-मूल्य धरे के धरे रह जायें. . .?

"मैं जब से इस घर में आयी मैंने दुख ही दुख देखा. . .

मैंने जीवन में किसी का बुरा नहीं किया, कोई ऐसा मंदिर-शिवाला न होगा जिसका दर्शन न किया हो, कोई व्रत-त्यौहार ऐसा नहीं, जो मुझसे छूटा हो, फिर यह विपत्ति मेरे ऊपर क्यों पड़ी. . . मेरा जवान बेटा काट दिया गया. बाहर कोई नहीं निकला, वह पुकारता रहा मैं यहां हूं, कोई नहीं निकला और मैं औरत होकर यहां से वहां छटपटाती रही. . ."

फुआ बिलख-बिलखकर रो रही थीं और मैं उनका सिर अपनी हथेलियों से थामे उन्हें चुप कराने का प्रयास कर रहा था.

खैर, कुछ देर बाद शांति हुई तो मैंने विस्तार से जानना चाहा कि खून हुआ कैसे, कहां हुआ, क्यों हुआ? कई लोग थे, जिनकी बातों को मिलाकर एक सूत्र में मैंने पिरोना चाहा तो निष्कर्ष निकला कि पहले से ही घर में मन-मुटाव चल रहा था, बूढ़े कुंवर साहब की मौत के बाद संपत्ति के बंटवारे को लेकर यह विवाद भाइयों के सिर पर भूत बन गया, जमीन के टुकड़ों को लेकर आपस में बाता-बाती से लेकर हाथापाई तक हुई, कोई किसी की सुनने के लिए तैयार नहीं, कोई किसी को कुछ समझने को तैयार नहीं और उसी का नतीजा यह कि घर की आब समाप्त हो गई, दुश्मनों ने लाभ उठाया और यह अनहोनी घटना घट गई— एक साथ तीन-तीन लोगों का खून, सही-सांझ नौ-दस बजे रात में.

चंदर बाबू को गोली मारकर जब संतोष नहीं हुआ तो उनका सर काटकर धड़ से अलग कर दिया गया. प्रणय जो उनके साथ ही कमरे में सोया था, उसने आततायियों के साथ घमासान लड़ाई लड़ी. लेकिन वह अकेला, आततायी कई. वह निहत्था, दूसरी ओर फरसे-हथियार से सभी लैस. अकेला अभिमन्यू भी तो नहीं बच पाया था! इसे पांच गोलियां लगीं, फिर भी बहादुरी से लड़ता-मारता घर के पिछवाड़े भागा-फिरा, उठा, फिर गिरा और कराहता हुआ पिछवाड़े से बोला—"मां मैं यहां हूं, मुझे कोई हथियार दो."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मां की ममता उस भयानक गोली—बंदूक-बम में भी नहीं रुक सकी,

फुआ अकेली लालटेन लेकर बाहर निकल गयीं, झुरमुटों और पेड़ों के बीच से प्रणय को खोज निकाला, लेकिन वह गिरा पड़ा था, कद्दावर लड़का जो जवानी की देहरी पर पांव रख रहा था अपनी मां से उठाए नहीं उठा—तब घर की चार-पांच औरतों ने ही उसे जाकर उठाया और आंगन में ले आयें. वहां से बरामदे में लिटाया. लड़के ने आंखें खोलीं—"तुम लोग चंदर काका को देखो, उनको. . ."

तभी बाहर से एक गोली बरामदे के छप्पर से टकरायी. इसका अर्थ यह कि घर अभी शत्रुओं से घिरा है तथा उन्हें शक है कि प्रणय अभी जिंदा है तो सब भेद बता देगा. उसने जरूर पहचान लिया है. प्रणय को टांगकर लोग अंदर घर में जाते हैं. खून में लथपथ शरीर, गोली असर करने लगी है.

"आप लोग डाक्टर और दारोगा को बुलाइए." मां चिंघारती है. लेकिन किसकी हिम्मत जो अभी घर से बाहर निकले. सारा घर अभी भी घिरा है. जब-तब टार्चों की रोशनियां जहां-जहां-तहां से चमक जाती हैं. कहने के लिए पुरुष वर्ग बहादुर होता है और औरतें कायर—लेकिन जब कभी परखने की ऐसी घड़ी आयी है, पुरुषों की कायरता और स्त्रियों का बलिदान सामने उभर कर आया है.

"आप में से कोई नहीं जायेंगे तो मैं जाती हूं अकेली."

फुआ का क्षत्रित्व जागृत हो गया था.

"भाभी, अभी चुप रहिए. देख नहीं रही हैं क्या हाल है. सबेरे देखा जायेगा." घर के एक पुरुष ने कहा.

फुआ ने उनकी ओर, और शायद सबों की ओर हिकारत और दया के भाव से देखा तथा लालटेन लेकर हवेली से अकेली बाहर निकल गयीं. पड़ोस में एक दाई रहती थी उसे जगाया, साथ लिया तथा धन-खेत के मेड़ों से होती बगल के गांव में गईं. जहां कई अन्य पट्टीदार और चौकीदार रहते थे. आवाजें यहां तक आयी थीं, लेकिन सब दुबके-सहमे बैठे थे. . .हर किसी को अपनी जान प्यारी होती है. पुरुष को अधिक, स्त्री को कम—तभी तो स्त्री होकर फुआ यहां तक जान की बाजी लगाकर आ गयी थीं. और यहां से कोई भी आदमी टस से मस होने के लिए तैयार न था, "दुलहिन, अभी वहां जाना ठीक नहीं होगा. रास्ते में ही कुछ हो न जाये. अभी यहीं रह जाइए."

"मेरा बेटा वहां आखिरी सांस ले रहा है और मैं यहां अपनी जान बचाकर बैठ जाऊं. छि:-छि: आप लोगों को साहस नहीं है, तो शर्म-लाज तो है. बैठिए आप लोग, मैं जाती हूं. फुआ रो पड़ी, लेकिन आंसुओं ने भी किसी को न पिघलाया. वह फिर बोली—चौकीदार, आप लोग सरकारी मुलाजिम हैं. आपको तो चलना ही होगा." और वह एक चौकीदार को अपने साथ तथा दूसरे को 3 किलोमीटर दूर थाने भेजकर वापस घर लौटीं, "बेटा, डाक्टर आ रहे हैं. सब कुछ ठीक हो जायेगा. . ." उन्होंने अपने आंसुओं को छिपाने की बेहद कोशिश की और फिर प्रणय के सिर पर हाथ फेरा.

"मां. . . सुनो. . ." प्रणय ने बंद आंखें खोलीं, मां उसके करीब चली गयी, "मां. . हम लोगों ने. . . उसके लिए क्या नहीं किया. . .लेकिन मां. . उसी ने हम लोगों को मरवाया."

और जब तक कोई दूसरी बात वह बोले या मां सुने उसके पहले ही प्रणय का सिर झूल गया.

एक साथ उस घर से तीन लाशें तब पोस्टमार्टम के लिए निकली थीं—चंदर बाबू प्रणय तथा उनके ही कमरे में एक बाहर का आदमी जंगल में उस दिन आकर सोया था.

चंदर बाबू ने उस शाम अपने बड़े भाई से कहा था—भइया, पता नहीं क्यों मुझे भय-सा लग रहा है. मुझे ऐसा लगता है कि मैं सुरक्षित नहीं हूं.

भाई ने हंसकर उसकी बात टाल दी थी—भला डरने की क्या बात है! इस ड्योढ़ी पर भला किसकी मजाल है जो आ जाये.

बात सही थी. उस ड्योढ़ी पर चढ़ने की किस की हिम्मत थी जिसका दरवाजा कभी बंद नहीं होता था. क्या रौब और क्या आब था कुंवर साहब का. कुंवर खानदान का अपना ही सम्मान था, अपनी हैसियत और उससे बढ़कर इज्जत थी. क्या हो? मेरे मन में अनेक सवाल सिगरेट के धुंओं के समान घूम रहे थे.

और वह बेचारा तीसरा आदमी, कौन था, कैसे मारा गया?—वह इसी परिवार से लगाव रखने वाला जंगल का आदमी था, जो बैलगाड़ी पर यहां के लिए ही लकड़ियां लेकर आया था. रात हो गई तो यहां रुक गया. जब आततायियों ने चंदर बाबू पर तथा प्रणय पर हमला किया तो उसने टॉर्च की रोशनी में कुछ लोगों को पहचान लिया और बोला, "यह आप लोग क्या कर रहे हैं? आप लोग तो बराबर इन लोग के पास आया-जाया करते हैं. कहीं कोई, दया, माया, ममता नहीं."

मुझे रह-रह कर फुआ पर गर्व हो रहा था, जिन्होंने औरत हो कर भी जिस साहस और बहादुरी का परिचय दिया था वह बेमिसाल था.

उस हवेली की देहरी से निकलने पर मुझे बहुत दूर तक रह-रह कर एक ही स्वर सुनाई देता रहा, फुआ का कलेजे को फाड़ देने वाला रुदन—'मैं जब से इस घर में आयी दुख ही दुख देखो. . . . '

बेचारी दुर्भाग्य की मारी एक सच्चाई रो रही थीं जो आज हर स्त्री के किस्मत का अंग बनता जा रहा है. पुरुष के हर कृत्य का दुख नारी को ही भोगना पड़ता है.

मेरी आंखों के सामने एक दृश्य और घूम गया. पिता जी जब फुआ की शादी ठीक कर घर लौटे तो उन्होंने दादी से कहा था—मां, तुम्हारी बेटी राजा के घर जा रही है. हम लोग उन लोगों के सामने कुछ नहीं हैं.

जैसे कुम्हार का चाक घूमे वैसे ही मेरा माथा रह-रह कर चक्कर खा रहा था—पच्चीस-तीस साल पहले पिताजी ने जो कहा था वह सच था कि आज फुआ ने जो कहा वह सच है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्वीर बोलती है

इस चित्र का कोई मनपसंद शीर्षक, सिर्फ पोस्टकार्ड पर अपने नाम-पते सहित 15 जनवरी, 1985 तक इस पते पर भेज दें—**संपादक, सारिका (तस्वीर बोलती है : 371) 10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110002.** चुने गये तीन शीर्षकों पर क्रमश: 50, 30 और 20 रुपये के नकद पुरस्कार दिये जायेंगे. आप कितने भी शीर्षक भेज सकते हैं, लेकिन हर पोस्टकार्ड पर ऊपर प्रकाशित 'तस्वीर बोलती है' बतौर कूपन चिपकाना आवश्यक है. एक कार्ड पर केवल एक ही शीर्षक भेजें.

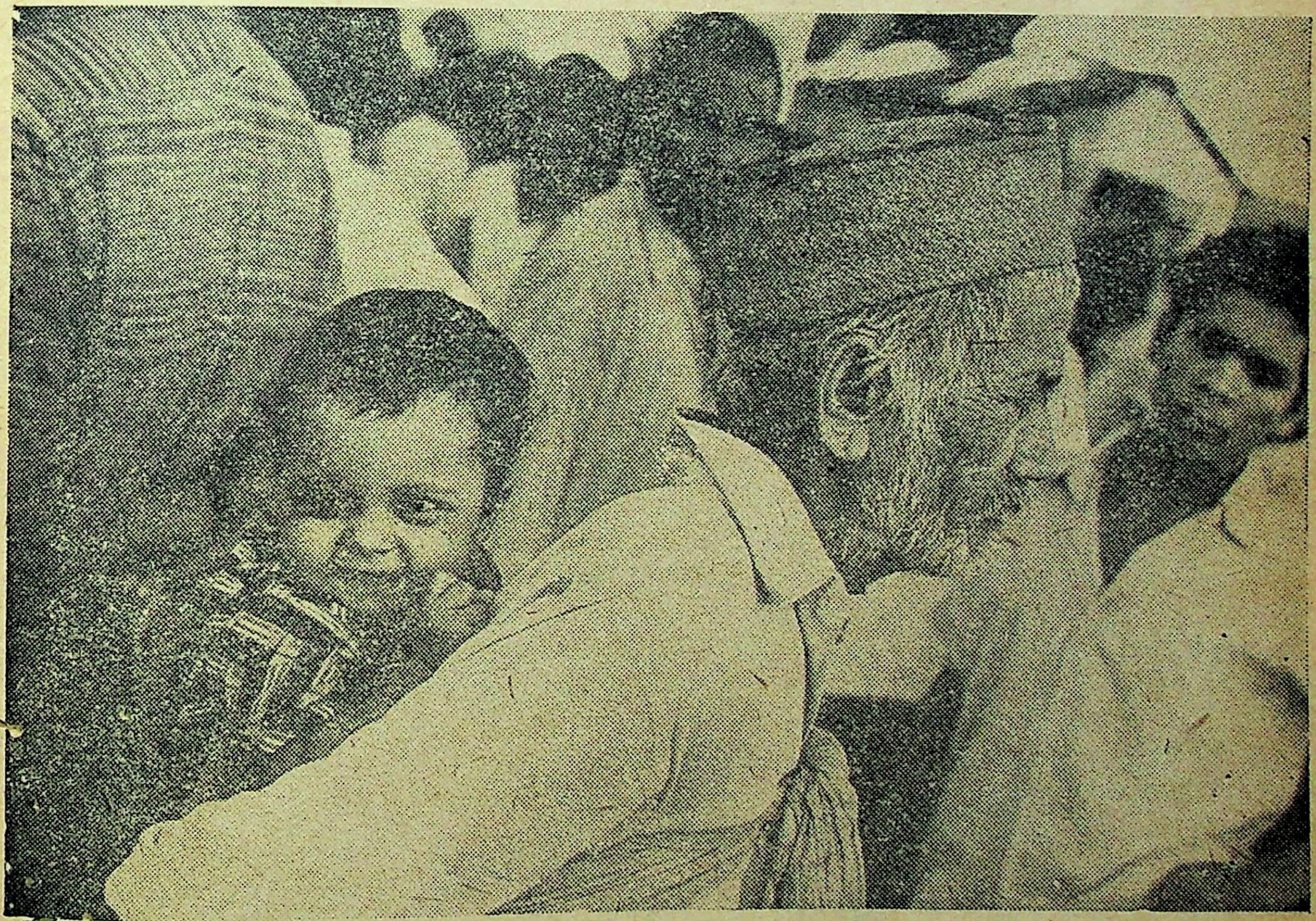

छाया : विजय वशिष्ठ

53/4, देशबंधु गुप्ता रोड, करोल बाग, नयी दिल्ली—110055

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और भुलाये न बने

अविस्मरणीय सपने, घटनाएं और संस्मरण प्रस्तुत करता पाठकों का अपना स्तंभ

वह शरीफ जेबकतरा

▣ छन्नूलाल शर्मा

सन् 1963 में भारतीय वायुसेना की एक प्रतियोगी परीक्षा बंबई में हो रही थी. उसमें मुझे शामिल होना था. चलते समय पिताजी ने एक पत्र थमाया जो जरूरत पड़ने पर बंबई स्थित टाइम्स ऑफ इंडिया प्रेस में कार्यरत उनके मित्र श्री निहालचंदानी को देने से दो सौ रुपये मिल सकते थे.

जब जेब में रुपये कम लगे तो ट्राम से चलकर प्रेस-बिल्डिंग के पास उतरा. सड़क पारकर जेब टटोली तो होश गुम हो गये. ट्राम में ही किसी ने जेब काट ली थी और पर्स में रखे बचे-खुचे रुपयों के साथ अब वह पत्र भी मेरे पास न था. यह जानकर आंखें डबडबा आईं. डबडबाई आंखों से आंसू पोंछ ही रहा था कि पास ही खड़े सिगरेट सुलगाते व्यक्ति ने पूछा, "काय रे! काय झाला?"

मेरी समस्या सुनकर पहले तो उसने डांटा फिर यह कहकर कि "अच्छा तू यहीं रुक, मैं अभी आता हूं. देखूं, तेरी क्या सहायता कर सकता हूं." प्रेस के भीतर चला गया.

थोड़ी देर बाद वह प्रेस-बिल्डिंग से बाहर आया. आते ही मेरे हाथ में दस रुपये का नोट थमाते हुए बोला, "ले ये रख. तेरे काम आयेंगे. और हां, मैंने बात कर ली है. तू भीतर जा, तुझे रुपये मिल जायेंगे."

इसके पहले कि मैं कुछ कहता, वह तेजी से भीड़ में चलकर गुम हो गया. हाथ में मुड़े-तुड़े दस रुपये के नोट को मुट्ठी में भींचे अंदर प्रेस-बिल्डिंग में घुसा. पता लगाकर श्री निहालचंदानी के पास पहुंचा. परिचय देते ही बोले, "अजीब लड़के हो तुम. अपरिचित व्यक्ति के हाथ रुपयेवाला पत्र भेजकर बाहर खड़े थे. स्वयं सीधे मेरे पास नहीं आ सकते थे तुम!"

मैं ठगा-सा खड़ा रह गया. आज भी उस दयालु जेबकतरे का चेहरा भुलाये नहीं भूल पाता हूं. □

कितना प्यारा झूठ

▣ रनवीर सिंह परमार

घटना नौ वर्ष पुरानी है. साढ़े चार वर्षीय पुत्र और तीन वर्षीय पुत्री स्कूल जाने लगे थे. पुत्र, जो नयी कमीज पहनकर गया था, जब स्कूल से लौटा तो बटन के स्थान से बटन टूटा और कमीज फटी हुई थी. शाम को मेरे घर पहुंचने पर पत्नी ने इस विषय में बताया.

बेटे से सरल स्वभाव से मैंने पूछा, "बेटा कमीज कैसे फटी?" कुछ संकोच के साथ अनपेक्षित उत्तर था, "ऐसे ही फट गई." जैसे मेरे विश्वास को धक्का लगा हो, मैंने डांटकर कहा, "ठीक बताओ वर्ना पिटाई होगी." उसने सच नहीं बोला, तो बोला ही नहीं. एक छोटे बच्चे के साथ जितनी निर्दयता नहीं होनी चाहिए थी उतनी करने पर भी वह सही बताने को तैयार ही नहीं था. पत्नी की आंखों में आंसू थे. बोली, "मत मारो, बहुत पिटा है." फिर पुत्र को समझाया, "बता क्यों नहीं देता, पिटता जा रहा है. सच बोल दे, कुछ नहीं कहेंगे." तब सच बताकर बेटे ने बाप को छोटा कर दिया था. उसने बताया, "पापा, गुड़िया (पुत्री का घर का नाम) से फट गई थी. मैं बैठा था. गुड़िया बार-बार उठने को बोल रही थी. न उठा तो मेरी कमीज पकड़कर खींचने लगी. बटन टूट गया और कमीज फट गयी."

"बेटा तुमने यह पहले ही क्यों नहीं बता दिया." कहते-कहते मेरे आंसू गिरने लगे थे. उसी कमीज से मेरे आंसू पोंछते हुए वह बोला, "पापा, बता देता तो गुड़िया की पिटाई होती." □

लहरों पर मैरिज डे

▣ शीला श्रीवास्तव

घटना पिछले जून की है, जब हम उत्तरी अंडमान द्वीप में थे. ऑफिस के कार्य से मेरे पति को पोर्टब्लेयर जाना था. जहाज के इंतजार में हमारी वैवाहिक वर्षगांठ (11 जून) भी पास आ गयी. मन में रंगीन सपने संजोकर मैंने भी साथ जाने का प्रोग्राम बना लिया.

यात्री जहाज के पहले कार्गोशिप आ गया, जो हमें 11 जून की सुबह पोर्ट ब्लेयर पहुंचा देता. हमने खुशी-खुशी सारी तैयारियां कीं.

जहाज छोड़ने के समय में निरंतर परिवर्तन और असमय की तेज वर्षा के कारण सबने मना किया कि अगले जहाज से जाना, लेकिन हमारे मन में तो 'वर्षगांठ पोर्टब्लेयर में' घूम रहा था.

रात्रि एक बजे आकर जहाज खुला. मैंने सोचा चलो सुबह न सही शाम तक तो पोर्टब्लेयर पहुंच ही जायेंगे. लगभग आधी यात्रा के पश्चात समुद्र बहुत ही अशांत हो गया. तभी वायरलेस से सूचना मिली कि तूफान आने की संभावना है. तूफान आया. सब की हालत खराब. जहाज को पास के हैवलक द्वीप में ले जाने का निर्देश मिला.

फिर तो किसी प्रकार जहाज को हैवलक जेट्टी में लगाने का प्रयास किया जाने लगा. चारों ओर अथाह समुद्र, लहरें मारता हुआ, तूफानी तेज हवा के बीच हमारा जहाज डगमगाता रहा. सबके चेहरे पर हवाइयां उड़ रही थीं.

भूखे-प्यासे, थके-हारे कदमों से हम हैवलक रेस्टहाउस पहुंचे जहां बहुत मुश्किल से सोने का स्थान और पिछली वर्षगांठ के दिल्ली के मोतीमहल के डिनर के स्थान पर मिला सिर्फ चावल-दाल और वो भी टार्च की रोशनी में—रात्रि 11 बजे. और हमने पाया कि डालफिन मछलियों को देखते हुए पोर्टब्लेयर पहुंचकर वर्षगांठ मनाने की इच्छा का नामो-निशान तक नहीं बचा था. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

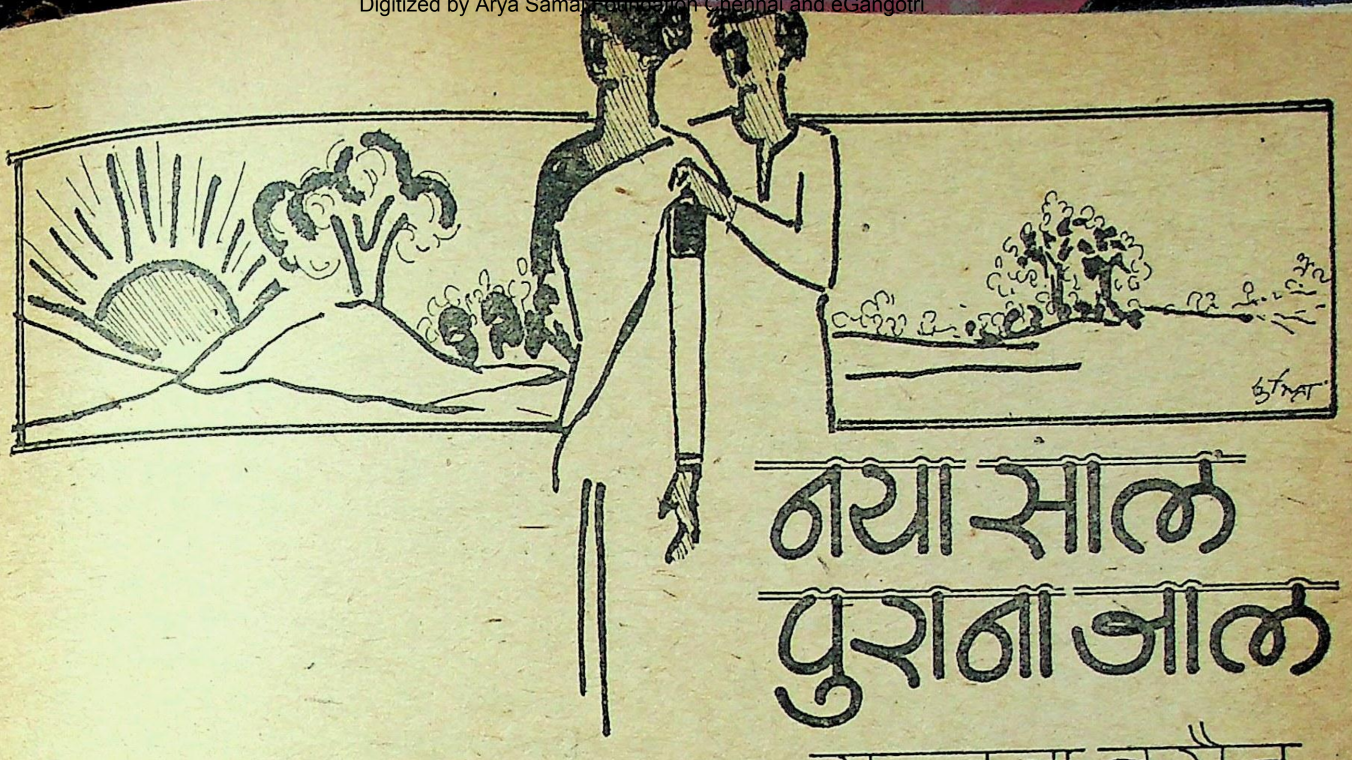

नया साल पुराना जाल

• मुज्तबा हुसैन

उर्दू के प्रसिद्ध व्यंग्यकार मुज्तबा साहब का कहना है कि— हम बड़े आत्मविश्वास के साथ आनेवाले साल के बारे में ऐसी भविष्यवाणियां कर सकते हैं जो अगर पूरी न हों तो समझ लीजिए कि नया साल आया ही नहीं! — यहां प्रस्तुत हैं वे ही भविष्यवाणियां—

सज्जनो, नया साल आ रहा है, लिहाजा पुराने साल का दिल से शुक्रिया अदा कीजिए कि उसने आपको अपने चंगुल से बच निकलने की इजाजत दे दी वर्ना ऐन संभव था कि पुराने साल के गुजरने की बजाय आप गुजर जाते और अपने पीछे थोड़े से रिश्तेदारों और बहुत से ऋणदाताओं को नये साल में रोने-धोने के लिए छोड़ जाते. हम खुद नये साल की खुशी इसलिए नहीं मनाते कि नया साल आ गया है बल्कि खुशी इस बात की मनाते हैं कि पुराना साल गुजर गया और हम नहीं गुजरे. तब हम पुराने साल की तरफ यों हिकारत की नजर डालते हैं जैसे कुश्तियों के दंगल में जीत जाने के बाद कोई पहलवान हारे हुए पहलवान की तरफ विजय के उन्माद में देखता है. सच पूछिए तो पुराना साल भी एक पहलवान ही होता है जिससे आप निरंतर 365 दिन फ्री-स्टाइल कुश्ती लड़ते हैं. वह आपको घूंसे रसीद करता है, कभी धोबी पाट दे डालता है, कभी आप उसके सीने पर सवार हो जाते हैं और वह कभी आपके सीने पर मूंग दलने लगता है, इस लगातार पटखम-पटखी के दौरान प्रायः आप ही अर्द्ध-मूर्च्छित अवस्था को प्राप्त होते रहते हैं.

मगर आप बड़ी बेशर्मी के साथ इस अर्द्धमूर्च्छित अवस्था से बाहर निकल आते हैं और फिर पुराने साल से दो-दो हाथ करने लगते हैं. अब इसी पुराने साल को लीजिए कि इसने आपकी क्या गत बना रखी थी. आप पिछले साल के घूंसों और तमाचों से संभलने भी न पाये थे कि इसने मूल्यों में वृद्धि का एक ऐसा जोरदार तमाचा आपके कोमल कपोलों पर जड़ दिया कि आपकी आंखों के आगे तीनों लोक उजागर हो उठे. आप चकराकर गिर पड़े, उठने की कोशिश की तो इस पुराने साल ने करों की एक ऐसी जबरदस्त ड्राप-किक आपके सीने पर जमा दी कि कई महीनों तक आपको यह गुमान होता रहा जैसे आपके जिस्म में सीना ही बाकी न रहा हो. मगर वह जो किसी ने कहा है कि जालिम को आखिर एक दिन मुंह की खानी पड़ती है, तो कल रात जब कुदरत के रेफ्री ने सीटी बजायी तो पता चला कि उन 365 दिनों के मुकाबले के बाद आप में अभी थोड़ी-सी जान बाकी है और पुराना साल हमेशा के लिए रुखसत हो चुका है.

मगर आप अपनी इस कामयाबी पर ज्यादा खुश होने की हिमाकत न कीजिए क्योंकि एक और मोटा-ताजा, लंबा-तड़ंगा साल आपके मुकाबले को आ गया है और याद रखिए कि हर नया साल कष्ट प्रदान करने के मामले में पुराने साल से ज्यादा ताकतवर होता है. और हमें इस वक्त उस विद्वान का कथन याद आ रहा है जिसने 1969 की आमद के मौके पर नये साल का पैगाम देते हुए कहा था कि 1969, 1968 से बुरा और 1970 से अच्छा होगा!

हम स्वभाव से थोड़े लापरवाह हैं इसीलिए हमें ठीक वक्त पर नये साल की आमद की खबर नहीं होती. हम तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कैलेंडर की तरफ देखे बगैर ही अपनी जिंदगी गुजार लेते हैं, घड़ी देखने की बात तो बहुत बड़ी है. यकीन मानिए कि हर नये साल के आमद की सूचना हमें अपनी बीवी से उस वक्त मिलती है जब वह हर नये साल में हमें एक नये बच्चे का बाप बना देती है. जब उसकी गोद में एक चांद-सा बच्चा हुमकने लगता है तो हम अचानक गफलत में सोते से जाग पड़ते हैं और अपनी आंखें मलते हुए पूछते हैं, "क्या नया साल आ गया?"

इस पर हमारी बीवी मुस्कराती हुई हमारे हाथों में नये साल को थमा देती है और कहती है, "अगर यकीन नहीं आता तो खुद अपनी आंखों से देख लो कि नया साल आ गया है, कितना खूबसूरत है! कितना मोटा-ताजा है."

इस पर हम रोनी सूरत बनाकर कहते हैं, "हां-हां, खूबसूरत तो है मगर अब मैं इस नये साल के लिए कपड़े कहां से लाऊं, दूध कहां से लाऊं, फिर जो पुराने साल बड़े हो रहे हैं तो उनकी शिक्षा-दीक्षा का कैसे बंदोबस्त करूं?"

तब हमारी बीवी हमारी परेशानी से उदासीन होकर नये साल को लोरी देने लगती है और ज्यों-ज्यों लोरी की आवाज बढ़ती जाती है हमारी नींद उचटने लगती है.

यह सिलसिला बरसों से जारी है और हम दावे के साथ यह बात कह सकते हैं कि किसी साल नया साल नहीं आ सकता मगर हमारे घर नये बच्चे का आना निहायत जरूरी है. यह एक ऐसा कुदरत का कानून है जिससे बच निकलना संभव ही नहीं है. बस एक 1965 हमारे लिए एक अपवाद जरूर है कि उस साल हमारे घर में नया साल नहीं आया. चुनांचे आज तक यह साल बकाया में चल रहा है और मिस्टर 1964 के बाद हमने दूसरे बच्चे का नाम मिस्टर 1966 ही रखा. कभी हम मजाक-मजाक में अपनी सहधर्मिणी से पूछते हैं, "1965 का हिसाब कब बेबाक होने वाला है?" तो वह धमकी की आवाज में कहती है, "अजी, आप कुदरत का मजाक न उड़ाइए, किसे मालूम कि किसी साल आप के घर जुड़वां साल पैदा हो जायें और यों सारा हिसाब बेबाक हो जाये."

नये साल की आमद की खबर तो हमें आखिर हो ही जाती है लेकिन उसकी आमद का यकीन उस वक्त तक नहीं होता, जब तक कि हमारे पड़ोसी और पड़ोसन में लड़ाई-झगड़ा शुरू न हो जाये. यह झगड़ा हमेशा नये साल के कैलेंडरों को लेकर होता है और नये साल का आधा हिस्सा गुजरने तक जारी रहता है. यों भी नया साल शुरू हो जाता है तो आदमी खुद कैलेंडरों का कैलेंडर बन जाता है.

हमने एक साहब से पूछा था कि बताओ, हर साल नया साल क्यों आता है? उन्होंने कहा था—नया साल इसलिए आता है कि हम पुराने कैलेंडरों की जगह नये कैलेंडर लगा सकें, वर्ना और तो कोई वजह नये साल के आने की नजर नहीं आती. लोग नये-नये कैलेंडर हासिल करके यों समझते हैं जैसे उनकी सामाजिक हैसियत में कोई अभिवृद्धि हो गयी हो.

हमने एक नवयुवती के बारे में यहां तक सुन रखा है कि उसके प्रेमी ने एक बार प्रेमावेश में उससे कहा, "प्रिय, आज तुम जो मांगना चाहती हो, मुझसे मांग लो, मैं दुनिया का सारा ऐश्वर्य तुम्हारे कदमों में डाल देना चाहता हूं. मैं आज तुम्हारी हर तमन्ना पूरी कर दूंगा. बोलो, तुम्हें क्या चाहिए?" इस पर नवयुवती ने अपने प्रेमी के उमड़ते हुए प्रेम से अभिभूत होकर थोड़ा लजाते हुए कहा, "मेरे देवता, हो सके तो मेरे लिए दिलीपकुमार की तस्वीरवाला कोई कैलेंडर ला दो, मैं तुम्हारा एहसान जिंदगी भर नहीं भुला सकूंगी."

कहने वाले कहते हैं कि इस जवाब को सुनकर प्रेमी के दिल में ठाठें मारता हुआ प्रेम का सागर झाग की तरह बैठ गया और इसके बाद उसे जहां कहीं भी दिलीपकुमार की तस्वीरवाला कोई कैलेंडर नजर आता तो वह उस कैलेंडर से फौरन नजर हटा लेता.

नया साल आता है तो समाज में कैलेंडरों का एक सैलाब उमड़ आता है. सिगरेट खरीदिए और कैलेंडर लीजिए, पान खरीदिए और कैलेंडर लीजिए. हमने ऐसे सज्जन भी देखे हैं जो अपना तन ढांकने के लिए तो कपड़ा खरीद लेते हैं लेकिन उसके मुआवजे में कैलेंडर जरूर ऐसी हसीना का चुनते हैं जिसके बदन पर दूर-दूर तक कोई कपड़ा नहीं होता, बल्कि हमने कपड़ों की दूकानों पर मिलनेवाले कैलेंडरों पर ऐसी हसीनाओं की तस्वीरें भी देखी हैं जिनके बदन पर घड़ी के सिवाय कोई और लिबास नहीं होता. पिछले साल एक साहब ने क्लॉथ मर्चेंट की दूकान से कपड़ा खरीदने के बाद इसी किस्म का एक कैलेंडर हासिल किया था, इस पर हमने उनसे हाथ जोड़कर यह पूछा था कि "हुजूर, यह कपड़ा आपने अपने लिए खरीदा है या कैलेंडर के लिए? अगर हो सके तो इस कपड़े का एक गिलाफ कैलेंडर के लिए भी सिलवा लीजिए!"

हमने एक दिन एक दूसरे कैलेंडरबाज व्यक्ति से पूछा, "भई, नया साल आते ही तुम इतने सारे खूबसूरत कैलेंडर क्यों जमा करते हो?"

वह बोला, "हर आनेवाला साल इतना कठिन होता है कि जब तक उसे कैलेंडरों के जरिये न बहलाया जाये उस वक्त तक न तो किसी दिन का सूरज डूबता ही है और न ही किसी रात की सुबह होती है. लिहाजा मैं इन कैलेंडरों को देख-देखकर साल का एक-एक दिन गुजारता हूं मगर कभी तारीख देखने की नौबत नहीं आती."

यह व्यक्ति हर नये साल के शुरू में 365 कैलेंडर कहीं से हासिल कर लेता है और फिर हर रोज एक नया कैलेंडर अपने दीवानखाने में लगा देता है क्योंकि हर रोज एक ही किस्म का कैलेंडर देखने से भी तो आदमी बोर हो जाता है.

हम अपने एक ऐसे दोस्त से परिचित हैं जो नया साल आते ही अपने घर की दीवारों पर कैलेंडरों का प्लास्टर चढ़ा देते हैं और यों सफेदी कराने के खर्च से बच जाते हैं.

कैलेंडरों की प्राप्ति के लिए यह दीवानगी समझ में नहीं आती. आप ही सोचिये, जिस कौम ने वक्त की अहमियत को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आसपास बिखरी कहानियां

योजना

■ पवन शर्मा

गांववालों के अनुसार वह भ्रष्ट है, क्योंकि एक बार उसने भंगी की लड़की के साथ!...

उसकी मां मर गयी. उसके गम में गांववालों में से कोई भी शरीक नहीं हुआ. गांववालों से बदला लेने के लिए उसने एक योजना बनाई. अपनी मां के तेरहवें भोज पर उसने तरह-तरह के व्यंजन बनवाये. बाद में... गांववाले उंगलियां चाटते भोज से निकले. □

● द्वारा: श्रीकृष्ण शर्मा, देलाखारी, छिंदवाड़ा (म. प्र.)

वक्त गुजारने के बाद महसूस किया हो उसके लिए कैलेंडरों के तकल्लुफ की क्या जरूरत है. फिर जिस कौम ने वक्त गुजारने के लिए कल्चरल प्रोग्रामों से लेकर मुशायरों, कवि-सम्मेलनों तक हजारों तरीके ईजाद कर रखे हों उसके लिए नये साल और पुराने में भेदभाव करना कुछ अच्छा नहीं मालूम होता.

हम अच्छी तरह जानते हैं कि आनेवाले साल में भी वही कुछ होनेवाला है जो पिछले कई बरसों से हो रहा है. हद हो गयी कि एक लीडर साहब हर नये साल के मौके पर हूबहू वही पैगाम जनता को देते हैं जो वह पिछले बरसों से देते आ रहे हैं. हमेशा उनकी यही रट होती है कि 'नया साल खुशियों और सुख-शांति का साल होगा.' हालांकि हम जानते हैं कि जब तक यह लीडर साहब राजनीति के मैदान में मौजूद रहेंगे उस वक्त तक कोई साल खुशियों और सुख-शांति का साल नहीं बन सकता.

हम बड़े आत्मविश्वास के साथ आनेवाले साल के बारे में ऐसी भविष्यवाणियां कर सकते हैं जो अगर पूरी न हों तो समझ लीजिए कि नया साल आया ही नहीं.

अब हमारी कुछ फ्री-स्टाइल भविष्यवाणियां भी सुन लीजिए:

नये साल में मुल्क में कोई न कोई रिलीफ फंड जरूर कायम होगा. हो सकता है यह अकाल रिलीफ फंड हो या बाढ़ रिलीफ फंड.

राजनेताओं पर कुल दो लाख गंदे अंडे जनता की जानिब से फेंके जायेंगे.

छात्रों के विरोध प्रदर्शनों में कम से कम दो हजार बसें जरूर जलायी जायेंगी.

अगर नये साल में एक हजार रेल-दुर्घटनाएं न हुईं तो जानिये कि हमारी रेल-व्यवस्था निकम्मी हो गयी है और वह इस साल का काम दूसरे साल पर टालने लगी है.

हमारी सड़कों पर नये साल की पहली तारीख को जो कूड़ा-करकट फेंका जायेगा वह अगले साल की पहली तारीख को साफ किया जायेगा.

शायर मुशायरों में और कवि कवि-सम्मेलनों में वही रचनायें सुनायेंगे जिन्हें वे अपनी तारीख पैदाइश से सुनाते आ रहे हैं.

शांति स्थापना के लिए जगह-जगह युद्ध किये जायेंगे और अब तो हमें यकीन हो चला है कि युद्धों ने दुनिया को इतना तबाह नहीं किया जितना कि अमन-शांति ने तबाह किया है.

चीजों की कीमतें महंगी और इनसान की कीमत सस्ती हो जायेगी.

पुरानी आयात नीति के अनुसार इस साल भी बदकिस्मती से देश खाद्य-सामग्री के लिए आत्मनिर्भर न हो सकेगा.

ये चंद भविष्यवाणियां थीं जो हमने यों चुटकी बजाते में कर दीं. अब सबसे आखिर में हर नये साल के आरंभ के बारे में कुछ निवेदन करना चाहते हैं.

कहते हैं कि काम का प्रारंभ अच्छा हो तो समझिये कि आधा काम पूरा हो गया. मगर अफसोस कि नये साल का प्रारंभ हमारे हक में कुछ अच्छे शगुन के साथ नहीं हुआ है. वह इस तरह कि आज जब हम अभी अपने बिस्तर में पड़े जाग रहे थे कि अचानक दरवाजे पर किसी ने दस्तक दी. हमने आंखें मलते हुए दरवाजा खोला तो अपने एक अजीज को पाया जो अपने ग्यारह बच्चों और दो बीवियों समेत हमारे मकान के सामने बारात की शक्ल में विराजमान थे. बंबई से आनेवाली गाड़ी ने उन्हें हमारी दीन-हीन कुटिया तक पहुंचा दिया था. हम इतने लंबे सफर के बाद उनकी अचानक आमद की वजह पूछना ही चाहते थे कि उन्होंने आगे बढ़कर हमें अपने गले से लगा लिया. और बोले, "नया साल मुबारक!"

फिर बच्चों को हिदायत देने लगे कि बच्चो, अब तुम बारी-बारी से अपने अंकल को नये साल की मुबारकबाद दो.

हम हैरान हैं कि अगर जनाब की आमद का उद्देश्य सिर्फ नये साल की मुबारकबाद देना था तो हमें सीधे-सीधे कोई कार्ड भेज देते, अपने इतने सारे बीवी-बच्चों के साथ हमारे घर पर बमबारी करने की क्या जरूरत थी. हम सुबह से लगातार इस कोशिश में हैं कि उनसे उनकी आमद की असली वजह पूछें लेकिन वह सुबह से ही अपने बच्चों सहित खाने में कुछ इस कदर व्यस्त हैं कि उन्हें डिस्टर्ब करना मुनासिब नहीं समझा. पता नहीं ये कब वापस जायेंगे. हमें तो यह अंदेशा भी है कि कहीं वह हमें अगले साल की मुबारकबाद देकर ही वापस न हों और अपने साथ ग्यारह बच्चों की बजाय बारह बच्चों को ले जायें. इतने लंबे सफर का कुछ न कुछ फायदा तो होना ही चाहिए!

अब आप ही बताइये कि हम नये साल की खुशियां क्योंकर मनायें! □

अनुवाद : महावीर प्रसाद जैन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदुस्तानी नहीं होने का दुख

आज हम कहीं न कहीं से अपने आपको तबकों में बांट-कर जीते हैं. बार-बार विभिन्न मुद्दों पर खंडित होने की इस प्रक्रिया ने आज हमारी संग-ठनात्मक शक्ति पर प्रश्न-चिन्ह लगा दिया है. आजादी की लड़ाई के वक्त हम सिर्फ हिंदुस्तानी थे—हिंदू, मुस्लिम, सिख या ईसाई नहीं. . . .पर आज स्थिति कुछ और ही है. क्या यह सही नहीं है कि अन-चाहे कुचक्र में फंसकर हम खुद को कमजोर बनाते जा रहे हैं? क्रिसमस के अवसर पर मसीही कथाकार रॉबिन शा पुष्प से आलोक रंजन की बातचीत—कि हिंदुस्तानी नहीं होने के दुख का मतलब क्या है ?

साक्षात्कार

मेज पर कुछ खुली, अधखुली चिट्ठियां पड़ी हुई हैं. सामने खुला पत्र एक प्रवासी भारतीय कथा-लेखिका **कमला दत्त** द्वारा अमरीका से भेजा गया—"आज एक लंबे अंतराल के बाद लिख रही हूं. मन उदास था, इसलिए तुम्हारी किताब **अजनबी होता हुआ मकान** पढ़ने बैठ गयी. 'अजनबी होता हुआ मकान' कहानी मैंने पढ़ी. अब इला श्रीवास्तव दिमाग पर छायी रहेगी और लिखे बगैर नहीं रहा जायेगा. इतनी खूबसूरत कहानी के लिए एक बार फिर बधाई. इतनी ढेर-सारी इलायें दिमाग में घूम गईं जूझती हुई, मन रोने-रोने को हो आया है. . . कैसे भर देते हो अपनी कहानी में इतना सारा दर्द. . . ?" और कमला दत्त के पत्र की अंतिम पंक्ति पहला सवाल बन जाती है.

▣ आप की कहानियों में नारी की वेदना अत्यंत मर्मस्पर्शी रूप से उजागर होती है. इसकी कोई खास वजह है?

दरअसल अपनी कहानियों में आयी औरत का चेहरा, मैं अपनी मां के चेहरे से अलग नहीं कर पाता. मेरी मां जो कभी पत्नी थीं, शिक्षिका थीं, गृहणी थीं, सास थीं और पांव से लाचार हो जाने के बाद विद्रोही आइजक भैया की मृत्यु के बाद, घर में घुस आयी अंग्रेजियत के बाद एक टूटी हुई औरत थीं, जिन्हें मैं रोज टुकड़ों में बंट-बंटकर जीते हुए देखता था. . .वही टुकड़े आज जुड़कर मेरी कहानी में किसी दुखी औरत का रूप ले लेते हैं, फिर जिंदगी की पहली लड़की के कहने पर 'आइडेंटिटी' की लड़ाई. . . उसका भी दुख मेरी कहानियों में उभरा है.

▣ परंतु इधर कुछ वर्षों से आपकी रचना-दृष्टि में एक परिवर्त्तन हुआ है. इस परिवर्त्तन को 'अग्निकुंड' जैसी कहानी, 'आक्रोश' जैसा कहानी

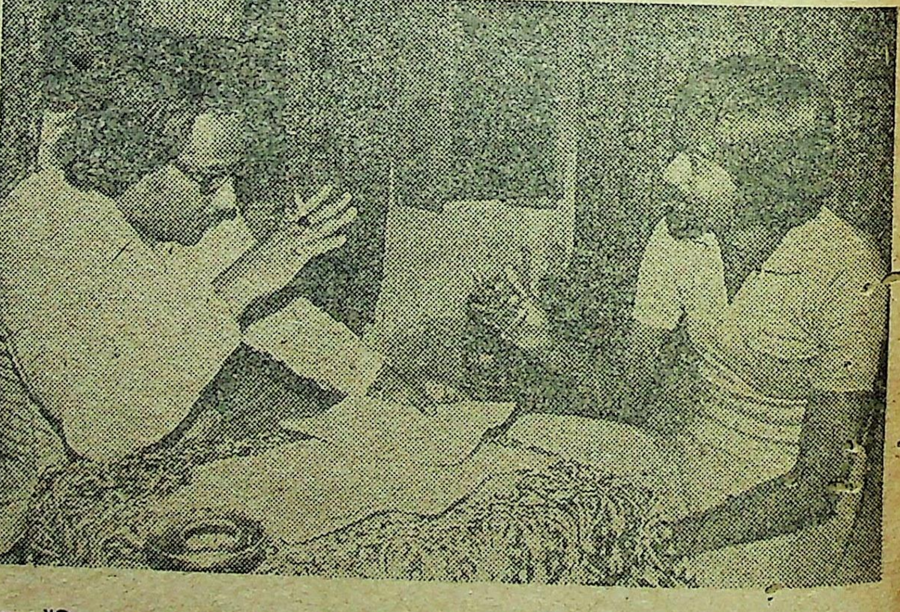

● रॉबिन शा पुष्प और आलोक रंजन : मां का चेहरा मेरे सामने रहता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संग्रह, 'बंद कमरे का सफर' या 'अन्याय को क्षमा' जैसे उपन्यासों में साफ-साफ देखा जा सकता है. इन रचनाओं की पृष्ठभूमि राजनीतिक है. आखिर वे कौन-सी स्थितियां हैं, जिन्होंने वैयक्तिक संवेदनाओं के इस कथाकार को राजनीतिक सोच से लड़ने को प्रेरित किया?

मन कहीं से आज के आदमी की स्थिति को देखकर टूटा है, क्योंकि आज के राजनीतिक उसे कभी जूते की तरह पांवों में पहन लेते हैं, कभी चुनाव आने पर बेशकीमती ताज की तरह सिर पर धारण कर लेते हैं, कभी विरोध प्रकट करने के लिए झंडे की तरह हाथों में ले लेते हैं. . . और स्वार्थ सिद्ध हो जाने पर जूठे पत्तल की तरह फेंक भी देते हैं.

यह आम आदमी कल जहां था, आज भी वहीं है. इसे तो महज इस्तेमाल किया जा रहा है. चाकू से सब्जी भी कटती है और खून भी होते हैं. चाकू में कोई बुराई नहीं. अच्छे या बुरे तो वे हाथ होते हैं, जो इसे इस्तेमाल करते हैं.

राजनीतिकों द्वारा सिर्फ अपनी सत्ता बरकरार रखने के लिए इस्तेमाल किये जाने वाले इन आम आदमियों की विवशताओं ने ही राजनीतिक सोच के लेखन को बाध्य किया.

▣ लेकिन इस तरह की गंदी और घिनौनी राजनीति तो हमें पतन की ओर ही ले जा रही है. क्या ऐसे राजनीतिक स्वरूप को परिवर्तित नहीं किया जा सकता? क्या इसमें किसी सुधार की संभावना नहीं बन सकती?

तब तक नहीं, जब तक शासन करने का यह राजनैतिक ढांचा नहीं बदलता. जब तक जनता के सही लोग या जनता के बीच से सही लोग सामने नहीं आते हैं.

इस संदर्भ में वर्तमान चुनाव प्रक्रिया को एक तरह से गलत समझता हूं. देश की वर्त्तमान स्थितियों को देखते हुए होना तो यह चाहिए कि चुनाव अभियान, चुनाव के लिए आयोजित सार्वजनिक सभाओं तथा पोस्टरबाजी पर कम से कम ध्यान दिया जाये. चुनाव के नाम पर किसी तरह की कोई हंगामेबाजी न हो. ऐसा करने से चुनाव खर्चे के लिए सत्तासीन होने के बाद वे पूंजीपतियों के हाथों से चाबी देने वाली गुड़िया बनने से बच जायेंगे. दूसरी बात यह, कि जो व्यक्ति जिस क्षेत्र से आगामी चुनाव में हिस्सा लेना चाहता हो, उसे चाहिए कि पांच वर्षों तक वह उस क्षेत्र की जनता के बीच रहे, उनके सुख-दुख को जाने और अपने लिए उनके हृदय में जगह बनाये. ऐसी स्थिति में वही सही लोग चुने जायेंगे, जिन्होंने उस क्षेत्र में सामाजिक कार्य किये हों, वहां के दुख-दर्द को समझा हो और वहां के लोगों से जुड़े हों. ऐसे लोग ही उस क्षेत्र का सही तौर पर भला कर सकते हैं.

फिर उनके मन में अगले आम चुनाव के लिए यह भय रहेगा, कि अगर एक बार चुने जाने के बाद भी वे उस क्षेत्र के लिए कुछ नहीं कर सके तो जनता उन्हें माफ नहीं करेगी.

▣ एक प्रतिभाशाली नये लेखक को आज प्रकाशन की जिन समस्याओं से जूझना पड़ता है, क्या इसके पीछे भी कोई राजनीति काम करती है?

आज प्रकाशन के क्षेत्र में भी साजिश हो रही है. मैं 'राजनीति' के बदले 'साजिश' शब्द का इसलिए इस्तेमाल कर रहा हूं, क्योंकि आज की राजनीति का स्वरूप कुछ ऐसा ही है. और इस साजिश के खास तौर से शिकार हो रहे हैं, आज के नये लेखक—विशेषकर, पुरुष वर्ग! दूसरी तरफ, कुछ ऐसे लोग भी पत्रिकाओं के पृष्ठ नाजायज रूप से घेरते हैं, जिन्हें सही तौर पर लिखना नहीं आता.

प्रकाशकों के साथ भी यही स्थिति है. किसी प्रोफेसर या वी.सी. की पुस्तक इसलिए भी छापनी जरूरी होती है कि इनके कहने पर 'बेचारे' की कोई पुस्तक 'कोर्स' में लग जाती है. थोक भाव में कुछ ऐसे लेखकों को भी छापना पड़ता है, जो 'थोक-बिक्री' में अपने पॉलिटिकल प्रेशर या पद के कारण सहायक होते हैं. यहां लेखन के स्तर का कोई प्रश्न नहीं होता. इसलिए एक तरफ जहां लेखन के स्तर में गिरावट आती है, वहीं दूसरी तरफ अच्छा लिखकर भी नये लोग प्रकाशन से काफी हद तक वंचित रह जाते हैं.

▣ आपने 'यिशु ने कहा', 'बाइबिल की कहानियां' आदि पुस्तकें लिखीं.. धार्मिक पत्रिका 'मसीही आवाज' का भी संपादन किया. आज के ईसाई-समाज के बारे में आप क्या सोचते हैं?

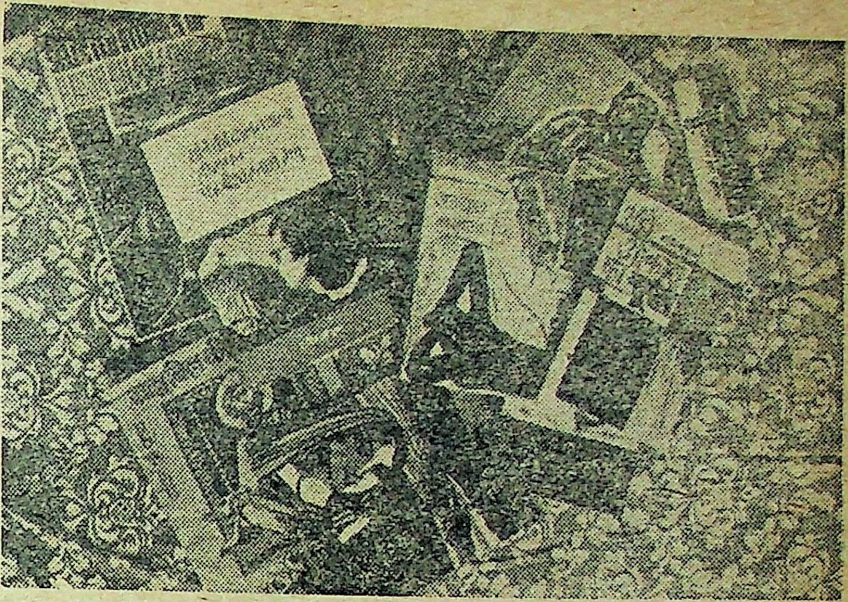

◉ रॉबिन शा पुष्प की प्रकाशित कृतियां : मन कहीं से टूटा है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहां भी वही दुख है—हिंदुस्तानी नहीं होने का. जब मैं 'मसीही आवाज' में था, मैंने एक लेख छापा था—'क्या ईसाई पत्नियां सिंदूर लगा सकती है. यह लेख पक्ष में था. बड़ी तीव्र प्रतिक्रिया हुई. किसी ने आरोप लगाया कि मैं हिंदू-धर्म का प्रचार कर रहा हूं. किसी ने कहा कि मैं ईसाइयों को हिंदू बनाने की साजिश कर रहा हूं. मुझ पर जोर दिया गया कि ऐसी ऊल-जलूल चीजें मैं नहीं छापूं. . . . . मन यहीं से टूटना शुरू हो गया . . . मैं यह आज तक नहीं समझ पाया कि सिंदूर या बिंदी लगाने से, चूड़ियां पहनने से अथवा विवाह के अवसर पर उबटन मलने से कोई कैसे हिंदू बन जायेगा . . . .? हिंदुस्तान में जन्म लेकर, यहां की रोटी खाकर कोई हिंदू नहीं बनता, लेकिन यहां की संस्कृति को अपनाने मात्र से धर्म-परिवर्तन हो जायेगा, विचित्र-सी बात लगती है. मेरी समझ से;यहां की छोटी-छोटी चीजों को अपना कर हम हिंदुस्तान के और करीब आयेंगे. हिंदुस्तानी बनेगें. . . . हिंदुस्तानी नहीं होने का यह दुख तब और भी बढ़ जाता है, जब मैं होटलों या पार्टियों में गैर मसीही लड़कियों को शराब और सिगरेट पीते हुए देखता हूं . . . . अशोभनीय वस्त्रों में लड़कों की बांहों में बाहें डालकर नाचते हुए देखता हूं. . . . . या फिर दूसरे मुल्क के लोगों को देखता हूं. वे अपना भाषण अपनी मातृभाषा में देते हैं, कोई दूसरा अंग्रेजी या हिंदी में अनुवाद करता है, मगर अपने नेता अपनी मातृभाषा में बोलना (विशेषकर विदेशों में) अपना अपमान समझते हैं. इन लोगों का, अपने को हिंदी से इस तरह काटना ही, अंग्रेजी और अंग्रेजियत को बढ़ावा दे रहा है. आज हिंदुस्तान के बड़े शहरों में, घरों में, लोग अंग्रेजी में बातें करना पसंद करते हैं. हिंदुस्तान में जन्म लेकर, हिंदुस्तान की रोटी खाकर हिंदुस्तान की कुर्सी पर बैठकर हिंदी से परहेज करना भी, एक तरह से हिंदुस्तानी नहीं होना है . . . यानी आजादी के इतने वर्षों बाद भी सरकारी कार्यालयों की क्लिष्ट हिंदी, हमें एक-दूसरे से जोड़ने वाली 'हिंदुस्तानी भाषा' नहीं बनी और हम, कभी चम्मच बने, कभी घूस लेने वाले, कभी बोगस वोट गिरानेवाले, कभी गाव-घर जलाने वाले हाथ बने. इन पैंतीस वर्षों में व्यवस्था ने हमें बहुत कुछ बनाया केवल 'हिंदुस्तानी' नहीं बनने दिया. हिंदुस्तानी नहीं होने का यह दुःख अपने आप में बहुत बड़ा है.

पुष्पजी कुछ देर अधजली सिगरेट को देखते हैं, फिर टप ऑन कर देते हैं. उनका ही गीत बजने लगता है—

ये जहर के धुएं
कोई कितना पिए
कोई कैसे जिए?
ये जहर के धुएं
और कितना पिए ? □

लघुकथा

याददाश्त

▣ हरमन चौहान

प्रसूतिगृह में एक बच्चे का जन्म हुआ. बच्चा रोये जा रहा था. मां ने उसे अपनी कोख में दुबकाकर थपथपाया. उसे दूध पिलाने की कोशिश की छाती से चिपका कर, लेकिन वह तो रोता ही जा रहा था. चुप होने का नाम भी नहीं ले रहा था. मां ने उसे गोद में हुलराया-दुलराया, तब भी चुप होने का नाम नहीं ले रहा था. मां ने अपनी ओर से पूरी कोशिश कर ली, फिर भी बच्चा तो रोने से बाज नहीं आ रहा था. मां परेशान हो गयी. उसकी आंखों में पानी छलक आया. उसे कुछ भी समझ नहीं आ रहा था. वह करे भी तो क्या करे? उसे रोते देखकर नर्स दौड़ी-दौड़ी आयी. उसने बच्चे को अपनी गोद में लिया, उसे पुचकारा. बाटली से दूध भी पिलाने की कोशिश की, पर वह तो और भी जोर-जोर से रोने लग गया. नर्स ने उसे झूले में झुलाया. चुप नहीं रहा तो और भी जोर-जोर से झूले दिये, लेकिन बच्चा रोये जा रहा था. मां बेचारी परेशान कि अगर यह बच्चा इसी तरह रोता रहा तो जिंदा कैसे रहेगा?

नर्स भी काफी समय से उसे चुप कराने की कोशिश कर रही थी. अब तो वह भी परेशान हो गयी. उसने उसकी मां की दशा देखी तो वह भी रुंआसी हो गयी. उसने दूसरी नर्स को लेडी डॉक्टर के पास दौड़ाया. पूरे प्रसूति-गृह में अब तक तहलका मच गया था. लेडी डॉक्टर भी दौड़ी-दौड़ी आयी. उसने भी अपनी ओर से पूरी कोशिश करके देख ली, लेकिन बच्चा तो रोये जा रहा था. सभी तरह-तरह के उपाय सुझा रहे थे कि इसको अफीम खिला दो या नींद की गोली दे दो. लेकिन लेडी डॉक्टर और नर्सें इस बात पर सहमत नहीं थीं. इतने छोटे बच्चे को न किसी तरह की दवा दी जा सकती है और न ही कोई इंजेक्शन दिया जा सकता है. किसी को भी बच्चे को चुप कराने के लिए कुछ सूझ नहीं रहा था. क्या किया जाये?

सभी परेशान, लेकिन उन सबमें मां ज्यादा परेशान थी. इतने में बच्चे की दादी-मां एक बूढ़ी और अनुभवी दाय को लेकर दौड़ी चली आयी. दायी ने बच्चे का रोना सुना और खूब अच्छी तरह से बच्चे के हाव-भाव देखती रही, फिर उसने दादी मां के कान में कुछ कहा. दादी मां कुर्सी पर बैठी हुई थीं, वह खड़ी हो गयी. दाय ने पलंग पर पड़े एक-दो तकियों को ले इधर-उधर रखकर बच्चे को चारों ओर सहारा देखकर कुर्सी पर बिठा दिया. आश्चर्य की बात थी कि बच्चा तुरंत रोते हुए बैठ हो गया. सभी उस दाय का मुंह ताकने लग गये. उस अनुभवी दाय ने बच्चे की मां को हिदायत दी कि आपका लाड़ला जब भी रोये, इसे झूले में नहीं, कुर्सी पर इसी तरह सहारा देखकर बैठा दें, यह तुरंत चुप हो जाएगा. यह पिछले जन्म में नेता था. अभी तक इसकी याददाश्त बाकी है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चौथी ऋतु

• अचला शर्मा

▣ क्रिसमस पर विशेष : दो

क्या व्यक्ति बुढ़ापे के साथ ही अकेला पड़ता है ? अकेलापन जब बांटा न जाये....तो कितना असह्य हो जाता है ! और जब यही अकेलापन आपस में बांट लिया जाये तो कैसे अनकहे रिश्ते जुड़ जाते हैं.....! अपने-अपने अंधेरों में बंद रहनेवाले उन लोगों की कहानी, जो खामोशी में भी एक भरापन तलाश लेते हैं....

लिंडा ने मैंटल पर सजे क्रिसमस कार्ड्स पर एक भरपूर नजर डाली और फिर टाइम्स की सुर्खी पर. 'तीस साल बाद लंदन में इतनी भारी बर्फ पड़ी है.' "तीस साल." वे बुदबुदाईं, चाहो तो एक मिनट में उंगलियों पर गिन लो और चाहो, तीस बसंत याद करो या फिर तीस पतझड़. भला कितने साल की थीं वे तीस साल पहले? यही कोई चालीस-इकतालीस की. घुटनों पर रखा 'टाइम्स' फिसलकर नीचे गिर गया. ऐसे ही तो गुजर जाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है वक्त, एक हल्की-सी सरहराहट के साथ. अब तो उनके पति को गुजरे भी दस साल हो गये हैं. लिंडा की निगाह दीवार पर टंगी जार्ज की तस्वीर की ओर गयी. मन में जैसे एक उलाहना-सा उठा, बुढ़ापा काटने की बारी आयी तो अकेला छोड़ गये.

दस साल से नितांत अकेली ही तो हैं वे. साल में एकाध बार बेटी आकर मिल जाती है. उसके बच्चों से घर महक उठता है, पर कितने दिन? हफ्ता, ज्यादा से ज्यादा दस दिन. पर वे शिकायत नहीं करतीं. अपने आप से भी नहीं. मार्गरेट, उनकी बेटी ने एक बार सुझाव दिया था, "अकेले रहने से अच्छा है मम्मी तुम कोई किरायेदार रख लो." पहले-पहल उन्होंने विरोध किया, पर फिर सोचा हर्ज क्या है. एक लड़की कुछ महीनों के लिए आकर रही थी. क्या नाम था उसका? हां, मैरिएन. चित्रकार थी. सारा-सारा दिन अपने कमरे में बंद रहती थी. लिंडा से एक दिन रहा न गया तो पूछा था.

"तुम्हें सारा दिन अकेले घबराहट नहीं होती मैरिएन?"

"आप भी तो अकेली रहती हैं मिसेज स्मिथ." जवाब मिला था.

"मेरी बात और है," लिंडा बोली थी, "मैं तो अब बूढ़ी हो गयी हूं."

मैरिएन पल भर को चुप रही थी, फिर जैसे सोचते हुए बोली थी, "व्यक्ति अकेला बुढ़ापे के साथ ही नहीं होता मिसेज स्मिथ."

लिंडा का मन हुआ था, कहे 'जब तुम मेरी उम्र में आओगी तब यह बात नहीं करोगी. इन्सान तुम्हारी उम्र में ही अकेलापन ओढ़ ले तो मैं उसे बहाना कहूंगी. अभी तुम्हारे सामने कई रास्ते खुले हैं. चुनना चाहो तो चुन सकती हो, लेकिन जैसे जैसे बुढ़ापे की पदचाप सुनाई पड़ने लगती है, चुनने की यह आजादी खत्म होने लगती है. रह जाती है एक संकरी गली, वह भी आगे से बंद.'

वे यह सब समझाना चाहती थीं मैरिएन को. पर वह तो बिना कोई नोटिस दिये एक दिन अचानक चली गयी और लिंडा फिर अकेली रह गयीं. अकेली, बूढ़ी और. . .

इसीलिए तो इस बार क्रिसमस पर उन्होंने कुछ लोगों को दावत देने की सोची. क्या लिखा था भला निमंत्रण पत्र में? वे मुस्कुरायीं. हां, 'अगर आप भी मेरी तरह अकेले और बूढ़े हैं तो क्रिसमस की यह शाम मेरे साथ मेरे घर पर बिताइए.' डर था, कहीं कोई इसे भद्दा मजाक न समझ ले. पर नहीं, पीटर परसों सुपर मार्केट में मिले तो बोले थे, "मिसेज स्मिथ थैंक्यू, आपका निमंत्रण पाकर बहुत खुशी हुई." रोजमैरी भी आयेगी. हां, मि. लारेंस का पता नहीं. उन्हें देखकर ऐसा लगता है जैसे अपनी जिद से ही बंद हुआ कोई दरवाजा हो, आप कितनी ही दस्तक दें, नहीं खुलेगा. कल अपने बाग में से बर्फ निकाल रहे थे. लिंडा को सड़क से गुजरते देखा भी था, लेकिन कुछ नहीं बोले. . .

फायरप्लेस में एक लकड़ी चटखी. लिंडा उठी. एक बार भोजन का प्रबंध देख लें. कितने शौक से टर्की पकाई है, और क्रिसमस पुडिंग भी. वाइन तो सुबह ही ठंडी होने के लिए फ्रिज में रख दी थी. काम तो सारा हो गया. अब तो बस मेहमानों का इंतजार है. वे घुटनों के दर्द को सहलाती-सी खिड़की के करीब गयीं. कितना फीका पड़ गया है खिड़की का पर्दा. पर क्या करेंगी नया लाकर. बाहर झांका. बर्फ की सफेदी के अलावा और कुछ भी दिखाई नहीं देता. पेड़ तो इस तरह ढंके हैं कि पहचानना ही मुश्किल है. किसी कार की हैडलाइट्स की पीली बीमार रोशनी सड़क पर लेट गयी. दरवाजा खुलने-बंद होने की आवाज आयी और फिर हंसी का एक फव्वारा फूटा. एक बच्चे का शिकायती स्वर उठा, "पर तुमने तो कहा था कि इस बार 'फादर क्रिसमस' पर मेरे लिए हवाई जहाज लायेंगे. . ."

लिंडा खिड़की से हट गयी. कमरे के एक कोने में सजे छोटे से क्रिसमस-ट्री को निहारा. जार्ज जीवित थे तो हर क्रिसमस पर बड़ा-सा पेड़ आता था. बिजली के लट्टुओं और उपहारों से कैसे जगमग करता था. लिंडा कालीन पर गिरा अखबार उठाने को झुकीं तो आंखों का चश्मा खिसककर नाक पर आ गया. कितनी बार सोचा है कि इसे ठीक करायेंगी पर अब तो शायद नंबर भी बढ़ गया है. अखबार की बारीक छपाई पढ़ने के लिए तो मैगनीफाइड ग्लास से देखना पड़ता है. बुढ़ापा भी अजीब चीज है. वे मुस्करायीं. लगता है नये सिरे से 'ए-बी-सी' सीख रहे हों. शुरू-शुरू में परेशानी होती है, पर फिर अभ्यास हो जाता है. धीरे धीरे आदत-सी पड़ जाती है. क्या है यह जीवन? लिंडा अक्सर सोचती हैं. आदतों का सिलसिला है. कभी किसी के साथ रहने की आदत डाल लो, कभी किसी के बगैर रहने की. लगता है जैसे दरवाजे की घंटी बजी है. हां, घंटी ही तो है. कानों से तो अभी ठीक-ठाक सुनती हैं वे. चश्मे को ठीक से आंखों पर टिकाते हुए दरवाजा खोलने को बढ़ीं.

"अरे पीटर मैरी क्रिसमस. . ."

फैज अहमद फैज का आत्मकथ्य

शुरू-शुरू में शाइरी के दौरान या कॉलेज के जमाने में हमें कोई ख्याल ही न गुजरा कि हम शाइर बनेंगे. सियासत (राजनीति) वगैरह तो उस वक्त जेहन में बिल्कुल न थी. अगर्चे जिस वक्त की तहरीकों (आंदोलनों) मसलन कांग्रेस तहरीक, खिलाफत तहरीक या भगतसिंह की दहशतपसंद (क्रांतिकारी) तहरीक के असर तो जेहन में थे, मगर हम खुद इनमें से किसी किस्से में शरीक नहीं थे.

शुरू में ख्याल हुआ कि हम कोई क्रिकेटर बन जाएं क्योंकि लड़कपन से क्रिकेट का शौक था और बहुत खेल चुके थे. फिर जी चाहा, उस्ताद बनना चाहिए. रिसर्च करने का शौक था. इनमें से कोई भी बात न बनी. हम न क्रिकेटर बने, न आलोचक, न ही रिसर्च किया. अलबत्ता प्राध्यापक बनकर अमृतसर चले आये. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मेरी क्रिसमस मिसेज़ स्मिथ. . ." पीटर अंदर आकर ओवरकोट उतारने लगे, "कहां रख दूं?"

"लाओ, मैं रख दूं." लिंडा ने ओवरकोट और छड़ी पीटर के हाथ से लेते हुए कहा.

पीटर की नाक सर्दी से लाल हो रही थी. हाथ रगड़ते हुए वे आग के पास खड़े हो गये. "क्या कड़ाके की सर्दी पड़ी है इस बार. बिल्कुल वाइट-क्रिसमस है. और मुश्किल यह कि कल मेरे घर की सैंट्रल हीटिंग खराब हो गयी. अब तो छुट्टियों के बाद ही ठीक होगी."

"तब तो बड़ी परेशानी होगी. . . ." लिंडा ने चिंता के साथ कहा.

"हां, घर बिल्कुल बर्फ हो गया है. वो तो शुक्र है कि कुछ दिन पहले मैंने पुराना फर्नीचर गैराज में रखा था, सो लकड़ियों से आग जला लेता हूं, पर गर्म पानी भी तो नहीं है."

पीटर आग के करीब की कुर्सी पर बैठ गये. "उस दिन टेलीविजन पर एक प्रोग्राम देख रहा था मिसेज स्मिथ, आपने भी देखा होगा कि सर्दियों में बूढ़े लोगों की मृत्यु-दर बढ़ जाती है. और क्रिसमस के दौरान आत्महत्याओं की संख्या बढ़ती है."

"छोड़िए भी पीटर," लिंडा ने टोका, "यह बताओ क्या पिओगे? मैंने शैंपेन ठंडी करके रखी है."

"शैंपेन." पीटर की आवाज में हल्की-सी नाराजगी उभर आयी, "क्रिसमस के मौके पर सरकार जितना बोनस हम पेंशनयाफ्ता लोगों को देती है. . . उसमें शैंपेन चखी भर जा सकती है. मैं तो भई थोड़ी-सी ब्रांडी लूंगा अगर हो. . ."

लिंडा किचन की ओर मुड़ी तो पीटर ने फायरप्लेस में से एक लकड़ी निकालकर पाइप सुलगा लिया. आह! यह पहला कश जितना सकून देता है उतना ब्रांडी का पहला घूंट भी नहीं. रिटायर होने के बाद से वे दिन भर पाइप नहीं पीते, बस शाम को पीते हैं. दिन भर इस पहले कश का इंतजार करते हैं. सुबह घूमने जाते हैं, दोपहर को लाइब्रेरी और शाम को पब. . .एक पाइंट बियर के साथ पाइप भरते हैं. कितने सालों से यही दिनचर्या चली आ रही है. . . साल में दो-तीन बार जब उनका बेटा-बहू आते हैं तो एक-दो दिन के लिए उनकी दिनचर्या भंग होती है. ईस्टर पर और क्रिसमस पर. पर, इस बार वे नहीं आये. सुबह जब डेविड ने फोन पर कहा कि वे लोग नहीं आ पायेंगे तो पीटर को जरा बुरा लगा था. बस, एक पल भर को ही बुरा लगा था. असल में बुरा भी नहीं लगा, निराश होने की चुभन भर महसूस हुई थी. मेज पर रंगीन कागज में लिपटे उपहारों को उन्होंने अपनी कांपती उंगलियों से छुआ था. डेविड के लिए बागवानी की किताब लाये थे वे, उसकी पत्नी के लिए लंबे ऊनी मोजे और उसके बेटे के लिए वीडियो गेम. इन सर्दियों में वे अपने लिए एक नया ओवरकोट लेना चाहते थे, पर अगले साल के लिए टाल दिया. किसे मालूम था इस बार इतनी बर्फ पड़ेगी. खैर. . . पीटर ने पाइप से मुंह लगाया, लेकिन वह बुझ चुका था.

ग़ज़ल

■ हंसराज रहबर

किस कदर गर्म है हवा देखो,
जिस्म मौसम का तप रहा देखो.

बदगुमानी-सी बदगुमानी है,
पास होकर भी फासला देखो.

वह जो उजले लिबास वाले हैं,
उनकी आंखों में अजदहा देखो.

हो अंधेरा सफर, सफर ठहरा,
ले के चलते हैं हम दिया देखो.

खेलता है जो मौत से होली,
क्या करेगा वह मनचला देखो.

अमन ही अमन सुन लिया लेकिन,
मकतलों का भी सिलसिला देखो.

इस जमाने में जी लिया रहबर,
मर्दे-मोमिन का हौसला देखो.

"क्या सोचने लगे?" लिंडा ने ब्रांडी का गिलास थमाते हुए पूछा.

"सोच रहा था, एक जमाना वह था जब पैर एक जगह टिकते नहीं थे. . .कितना घूमा हूं जवानी में और अब?" पीटर हंसे. . .

"अब जिस दिन बेसब्र होता हूं तो बस में सवार होकर बे-मतलब शहर के चक्कर लगाता हूं. भई, पेंशन होने का एक फायदा तो है कि मुफ्त में लंदन दर्शन करो. . ."

लिंडा के चेहरे पर रोशनी-सी खेल गयी.

"मि. स्मिथ को भी बड़ा शौक था घूमने का. कहते, लिंडा मरते वक्त यह मलाल लेकर नहीं मरना चाहता कि मैंने पूरी दुनिया नहीं देखी." पर कहकर लिंडा को लगा, कुछ गलत कह बैठी है. पीटर का मुस्कराता चेहरा जैसे खो गया. छोटी नीली आंखों की चमक कुछ धुंधली-सी पड़ गयी. सड़क पर से पुलिस की एक गाड़ी चीखती हुई निकली. पीटर और लिंडा के बीच पुराने कालीन-सा बिछा सन्नाटा टूटा. लिंडा को पुलिस और एंबुलैंस की गाड़ियों से बड़ी दहशत होती है. उनका अलार्म दुर्भाग्य की चीख जैसा लगता है.

"ईश्वर. . .जाने क्या हुआ है." वे बुदबुदायीं.

"हुआ क्या होगा, ज्यादा पीकर कार चलाने से एक्सीडेंट हो गया होगा. क्रिसमस के वक्त दुर्घटनाओं की तादाद भी कुछ बढ़ जाती है." पीटर ने बड़े निर्लिप्त स्वर में कहा.

तभी दरवाजे की घंटी बजी. लिंडा उठी. यह घुटनों का दर्द दिन ढलने ही उम्र का एहसास कराने लगता है, वरना दिनभर तो वे दस चक्कर लगा आयें बाजार के.

"आह रोजमैरी!" लिंडा ने रोज मैरी की बांह थाम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भीतर आने में सहारा दिया. रोजमैरी की पीठ अब कुछ ज्यादा ही झुकने लगी है.

रोजमैरी के पीछे मि. लारेंस भी थे. लिंडा ने उनका छाता एक कोने में रखा.

"आइए न मि. लारेंस! ओ, परिचय करा दूं क्या? पीटर को आप नहीं जानते. दो मकान छोड़कर ही तो रहते हैं."

"देखा तो है, पर परिचय कभी नहीं हुआ," मि. लारेंस ने असंबद्ध से स्वर में कहा.

स्वयं लिंडा ने भी आज पहली बार मि. लारेंस को इतने गौर से देखा है. आंखों के नीचे का मांस कितना झूल रहा है. और होठों के पास की झुरियों में एक सख्ती-सी है.

रोजमैरी सटी के एक कोने में धंस गयी, उसका सिर धीरे-धीरे हिल रहा है.

"बैठिए न मि. लारेंस," लिंडा ने कहा, "मुझे सचमुच बहुत खुशी है कि आपने मेरा निमंत्रण स्वीकार कर लिया."

"लगता है, फिर बर्फ पड़ेगी." मि. लारेंस खिड़की से बाहर झांक रहे थे, जैसे लिंडा की बात सुनी ही न हो. लिंडा रोज मैरी के करीब बैठ गयी. मि. लारेंस आग के करीब आकर खड़े हो गये. जेब में से सिगार निकाला. सुलगाने को हुए तो पीटर से मुखातिब हुए.

"आप पियेंगे?"

"नहीं शुक्रिया, मैं सिर्फ पाइप पीता हूं."

मि. लारेंस ने एक कश लिया और बोले, "लोग सिगार खाने के बाद पीते हैं, मैं पहले पीता हूं."

रोजमैरी खांसी.

मि. लारेंस को पहली बार जैसे खयाल आया कि वे तीन लोगों के बीच हैं. "आपको धुएं से परेशानी तो नहीं हो रही है?"

"नहीं." रोजमैरी ने पहले से हिलता सिर कुछ और जोर से हिलाया.

लिंडा शैंपेन की बोतल ले आयी. बोली, "यह मैं खासतौर पर आप लोगों के लिए लायी हूं."

"और क्या मैं इसे खोलने का सम्मान प्राप्त कर सकता हूं?" पीटर ने नाटकीय अंदाज में बोतल उठायी. और जोर से हिलाया.

"अब होगी धमाकेदार आवाज."

रोजमैरी ने अपने कानों पर हाथ रख लिया.

एक हल्का-सा शब्द हुआ और शैंपेन का झाग बोतल के बाहर बहने लगा. पीटर ने चारों गिलास भरे और बोले. . . "चियर्स, बुढ़ापे के नाम."

लिंडा मुस्करायी, "हम बूढ़ों और अकेलों के नाम."

मि. लारेंस ने लय तोड़ी, "आपको मालूम है कल 13 नंबर वाली मिसेज वुड की मौत हो गयी. . ."

लिंडा का गिलास होंठों के पास ही रुक गया.

"असल में तो मौत दो दिन पहले हुई थी शायद, पर किसी को खबर ही नहीं थी. दरवाजा बंद था और दूध की बोतलें बाहर रखी रहीं. किसी पड़ोसी को शक हुआ तो उसने पुलिस को खबर दी."

"ओ माई गॉड." लिंडा बुदबुदाई.

"हां." मि. लारेंस बोले, "जब दरवाजा तोड़ा गया तो देखा, वे सीढ़ियों पर गिरी हुई थीं और पास में एक बिल्ली बैठी थी."

रोजमैरी का हिलता हुआ सिर जरा थम गया, "वही मिसेज वुड, जिनके यहां कई बिल्लियां थीं, उफ बेचारी."

"प्रभु किसी को इतनी बेगानी मौत न दे." मि लारेंस की निगाह छत की ओर टिक गयी.

"कोई रिश्तेदार नहीं था उसका?" लिंडा ने पूछा.

"नहीं, सारी उम्र शादी नहीं की."

रोजमैरी ने रुमाल निकालकर नाक सुड़की और बड़बड़ायी, "दो दिन तक किसी को खबर नहीं हुई. . ."

"क्रिसमस की छुट्टियों में तो वैसे ही इतनी वीरानी छा जाती है, जैसे कोई त्यौहार न हो, राष्ट्रीय शोक मनाया जा रहा हो," मि. लारेंस बोले.

मौत की खबर का असर शायद मौत से भी ज्यादा दहशत भरा होता है. लिंडा ने महसूस किया जैसे वे लोग शैंपेन नहीं, इस दहशत की चुस्कियां ले रहे हैं. एक सन्नाटा उसके अपने भीतर उग आया था, एक रोजमैरी के, एक पीटर के और एक मि. लारेंस के. चारों के भीतर का सन्नाटा एक साथ इस एक कमरे में मौजूद था. फायरप्लेस में आग की लपटें नीची हो रही थीं. रोजमैरी के हाथ का गिलास टेढ़ा हो गया था. पीटर की निगाह जल चुकी लकड़ियों पर थी और मि. लारेंस शून्य में देख रहे थे. और लिंडा, नहीं, लिंडा जार्ज की मृत्यु को याद नहीं करना चाहतीं.

"भई आज क्रिसमस है. हम लोग मातमपुर्सी के लिए इकट्ठे नहीं हुए हैं."

"असल में हम सब डर गये हैं." मि. लारस ने दार्शनिक अंदाज में कहा.

"क्यों, डरने की क्या बात है?"

"कि यही हाल हम सबका न हो?"

"मौत तो एक न एक दिन सभी को आती है मि. लारेंस." लिंडा ने कहा.

"पर क्या इतनी भयावह कि दो दिन तक लाश घर पर बंद पड़ी रहे और किसी को आहट न हो." रोजमैरी की आवाज जैसे किसी कुएं से निकली.

"अरे भई, छोड़ो मौत की बातें. मैं खाना लगाती हूं."

"मैं कुछ मदद करूं." रोजमैरी ने कहा.

"अरे नहीं, तुम बैठो!" लिंडा जानती है रोजमैरी से कुछ नहीं होगा. जब कभी वे रोजमैरी की झुकी हुई आकृति को शापिंग के थैले के बोझ तले घिसटते देखती हैं, भीतर कहीं तकलीफ जागती है. काश! इसका कोई तो करीब होता, जो इसके लिए और कुछ नहीं तो, कम से कम वक्त-बेवक्त बाजार से खरीदारी करके ला सकता था, पर शायद अपने हिस्से के दुख हम सबको खुद ही उठाने पड़ते हैं, वरना क्या रोजमैरी अपनी बहन और बहनोई के साथ नहीं रह सकती थी. वे लोग यार्कशायर में रहते हैं, एक बार बहुत जिद करके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सज्जाद जहीर कहते हैं!

मैं 'मिसाल के तौर पर चंद वाकयात बताना चाहता हूं. फैज नौ मार्च, 1951 को लाहौर में अपने मकान से अचानक गिरफ्तार कर लिये गये. जिस वक्त वह पाकिस्तान के दो सबसे महत्त्वपूर्ण अखबारों—'पाकिस्तान टाइम्स' और 'इमरोज' के संपादक थे. उनके साथ पाकिस्तानी फौज के चीफ ऑाँई द जनरल स्टाफ, जनरल अकबर खां और कई दूसरे फौजी अफसरान भी बड़े ड्रामाई अंदाज में गिरफ्तार कर लिये गये. सारा पाकिस्तान हिल गया. अखबारों में रोज अफवाहें छपने लगीं कि इन सब लोगों को फौजी बगावत की साजिश के जुर्म में फौरन गोली मार दी जायेगी. मैं उस वक्त लाहौर में था और मुझसे लोगों ने आकर बताया कि किसी को इसका पता नहीं है कि फैज किस जेल में हैं. कई हफ्ते तक उनकी बीवी और बच्चों को भी इसका पता न था. न किसी को फैज से मिलने की इजाजत थी. यह भी सुना गया कि फैज को शारीरिक यातना पहुंचायी जा रही है. (यह अफवाह थी) अलबत्ता दूसरी बातें सही थीं. यानी वह बिल्कुल अकेले और तकलीफदेह हालत में रखे गये थे. कोई किताब (सिवाय कुरान-मजीदके) अखबार, पत्रिकाएं या कागज, कलम, दवात तक उनको नहीं दिया गया. न खुद कुछ लिख सकते थे, न किसी का कोई खत वगैरह पा सकते थे. सारांश यह कि परिस्थिति भयावह थी. इन्हीं हालात में फैज ने वह अपनी मशहूर गजल कही—

हम परवरिशे-लौह-ओ-कलम करते रहेंगे,
जो दिल पे गुजरती है रकम करते रहेंगे.

रोजमैरी को ले गये थे अपने साथ. लिंडा को उम्मीद थी कि अब रोजमैरी का मन लग जायेगा. शायद अपना मकान बेच कर वहीं चली जाये, पर महीने भर बाद रोजमैरी लौटी तो पहले से ज्यादा कमजोर लग रही थी. बोली थी, "मैं किसी पर बोझ नहीं बनना चाहती."

लिंडा मेज पर खाना लगा रही थी. टर्की, सलाद, लाल वाइन की बोतल. पिछले साल उनकी बेटी मारग्रेट यह बोतल ले आयी थी. कभी खोलने का मौका ही नहीं मिला.

लिंडा ने मोमबत्तियां जलायीं. भीतर जैसे एक लौ-सी कांपी. जार्ज ने बड़े शौक से ये कैंडलस्टिक्स खरीदी थी. अब तो इनकी चमक धूमिल पड़ गयी.

फिर भी लिंडा हर क्रिसमस पर इन्हें चमकाती है. ठीक उसी तरह जैसे बरसों से जमा संगीत के रेकार्ड्स को संभालती-संभालती है. उनकी धूल पोंछती है-करीने से लगाती है. पुराने रेकार्ड-प्लेयर को अपनी बूढ़ी ऊंगलियों से छूती हैं. यह तो जार्ज से उनके विवाह के भी पहले का है. जार्ज की मृत्यु के बाद तो संगीत सुनना ही छोड़ दिया लिंडा ने. यहां तक कि अपने मनपसंद रिकार्ड भी. विवाल्डी का 'फोर सीजंस' कितना प्रिय है उन्हें, वह भी कभी नहीं सुनती. बस, भीतर ही कहीं बजता रहता है. 'फोर सीजंस'. . . चार ऋतुएं. बसंत, ग्रीष्म, पतझड़ और शीत. जार्ज कहते, "जानती हो, मनुष्य का जीवन भी चार ऋतुओं में बंटा है. . . आज क्यों न वही रिकार्ड बजायें?

वे लोग चुपचाप खा रहे थे. और उस चुप्पी को भर रही थी छुरी कांटों की खनक और विवाल्डी के संगीत की स्वर लहरियां. लिंडा इस संगीत रचना का एक-एक सुर पहचानती हैं. वसंत ऋतु, ग्रीष्म, पतझड़ और शीत ऋतु. . . बुढ़ापा. शीत के बाद तो बसंत आता है, लेकिन वृद्धावस्था के बाद? जीन की यह चौथी ऋतु तो मृत्यु का प्रतीक है. जीवन का शीत है. उसके बाद बसंत तो नहीं लौटता, पर नहीं, शायद लौटता है-नश कोंपलों के रूप में. . .किसी नवजात शिशु की गुलाबी मुट्ठियों के रूप में.

मि. लारेंस इस बीच दो बार अपना गिलास भर चुके थे. तीसरी बार वाइन डालते हुए उन्होंने मौन तोड़ा.

"बड़ी उम्दा टर्की बनायी है मिसेज स्मिथ."

लिंडा को लगा, शाम भर में पहली बार मि. लारेंस का स्वर अपनी भीतरी सांकल खोलकर सहज हुआ है. शायद वे भी उन लोगों में से हैं, जो थोड़ी शराब पेट में जाने के बाद सहज होते हैं. मि. लारेंस की देखादेखी पीटर ने भी मुंह पोंछते हुए कहा, "और सलाद का तो जवाब नहीं. मेरी बीवी भी काफी बढ़िया फिश-सैलेड बनाती थी, पर यह तो ला जवाब है, क्यों रोजमैरी?"

रोजमैरी का हवा में हिलता हुआ सिर पल भर को रुका. फिर बोली, "मुझे कभी कोई दावत पर बुलायेगा, यह सोचा ही नहीं था."

"ऐसा क्यों सोचती हो रोजमैरी." लिंडा ने ढांढस बंधाया, "अगली क्रिसमस पर फिर सही. . ."

रोजमैरी के चेहरे की लकीरें जैसे और गहरी हो गयीं, "अगली क्रिसमस! अगली क्रिसमस तो बहुत दूर है. . . बेचारी मिसेज वुड. . ."

पीटर के चेहरे पर हंसी खेल गयी, "हां मिसेज वुड इस क्रिसमस तक जिंदा रह लेती तो उन्हें भी आज बुला लेते."

रोजमैरी की आंखें नम हो आयीं, "मौत को लेकर मजाक मत करो पीटर." लिंडा ने धीरे से कहा.

"अरे, मौत को लेकर ही तो मजाक किया जा सकता है." पीटर ने क्रिसमस पुडिंग चखते हुए कहा, "ऊपरवाले ने बुढ़ापा बनाकर कितना बड़ा मजाक किया है. हमें क्या इतना भी हक नहीं है. . ."

"पता नहीं. . ." मि. लारेंस ने वाइन का घूंट भरकर कहा.

"क्या पता नहीं मि. लारेंस?" पीटर ने चौंककर देखा.

"पता नहीं, मुझमें ऐसी क्या कमी थी कि. . ." वे रुके. गिलास में बची वाइन गले के नीचे उड़ेलते हुए बोले, "पता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं मुझमें ऐसी क्या कमी थी–कि बीस साल साथ रहने के बाद मेरी बीवी ने मुझसे तलाक लेकर किसी और से शादी कर ली. . ."

"मुझे अफसोस है." पीटर ने संजीदगी से साथ कहा. लिंडा को लगा जैसे मि. लारेंस अपना जिद से बंद किया दरवाजा आज खुद खोल रहे हैं.

"पर मुझे इस बात का इतना अफसोस नहीं," वे कह रहे थे, "अफसोस इस बात का होता है कि मेरे बच्चे भी मेरे पास आने की जरूरत नहीं समझते. अपनी मां के पास फिर भी कभी-कभी चले जाते हैं. . .मैं ज्यादा की उम्मीद नहीं करता, पर क्रिसमस के दिन तो इस बूढ़े बाप से मिल लिया करें." वे व्यंग्य से मुस्कराये, "इस बार तो फोन भी नहीं आया, बस एक कार्ड. आपने बड़ा अच्छा किया मिसेज स्मिथ, जो आज अपने यहां बुला लिया. . ."

लिंडा देख रही थी–मि. लारेंस के चेहरे पर बहुत दिनों से भीतर दबी तकलीफ कांप रही है. बोली, "उम्मीद करनी भी नहीं चाहिए मि. लारेंस. हमारा फर्ज है बच्चों को बड़ा करना, उन्हें अपने पैरों पर खड़ा होने के काबिल बनाना. उन्हें बड़े होते देख हमें खुशी भी तो होती है ना."

"शायद आप ठीक कह रही हैं. . .पर कितनी अजीब बात है. . ." मि. लारेंस का अधूरा वाक्य कुछ देर के लिए कमरे की ठहरी हुई हवा में टंगा रहा. पीटर ने पाइप निकाला, तंबाकू भरा पर जलाया नहीं, बोले, "लाइए आज आपका एक सिगार पिएं मि. लारेंस. . ."

"जरूर, बड़ी खुशी से."

धुएं का एक बादल उठा और उन चारों के सिरों के ऊपर एक पतली चादर-सा तन गया.

"कितनी अजीब बात है," मि. लारेंस फिर बोले, "एक ही सड़क पर रहते हुए हम इस तरह पहले कभी नहीं मिले." रोजमैरी की आंखों की नमी अब तक सूख गयी थी. बोली, "यह तो लिंडा की कृपा है. . . ."

"कभी सोचा भी नहीं था," मि. लारेंस बुदबुदाये, "कि अपना-अपना अकेलापन हम इस तरह मिल-बैठकर बांट सकते हैं."

लिंडा ने महसूस किया कि इस रात पहली बार पीटर और मि. लारेंस के बीच एक अनकहा रिश्ता जुड़ा. पीटर ने जिस तरह मि. लारेंस की ओर देखा, उसमें उपेक्षा या व्यंग्य नहीं, सहानुभूति थी. . . "आपने सच कहा मि. लारेंस." पीटर बोले.

"सिर्फ जान ही कहिए न." मि. लारेंस ने कहा.

विशेष

जनवरी, प्रथम व द्वितीय पक्ष. संग्रहणीय विशेषांकों की परंपरा में एक और कड़ी यानी. . .ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता कथार विशेषांक : एक और दो

साहित्यकार और समाज

हर साहित्यकार किसी न किसी समाज की एक इकाई होता है. साहित्यकार के अपने समाज से दो रिश्ते हैं. एक सामान्य रिश्ता ब-हैसियत एक व्यक्ति के; एक खास रिश्ता-ब-हैसियत साहित्यकार के. ये दोनों रिश्ते हर साहित्यकार पर दुहरी जिम्मेदारी डाल देते हैं. एक सामान्य जिम्मेदारी जो किसी समाज के सभी व्यक्तियों या किसी देश के सभी नागरिकों के लिए एक-सी है. दूसरी तरफ एक खास जिम्मेवारी, जो साहित्यकार की अपनी कला में पेशे से बंधी हुई है. ये दोनों रिश्ते और इनसे पैदा होनेवाले फर्ज एक दूसरे से अलग-थलग नहीं, एक दूसरे से गुंथे होते हैं. □

▣ फैज अहमद फैज

"ओह थैंक्यू जॉन." पीटर ने सिगार का एक कश लिया, "तुमने बहुत सही कहा, हम क्यों अपने-अपने अंधेरे में बंद रहें. मैं तो बल्कि यह चाहूंगा कि आनेवाली गर्मियों में हम लोग कहीं एक साथ घूमने चलें. कितने बरस हो गये लंदन से बाहर कदम रखे. . .क्यों?"

लिंडा मुस्करायी, "विचार तो बहुत अच्छा है."

रोजमैरी का झुका हुआ सिर हल्का-सा उठा, "गर्मियों में?. . . पर गर्मियां तो अभी बहुत दूर हैं. . ."

मि. लारेंस ने बड़ी आत्मीयता के साथ रोजमैरी के झुर्रियों वाले हाथ को छुआ, "कैसी बात करती हैं रोजमैरी. दिसंबर का महीना तो खत्म ही समझो. गर्मियों में भला कितने महीने बाकी हैं. . .?"

लिंडा काफी ले आयी.

"मैं तो थोड़ी-सी ब्रांडी और लूंगा मिसेज स्मिथ." पीटर ने कहा.

"जरूर, पर पहले आप लोग उठिए और वहां आग के पास बैठिए. मैं अभी और लकड़ियां डाल देती हूं."

"मैं बर्तन धुलवा दूं." रोजमैरी ने पूछा.

"नहीं, थैंक्यू रोजमैरी," लिंडा ने काफी प्यालों में डालते हुए कहा, "तुम यह काफी पियो. बर्तन तो कल भी धुल जायेंगे."

फायरप्लेस में और लकड़ियां डालते हुए लिंडा ने गौर किया कि भले ही कोई बातचीत नहीं कर रहा था लेकिन कमरे में जैसे एक भरापन था. अपने लिए काफी डाल लिंडा भी आ बैठी. विवाल्डी की संगीत-रचना 'शीत ऋतु' अपने अंतिम चरण में थी. फायरप्लेस में आग की लपटें उठीं. खिड़की के कांच पर बर्फ हल्की-हल्की दस्तक दे रही थी. लिंडा ने खिड़की के पर्दे को देखा, सचमुच बहुत फीका पड़ गया है. क्रिसमस के बाद 'सेल' में जरूर एक नया पर्दा खरीद कर लायेंगी. . .और उनकी आंखों के सामने क्रिसमस की सज्जा से आकर्षक बनी आक्सफर्ड स्ट्रीट की दुकानें घूम गयीं. □

● सी-283, डी.डी.ए. फ्लैट्स, साकेत, नयी दिल्ली-17

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

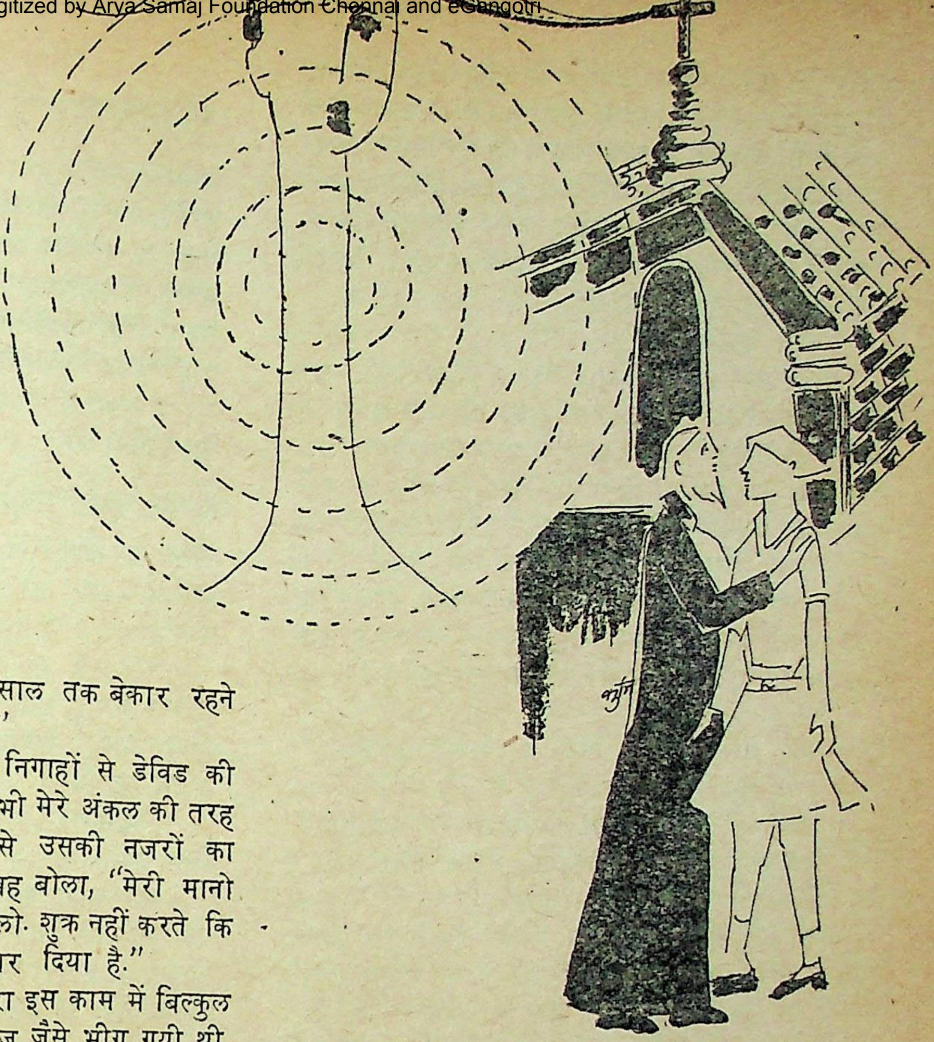

मुबारक हो तुम

▫ गुलजार

"मुझे मजहब एक तिलिस्मी कहानी से ज्यादा नजर नहीं आया. एक तिलिस्मी कठपुतली को चंद जादूगरों ने खुदा का नाम देकर सारी दुनिया पर थोप रखा है." मजहबों को कटघरे में खड़ा करती कथा

फिर चारों तरफ चुप्पी छा गयी थी, लेकिन इस दफा खामोशी ने बड़ी लंबी सांस खींची और सिगरेट के आखिरी टुकड़े की तरह देर तक सुलगती रही.

"आखिर तुम चाहते क्या हो?" आवाज में झुंझलाहट थी.

"कुछ नहीं!" पीटर ने गर्दन को हल्का-सा झटका दिया और फिर चुप्पी-सी छा गयी—सिर झुकाये वह गले की सलीब को बिस्तर की चादर से रगड़ता रहा, जिसके पीछे एडिना का नाम लिखा था.

"अफसोस तो ये है कि दो साल तक बेकार रहने के बाद भी तुम्हें होश नहीं आया."

पीटर ने गर्दन उठाकर गुस्सैली निगाहों से डेविड की तरफ देखा, जैसे कह रहा हो—'तुम भी मेरे अंकल की तरह बेकारी के ताने देने लगे.' डेविड जैसे उसकी नजरों का इशारा समझ गया हो. संभलते हुए वह बोला, "मेरी मानो तो यहीं मेहनत करो और कुछ सीख लो. शुक्र नहीं करते कि यीशु ने तुम्हें अपनी सेवा का अवसर दिया है."

"डेविड, तुम समझते क्यों नहीं, मेरा इस काम में बिल्कुल जी नहीं लगता." पीटर की आवाज जैसे भीग गयी थी.

"लेकिन दिल न लगने की कोई वजह भी तो हो पीटर, तुम्हें अच्छा खाने को मिलता है, रहने को कमरा मिला हुआ है, वजीफा मिलता है और क्या चाहिए तुम्हें? अच्छे ग्रेड में सेमनरी पास कर लो तो किसी बड़े शहर में पादरी हो जाओगे.."

पीटर ने कोई जवाब नहीं दिया. पीटर को गिरजे की स्कूल सर्विस में डेढ़ साल से कुछ ऊपर हो चला था, लेकिन यह अर्सा जैसे गैरमामूली तौर पर लंबा हो गया था. बड़ा खुश्क और बे-लुत्फ! गिरजे के पहले साल वह नीली आंखोंवाली एडिना सिस्टर से मिला, जिसकी लंबी पलकें गालों के टीलों तक पहुंचती थीं— और जब वह हंसती तो उसके गालों में दो नन्हें-से गड्ढे पड़ जाते—उसका जी चाहता, उन पर उंगली रखकर वह उसके गालों को धीरे से दबा दे. उसने थोड़ा-थोड़ा-सा वक्त निकालकर रंगों से एडिना की तस्वीर बनानी शुरू की. एडिना किसी-न-किसी बहाने थोड़ा-सा वक्त निकालकर उसके पास आ जाती— पीटर अपना ब्रश उठाता. दो नीली झीलों के दरवाजे खुल जाते. पीटर ने उनमें ब्रश डुबो दिये और कागज पर एक इंद्रधनुष बिखेर दिया और फिर हजारों रंग उन खाकों में संवरने लगे. वह इन नीले पानियों में तैरता रहा. उन अथाह गहराइयों में उतरता चला गया. और जब वह सतह पर आया तो फादर ने उसके हाथों से तस्वीर छीनकर फाड़ दी और आइंदा इन हरकतों से बाज रहने की ताकीद की. फिर एडिना ने सेमनरी कोर्स पास किया और उसका तबादला बुलंदशहर हो गया.

वक्त गुजरता और दिन सूखे पत्तों की तरह एक-एक करके गिरते गये—डेढ़ साल बीत चला था, लेकिन यह अरसा अपनी हद से बहुत ज्यादा लंबा हो गया था, बहुत ज्यादा खुश्क हो गया था. अब वह इस खाली-खाली माहौल से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेजार होने लगा, तबीयत ऊबने लगी. रोजाना एक ही किस्म की दुआएं पढ़-पढ़कर जिंदगी कुछ अधकच्ची-अधपक्की-सी लगने लगी. दिन भर के काम के बाद वह बिस्तर पर आकर लेटता तो तबीयत में एक अजीब-सी हलचल सिलवटें डालने लगती, जैसे मुंह में कोई नसवार कचक गया हो. कुछ देर खामोशी रही, फिर पीटर ने बड़ी सादगी से पूछा, "डेविड, तुम्हें उकताहट नहीं होती?"

"कैसी उकताहट?"

पीटर कुछ देर खाली-खाली नजरों से डेविड की तरफ देखता रहा. फिर नजरें चुपचाप झुका लीं और सलीब को बिस्तर की चादर से रगड़ने लगा. न जाने डेविड कब उठकर चला गया और कब सोचते-सोचते पीटर की आंख लग गयीं, लेकिन जब वह जागा तो उसके कमरे का दूसरा पार्टनर वापस आ चुका था. बिस्तर पर घुटनों के बल बैठा जोजफ रात की दुआ पढ़ रहा था. कुछ देर पीटर उसकी तरफ देखता रहा, फिर वह भी घुटनों के बल बैठकर दुआ में व्यस्त हो गया.

"पीटर, तुम मिस्टर जॉनसन के यहां नहीं गये?"

"हां, नहीं गया."

"क्यों, वहां तो कोई रस्म अदा करनी थी तुम्हें?"

"मगर तुम खुद क्यों नहीं गये?"

"कपड़े नहीं थे जोजफ, एक गाउन क्या-क्या छिपायेगा?"

"मेरे कपड़े पहनकर चले जाते. नहीं तो फादर जॉन से क्यों नहीं कहते कि वे कपड़े सिलवा दें."

जाने कैसे पीटर मान गया. जाकर उसने कह दिया, "फादर, मेरे पास कपड़े नहीं हैं." फादर जॉन ने लड़के के कंधे पर हाथ रखकर उसे प्यार से समझाया.

"मेरे बच्चे, जिनकी जिंदगी का मकसद यीशु और उसकी शिक्षा का प्रचार हो, उन्हें दुनिया की नुमाइशों से दूर रहना चाहिए. यीशु के सेवकों के लिए सादा जिंदगी और सादा 'लिबास' जरूरी है. यीशु ने कहा है, आने वाले वक्त के लिए कुछ जमा न करो. सिर्फ ईमान की दौलत समेट लो, क्योंकि लिखा है. जिसके पास ईमान है; उसके लिए जन्नत के दरवाज़े खोल दिये जायेंगे. तुम्हें याद है, अंजील में यही लिखा है."

"फिर उसने अनबरा को यीशु के शासन की घोषणा करने और बीमारों को अच्छा करने के लिए भेजा और उनसे कहा—'रास्ते के लिए कुछ न लेना, न लाठी, न झोली, न रोटी, न दीनार. और जिस घर में दाखिल हो. वहीं रहना और वहां से रवाना होते वक्त उस घर को सलाम करना ताकि उन पर यीशु की कृपा हो. और जिस शहर के लोग तुम्हें स्वीकार न करें, उस शहर से निकलते वक्त अपने पांव की धूल झाड़ देना ताकि उन पर तबाही हो."

"आमीन." आवाज फादर की आवाज में घुल गयी.

"मेरे बच्चे, फिलहाल इन्हीं कपड़ों से गुजारा करो. दुनिया की चमक-दमक से बचो और दुआ करो कि यीशु तुम्हें संकट में न डालें. आओ, आज शाम की दुआ में तुम मेरे साथ शामिल हो."

फादर ने अपने लंबे सफेद गाउन में हाथ डालकर कोट की जेब से रेशमी रूमाल निकाला, अपने चौड़े माथे को

नवयुवकों से

शिक्षा के क्षेत्र के हमारे नवयुवकों को यह समझ लेना चाहिए कि देश में कोई भी संवैधानिक व्यवस्था लागू हो, किसी राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक का सत्ता में समस्तरीय अधिकार नहीं हो सकता. मैं इस स्पष्ट सत्य की ओर उनका ध्यान आकर्षित करना चाहूंगा. मनोवेग के अनुपालन में ज्यादा जोश में आकर उन्हें स्वयं को ऐसी स्थिति से प्रतिबद्ध नहीं करना चाहिए, जहां से किसी भी समय उन्हें अपने कदम पीछे लौटाने के लिए बाध्य होना पड़े. ▫ **आचार्य रामचंद्र शुक्ल**

पोंछा और गिरजे में दाखिल हो गया. इस शाम फादर ने प्रार्थना में लूका की अंजील का छठा अध्याय निकाला और बीसवीं आयत से पढ़ना शुरू किया.

"मुबारक हो तुम, जो गरीब हो; यीशु का शासन तुम्हारे लिए है. मुबारक हो तुम, जो अब भूखे हो, क्योंकि तृप्त किये जाओगे. मुबारक हो तुम, जो अब रोते हो, क्योंकि हंसाये जाओगे."

"आमीन!" हाल में सबकी आवाजें एक-दूसरे के साथ मिल गयीं.

सेंट सेक्रेड स्कूल में मैट्रिक के लड़कों को अलविदा पार्टी दी गयी. प्रिंसिपल ने लड़कों को शिक्षा और उन्नति की दुआएं दीं. आइंदा जिंदगी के लिए उन्हें नसीहतें कीं, पीटर की तस्वीरें उस स्कूल में यादगार रहेंगी, ऐसा प्रिंसिपल ने कहा था. उसे उम्मीद थी कि पीटर एक दिन जरूर कामयाब पेंटर बनेगा और उसकी कामयाबी का हक इस स्कूल के सिर होगा, जिसने उसे प्रारंभिक शिक्षा दी थी.

पीटर ने मैट्रिक का इम्तहान दे दिया. अपने नतीजे के बारे में वह बिल्कुल संतुष्ट था. उसके अंकल भी जानते थे कि वह जरूर पास हो जायेगा, लेकिन वे उसकी आवारागर्दी से हमेशा परेशान रहते थे. वे चाहते थे कि पीटर कोई काम सीख ले या नौकरी की तलाश करे और घर के खर्चे में उनका हाथ बंटाये, लेकिन पीटर अभी पढ़ना चाहता था और उसके अंकल यह नहीं चाहते थे. वह सुबह ही अपनी स्केच-बुक और पेंसिल जेब में डालकर घर से निकल जाता और फिर सारा दिन गली-कूचों और बाजारों में घूमता रहता. कभी शहर से बाहर वीरानों में निकल जाता और फिर कई-कई दिन वह डेविड के कमरे में किसी तस्वीर पर मेहनत करता. वह इस कला में पूरी निपुणता हासिल करना चाहता था. वह तस्वीरें और खाके अखबारों और रिसालों को भेजता, लेकिन उनमें से अक्सर 'प्रकाशन के अयोग्य' कहकर लौटा दी जातीं. और जो खाके प्रकाशित होते, पारिश्रमिक न मिलता.

डेविड और पीटर मैट्रिक पास हो गये. पीटर ने कालेज में दाखिला चाहा; लेकिन उसके अंकल ने अपनी मजबूरी उस पर जाहिर कर दी.

वह मदद के लिए स्कूल के प्रिंसिपल के पास गया. स्कूल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का प्रिंसिपल मजबूर था. स्कूल के प्रिंसिपल ने उसे कॉलेज के प्रिंसिपल के पास भेज दिया. कॉलेज का प्रिंसिपल भी मजबूर था. कॉलेज मैथोडेस्ट चर्च के अधीन चलता था. कॉलेज के प्रिंसिपल ने उसे गिरजे के फादर के पास भेज दिया, क्योंकि वही उसकी मदद कर सकता था.

गिरजे का फादर बिलकुल मजबूर था. फादर के अधीन कुछ नहीं था. गिरजे के फादर ने उसे जिले के मिशनरी के पास भेज दिया, जो वर्किंग कमेटी का प्रेसीडेंट था. वह जरूर उसकी मदद कर सकता था.

मिशनरी ने उसकी दर्खास्त सुनी. उसकी हालत का निरीक्षण किया. मिशनरी को उससे बड़ी हमदर्दी थी, लेकिन उसे अपनी तमाम मजबूरियां याद आ गयीं. वह अपनी मर्जी से कोई फैसला नहीं कर सकता था. मिशनरी ने उसे सेक्रेट्री के पास भेज दिया ताकि वह इस मसले को कमेटी के सामने रखे. मसला कमेटी के सामने रक्खा गया.

1. पीटर एक अनाथ लड़का है.
2. पीटर के अंक बहुत गरीब हैं.
3. पीटर के नंबर रियायत की औसत से कम हैं.

कई घंटों तक कमेटी में बहस चलती रही. एक लंबी-चौड़ी बहस के बाद कमेटी ने फैसला किया—'क्योंकि पीटर के नंबर औसत से कम हैं, इसलिए वह ज्यादा जहीन स्टूडेंट साबित नहीं होता, इसलिए उसे कॉलेज की बजाय चर्च सर्विस की शिक्षा मुफ्त दी जा सकती है.'

पीटर ने इंकार कर दिया.

एक महीना. . दो. महीने. . .छह महीने. . बारह महीने. एक साल. . . डढ़ साल. . . दो साल. . दो साल की लगातार परेशानी के बाद जब पीटर नौकरी मिलने से बिल्कुल मायूस हो गया और आंटी के फिकरे उनकी रोटियों से ज्यादा भारी होने लग तो उसने अपना फैसला बदल दिया और चर्च सर्विस में दाखिल हो गया, जहां डेविड उससे पहले पहुंच चुका था. इसी साल वह नीली आंखोंवाली एडिना से मिला, जिसकी लंबी पलकें गालों तक पहुंचती थीं. अपने अंधे बाप की तन्हा लाठी एडिना ने भी अपनी गरीबी के मजार पर चिराग जलाया था. वह भी इन्हीं हालात में चर्च सर्विस में आयी थी, जो पीटर को यहां ले आये थे.

पीटर के दिन और शामें एक हो गयीं. सिवाय शनिवार की शाम के वह गिरजे से बाहर नहीं जा सकता था. हफ्ता भर वह मिशनरी स्कूल में प्रवचन करने का अभ्यास करता, जन्म और मौत के मौकों पर अदा की जानेवाली दुआएं याद करता. जब वह शाम को वापस आता तो दिमाग इतना बोझिल होता कि उसमें बाहर जाने की शक्ति न बची रहती. वह आते ही बिस्तर पर लेट जाता—घंटों लेटा छत पर नजरें से खाके बनाता रहता. शनिवार के दिन वह बच्चों की संडे क्लास में तामील देता. दिनभर अपने कमरे में गुजारने के बाद शाम को बाहर निकल जाता. घंटों शहर की सड़कों पर बेमकसद घूमता रहता. अक्सर ऐसे मौकों पर वह रात की प्रार्थना में देर से पहुंचता. उस दिन फादर जॉन का आखिरी प्रवचन था. जब वह देर से पहुंचा. फादर जॉन का तबादला किसी और शहर में हो गया था.

दुआ के बाद वह अपने कमरे में आया और आते ही बिस्तर पर लेट गया. इतने में डेविड कमरे में दाखिल हुआ.

"क्या बात है पीटर? तुम्हारी तबीयत कुछ खराब मालूम होती है, तुम्हारा रंग दिन-ब-दिन पीला पड़ता जा रहा है?"

पीटर ने कुछ जवाब न दिया और बिस्तर पर पड़ा छत की तरफ देखता रहा. उसका चेहरा उतरा हुआ था.

"पीटर, खैरियत तो है ना?" डेविड उसके पास ही बिस्तर पर बैठ गया. पीटर अब भी चुप रहा.

"जानते हो, आज फादर तुम्हारे बारे में लड़कों से बहुत कुछ पूछ रहा था." पीटर की खामोशी कायम रही.

"क्या बात है पीटर, तुम बोलते क्यों नहीं?"

"डेविड." पीटर की आवाज भर्राई हुई थी. अल्फाज उसके होंठों से रुक-रुककर निकल रहे थे, "मैं तुमसे अक्सर कहा करता था कि मेरी यह जगह नहीं, लेकिन अब मुझे महसूस हो रहा है कि मेरी कोई दूसरी जगह भी नहीं है. मैंने गिरजे में दिल का सुकून तलाश करने की बहुत कोशिश की, लेकिन मुझे मजहब एक तिलस्मी कहानी से ज्यादा नजर नहीं आया. एक तिलस्मी कठपुतली को चंद जादूगरों ने खुदा का नाम देकर सारी दुनिया पर थोप रखा है. और ये सारी कहानी, लालच, झूठ, खुदगर्जी और नफरत के ताने-बाने से बुनी हुई है. डेविड, मैं आधी रात को गिरजे के हाल में खड़ा वहां की सिसकती हुई खामोशी को सुनता रहा हूं. मुझे इस खामोशी में हजारों मासूम और बेगुनाह इंसानों की सिसकियां और आहें सुनाई देती हैं—उन मासूम और अनजान इंसानों की सिसकियां, जिन्हें सदियों तक न मालूम हो सकेगा कि उनके पाक गिरजे की दीवारें उनके बाप-दादा के खून और हड्डियों से बनी हुई हैं, जिनकी बुनियादों में आज भी उनकी अधूरी जिंदगियां सिसक रही हैं. डेविड, ये गिरजा, ये मजहब सिर्फ एक तिलस्मी जाल है, एक ख्वाब है, एक धोखा है." पीटर की आवाज रुंध गयी.

डेविड चिल्लाकर बोला.

"तुम्हें क्या हो गया है"?

"मुझे इस गिरजे से नफरत हो गयी है."

"लेकिन तुम ये कह क्या रहे हो?"

"मैं यहां से जा रहा हूं, अभी इसी वक्त!"

पीटर ने जेब से एक खत निकाला और डेविड की तरफ फेंक दिया. खत पढ़ते-पढ़ते डेविड का रंग उड़ गया. एडिना फादर जॉन की निशानी लिये अस्पताल में पड़ी थी. पीटर वहीं जा रहा था. डगमगाते हुए कदमों से डेविड बाहर आया और मरियम के बुत के सामने बिलख-बिलख कर रोता रहा.

सुबह की दुआ में फादर ने लूका की अंजील खोली. छठा अध्याय निकाला और बीसवीं आयत से पढ़ना शुरू किया: "मुबारक हो तुम, जो गरीब हो, क्योंकि यीशु का शासन तुम्हारा है; मुबारक हो तुम, जो भूखे हो; क्योंकि तृप्त किये जाओगे. मुबारक हो तुम, जो अब रोते हो, क्योंकि हंसाये जाओगे. मुबारक हो तुम. . ." □

● अनुवाद : अशफ़ाक़ अहमद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

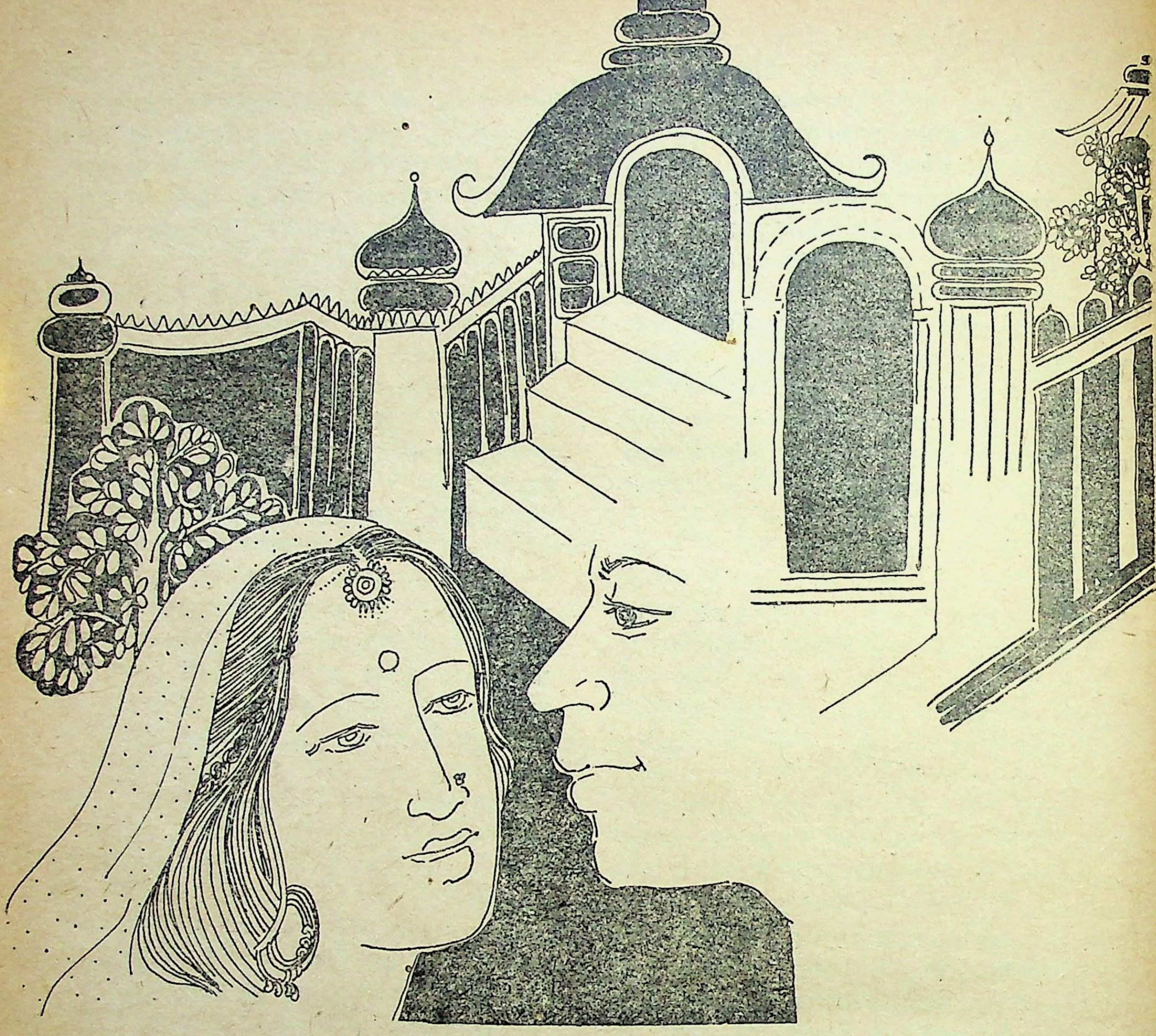

नागचम्पा

बाला दुबे

शनिवार, दस अगस्त, सन अठारह सौ पचपन की जामुनी शाम. रियासत जैतगढ़ के असिस्टेंट रेजीडेंट कैप्टन माइक गॉर्डनर से नहीं रहा जा रहा था. वह फिर अपनी कमंद साथ लेकर चल पड़ा. अगर गुफावाली जगह में जरा-सी भी अड़चन नजर आयी तो फिर कमंद से ही ऊपर चढ़ेगा, ऐसा वह निश्चय करके चला था. नदी के मंदिर के पास उस दिन धोबियों की पंचायत हो रही थी. सामने आग जल रही थी और कोई चालीस-पचास धोबी इर्द-गिर्द बैठे दारू पीकर ऊंची आवाज में बोल रहे थे. माइक यह देखकर ठिठका और उसने सोचा कि हो न हो, गुफावाली घटना को तूल दे दिया गया है और रियासत की गारद वहां लगा दी गयी है. यह देखकर माइक का हठ और भी जोर पकड़ता गया और वह मन-ही-मन दोहराता रहा 'कुछ भी हो, आज गजरा से जरूर मिलना है.' उसे ऐसा लग रहा था जैसे गजरा से मिले उसे कई साल बीत गये हों. प्रेम से उपजा उन्माद अक्सर ख़तरनाक इरादों की नींव पर ही टिका होता है. तभी माइक अपनी कमंद लेकर महल की सुनसानी की तरफ बढ़ चला. गजरा की गौरव के नीचे आकर उसने कमंद फेंका और फिर ऊपर चढ़ने लगा.

भाग्य में शायद उस दिन क्लेश बदा ही था. महल का हिजड़ा हाजत करने दीवार से थोड़ी ही दूर बैठा था. उसने जब एक काली छाया को रस्सी के सहारे जनाने महल पर चढ़ते देखा तो उसका माथा ठनका और वह निबटकर सीधा खोजा के पास चल दिया. खोजा यह सुनकर चौंका और सबसे पहले तो उसने ड्योढ़ी की तलाशी लेना शुरू कर दिया. वह एक बार दूध से जल चुका था, इसलिए सबसे पहले उसने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपना घर देखा. करीब एक डेढ़ घंटे की तलाशी के बाद उसे इत्मीनान हो गया कि जो भी मर्द जनानखाने में घुसा है, वह कम-से कम ड्योढ़ी में तो नहीं आया है. खोजा भी रियासत की राजनीति में टांग अड़ा कर रखता था. इस घटना को उसने एक सुनहरा मौका जाना और उसने अपने दल के हिजड़ों और कुछ चौकीदारों को जनाने महल के चारों तरफ तैनात कर दिया. आखिर बात कब तक दबाई जा सकती थी. जनाने महल के चारों तरफ हरकत देखकर किसी कोने से बात फूट ही निकली कि खोजा को शक है कि कोई मर्द जनानखाने में गया है. खोजा का शक कभी निराधार नहीं होता था, लिहाजा बात जंगल की आग की तरह फैल गयी और जनानखाने तक पहुंच गयी. जब यह बात फुलवा ने सुनी तो वह बदहवास भागती हुई गजरा के महल पर आकर दरवाजे की सांकल खटखटाने लगी. माइक और गजरा उस समय किसी और ही दुनिया में खोये हुए थे. सांकल की आवाज सुनकर गजरा चौंकी. उसने माइक को दूसरे कमरे में छिपा दिया और स्वयं दरवाजा खोलने आयी. दरवाजा खुलते ही घबरायी हुई फुलवा मुंह पर अंगुली रखे कमरे के अंदर आ गयी और फिर हांफती हुई बोली, "मालकिन, गजब हो गया. खोजा के हिजड़ों और चौकीदारों ने सारा जनानखाना घेर रखा है. उनका खयाल है कि जनानखाने में कोई मर्द गया है."

यह सुनकर गजरा की कनपटी गर्म हो गयी और उसके पांव लड़खड़ाने लगे. फिर भी वह संभलकर बोली, "ठीक है फुलवा, तू मेरे महल के इर्द-गिर्द ही रहना."

गजरा उलटे पांव लौटी और घबराये स्वर में उसने माइक को सब कुछ बतला दिया. यह सुनकर माइक भी एक बार कांप गया. गजरा की बदनामी के अलावा उस पर भी आंच आती थी. हो सकता है कि मेजर किलबर्ट उसे वापस कलकत्ते ही

"अब सवाल उठता है कि तेरे पति को बाहर कैसे निकाला जाये. मैंने सुना है कि महल चारों तरफ से घेर लिया गया है. यहां तक कि नागचंपा वाला गुप्त रास्ता भी निगरानी में है." लेकिन रानी रत्नप्रिया ने गजरा के पति को सुरक्षित निकाल दिया, कैसे? पढ़िए लोकप्रिय कथाकार के शीघ्र प्रकाश्य उपन्यास 'नागचंपा' का एक अत्यंत रोचक अंश--

भिजवा दे. हो सकता है, नौकरी से अलग करके इंग्लैंड वापस भेज दिया जाये. माइक इसी उधेड़बुन में परेशान रहा और फिर दृढ़ स्वर में बोला, "गजरा, मेरे पास भरा हुआ पिस्तौल है. मैं जिंदा निकल तो जाऊंगा, पर इसके बाद तुम्हें मेरे साथ ही चलना होगा. मेरे साथ ही रहना होगा. अगर मैं बरखास्त कर दिया गया, तो भी मैं तुम्हें अपने साथ इंग्लैंड ले जाऊंगा या फिर हम हिंदुस्तान के ही किसी कोने में रहकर अपना गुजारा कर लेंगे, पर मैं तुम्हारे बगैर नहीं जा सकता गजरा."

गजरा ने उसकी ओर देखा और प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरकर बोली, "हां माइक, हम दोनों को अब कोई भी जुदा नहीं कर सकता. फिर भी, आस नहीं छोड़नी चाहिए. कुछ न कुछ राह निकल ही आयेगी."

माइक बोला, "इतना मैं बता दूं कि गुफावाला रास्ता आज खतरनाक होगा."

गजरा बोली, "मैं जानती हूं. अब मेरे पास एक ही रास्ता है. महारानी को सब कुछ सच-सच बतला देना. वह पढ़ी-लिखी होने के अलावा इतना बड़ा कलेजा भी रखती हैं." गजरा ने अपने दोनों हाथों को फैलाकर कहा.

फिर वह अपने कपड़े संवारने लगी और माइक से बोली, "तुम मेरे कमरे में ही रहना. भाग जाने को कोशिश मत करना. आफत में ठंडे दिमाग की ही परीक्षा होती है. भगवान ने चाहा तो सब ठीक होगा."

यह कहकर गजरा महारानी रत्नप्रिया के महल की ओर चल पड़ी. जनाने महल में उस समय जगार हो चुकी थी. बांदियां और दासियां अपने-अपने गाल पर अंगुली टिकाये अटकलें लगा रही थीं. महाराजा की अन्य तीनों रानियां भी असमंजस में पड़ गयी थीं. रत्नप्रिया स्वयं भी अचरज में पड़ी हुई नौकरानियों से कह रही थीं, "मालूम पड़ता है कि कोई चोर महल में घुसा होगा. सब संतरियों और चौकीदारों को सतर्क कर दिया जाये. अगर अंदर आ गया है तो बगैर दिखाई दिये बाहर नहीं जा सकेगा." तभी गजरा वहां आ पहुंची थी. वह शांत सागर-सी लग रही थी. ज्वारभाटे के चिह्न कहीं भी नजर नहीं आ रहे थे.

रत्नप्रिया ने उसे देखते ही कहा, "अरे, तूने भी सुना है गजरा कि नहीं, बतलाते हैं कि कोई चोर महल की दीवार चढ़कर अंदर घुस आया है."

गजरा की ठंडी नजर रत्नप्रिया की कौतुहलभरी नजरों से मिली. उसने धीरे से कहा, "हां महारानी बहन, एक चोर महल के अंदर आ गया है." रत्नप्रिया ने चौंक कर पूछा, "क्या सचमुच वह महल के अंदर आ गया है? क्या तूने उसे देखा है?"

"जी हां महारानी बहन," गजरा नीची निगाह करती हुई बोली, "वह सोने-चांदी का चोर नहीं है. वह मेरे मन का चोर है, मेरा चितचोर है." रत्नप्रिया को सांप सूंघ गया, "मेरे साथ कमरे में चल गजरा, वहीं बातें करूंगी."

चित्रलिखित-सी गजरा रानी रत्नप्रिया के पीछे-पीछे चल दी जैसे दो दिन का बछड़ा गाय के पीछे-पीछे चलता है. कमरे में घुसते ही रत्नप्रिया ने कमरे का दरवाजा बंद किया और गंभीर स्वर में बोली, "क्या यह चोर रेजीडेंसी का कैप्टन माइक है?"

"जी हां महारानी." गजरा पांव से कालीन को खोदती हुई बोली. रत्नप्रिया ने लंबी सांस छोड़कर कहा, "अच्छा, तो बात यहां तक बढ़ गयी है."

गजरा की आंखें डबडबा गयीं और वह भर्राये गले से बोली, "बात यहां से भी बहुत आगे बढ़ चुकी है महारानी, मैं परीक्षा में हार गयी. मैंने प्यार का नाटक तो खूब किया, पर स्वयं उसकी नायिका बन गयी."

"कितनी बढ़ी है बात, जरा सुनूं?" रत्नप्रिया बोली.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"आप जो सजा देंगी, वह मुझे सहर्ष कबूल है महारानी." गजरा बोली, "सत्य यह है कि कैप्टन माइक गार्डन से मैंने नागचंपा वाली गौरी मां को साक्षी मानकर विवाह कर लिया है और मुझे इसी महीने आभास हो रहा है कि मैं उसके बच्चे की मां भी बन गयी हूं." रत्नप्रिया का मुंह आश्चर्य से खुला का खुला रह गया. कुछ देर बाद गजरा को टकटकी बांधकर देखती रही और फिर धीरे से बोली, "खैर, जो कुछ हुआ, अच्छा ही हुआ. फिलहाल तो किसी भी तरह मुझे तेरे पति की रक्षा करनी है.

तू एसा कर कि अपने पति को लहंगा-फरिया पहनाकर शीघ्र ही मेरे महल से पिछवाड़े से ले आ. अभी तक जैतगढ़ में कोई एसा माई का लाल पैदा नहीं हुआ, जो रत्नप्रिया के महल की तलाशी लेने की जुर्रत कर सके."

गजरा ने झुककर महारानी रत्नप्रिया के पांव छुए. रत्नप्रिया के पांवों पर उसकी आंखों से दो गर्म-गर्म आंसू गिर पड़े. रत्नप्रिया ने उसके सिर पर हाथ रखकर कहा, "तेरा सुहाग बना रहे, अब उठ और जल्दी से अपने पति को ले आ." गजरा उल्टे पांव लौट पड़ी. अपने महल जाकर उसने माइक को सब कुछ बता दिया. माइक धीरे से बोला, "मैं महारानी साहिबा के आगे अपना टोप उठाता हूं गजरा. निःसंदेह जैतगढ़ की यह रानी एक 'कल्चर्ड लेडी' के अलावा आदरणीया मालकिन भी है."

गजरा ने तब माइक को फटाफट लहंगा और फरिया पहनाया था. ऊपर से शाल से उसे ढककर वह चल दी. दूर से ऐसा लगता मानो कोई बांदी गजरा के पीछे-पीछे चल रही हो. रत्नप्रिया के महल में आकर माइक और गजरा ने चैन की सांस ली.

"अब तुम इसी लिबास में बैठे रहना. मैं महारानी के पास जाकर तुम्हें महल से बाहर निकालने की जुगाड़ लगाने जा रही हूं."

गोल कमरे में रत्नप्रिया इधर-उधर टहल रही थीं. गजरा ने जाकर धीरे से कहा, "वे आ गये हैं महारानी बहन."

"ठीक है." रत्नप्रिया ने कहा, "अब सवाल उठता है कि तेरे पति को बाहर कैसे निकाला जाये. मैंने सुना है कि महल चारों तरफ से घेर लिया गया है. यहां तक कि नागचंपा वाला गुप्त रास्ता भी निगरानी में है. हां, यह तो मैं भूल ही गयी: क्या तूने अपने पति को नागचंपा वाले रास्ते के बारे में बतला दिया है?"

"जी हां महारानी बहन, "गजरा बोली, "वे इसी रास्ते आते थे, पर परसों किसी ने उन्हें देख लिया था. इसलिए वे कमंद डालकर दीवार चढ़कर आये. पहली बार भी वह कमंद द्वारा ही मेरे पास आये थे."

रत्नप्रिया ने 'हूं' कहा और फिर सोचने लगीं. कुछ देर टहलने के बाद ही वे यकायक पलटीं और उनके चेहरे पर लाली नजर आने लगी.

'बस, यही एक सूरत है' वह जैसे अपने आप से बोलीं. फिर गजरा के पास आकर बोलीं, "कोने के पास वाली कोठरी में जो बुढ़िया बहुत बीमार चल रही थी, वह कहां है." गजरा ने आश्चर्य से कहा, "वह तो शायद वहीं है, वह तो मरासू पड़ी हुई है."

रत्नप्रिया धीरे से बोली, "अपनी दासियों के पास तू अभी जा और उनसे कह दे कि ठीक दो बजे रात को रोना-पीटना शुरू कर दें. बुढ़िया को मेरे सामानवाले कमरे में पहुंचा और अपने पति को बुढ़िया की चारपाई पर लिटा देना. समझी कि नहीं. इसके बाद ही शोर मचाना कि बुढ़िया को बड़ी माता निकली, जिससे वह चल बसी."

गजरा अवाक् सुनती रही. वह आश्चर्य के कारण गूंगी-सी हो गयी. 'सोच क्या रही है पगली. यही एक साधन है असिस्टेंट रेजीमेंट को जनाने महल से बाहर निकालने का. उन्हें अर्थी में रखकर बाहर निकाला जायेगा. चेचक के मरीज के साथ अर्थी में कंधा देने से भी लोग कतराते हैं, पास भी नहीं फटकते. और चेचक से मरे इसांन को जलाया भी नहीं जाता. उसे या तो नदी में प्रवाहित किया जाता है या जमीन में गाड़ा जाता है."

गजरा की आंखों में चमक आ गयी. उसने बढ़कर रानी के हाथ पकड़कर अपने माथे से लगा लिये.

"आज मैंने जाना महारानी बहन, कि कलकत्ते में पढ़ी औरत कितनी विलक्षण बुद्धिवाली हो सकती है. मैं अपने सुहाग की कसम खाती हूं महारानी बहन कि अगर कभी भगवान ने अवसर दिया तो मैं और माइक दोनों आपके लिए गर्दन कटवा देंगे."

१९८४ का यह वर्ष

"अब आगे जाकर लेखकों के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य यही होनेवाला है, जिसे वे अपनी दुनिया समझते थे, लेखकों की दुनिया नहीं रही." 1984 का वर्ष है और जार्ज ऑरवेल की याद आना स्वाभाविक है. ऊपर उद्धृत विचार उसने 1939 में व्यक्त किया था, जब दूसरे महायुद्ध की भयावह संभावना सामने मंडरा रही थी. कहा जा सकता है कि उसकी बात अंततः सच नहीं निकली. महायुद्ध के बाद संसार और उसमें लेखक की स्थिति पहले के मुकाबले बहुत बदल गयी, लेकिन फिर भी लेखक के लिए संसार और संसार के लिए लेखक व्यर्थ नहीं हो गये. भले ही ऐसा ससार अब शायद कहीं नहीं रहा, जिसमें साहित्यिक संस्कृति की केंद्रीयता हो. ऐसा संसार अभी भी शेष है, जिसमें लेखक प्रतिकृत होता है और जिससे लड़-जूझकर, जिसे सह-झेलकर, समझ-बूझकर सृजनात्मक शब्द, अपने ऊपर हो रहे अनेकों अक्रमणों के बावजूद अपनी शक्ति पाता और शब्द के लिए इस अभागे समय में भी अपनी एक सामाजिक स्थिति बना पाता है. □

▣ अशोक वाजपेयी

(कुछ पूर्वग्रह से)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रत्नप्रिया ने उसके सिर पर हाथ फेरकर कहा, "मैंने तुझे कभी गैर नहीं समझा गजरा. तू मेरे बचपन की सहेली ही नहीं, मेरी छोटी बहन भी है. अब जैसा मैंने तुझे बतलाया है, तू वही कर. देर का काम अब बिल्कुल नहीं है."

गजरा तुरंत वापस चल दी और रत्नप्रिया के कहने के अनुसार उसने अगले दृश्य का वैसा ही मंच सजा दिया.

करीब दो बजे रात को रोना-पीटना शुरू हुआ था. माइक उस वक्त चारपाई पर पड़ा था. उसके चेहरे पर गजरा ने काजल पोत दिया था और पूरे चेहरे पर लकड़ी की डंडी से चेचक जैसे चकत्ते बना दिये थे. थोड़ी ही देर में जनाने महल में यह खबर भी फैल गयी कि चार महीने से बीमार चल रही बुढ़िया नौकरानी को बड़ी माता निकली और वह चल बसी. जिसने भी 'बड़ी माता' यानी चेचक का नाम सुना, वही रत्नप्रिया के महल के दरवाजे तक से दूर खिसकने लगा. जब यह खबर ड्योढ़ी और बाहर के फाटक तक पहुंची तो सिपाही चौकीदार तक घबरा गये. चेचक से पूरा जैतगढ़ डरता था. यहां तक कि क्रियाकर्म कराने वाला पंडित भी या तो गांव से भाग निकलता या पास के जंगल में छिप जाता. सुबह के साढ़े तीन बजे माइक की अर्थी निकली थी. महारानी रत्नप्रिया की पांच-छः विश्वसनीय बांदियां और गजरा साथ में थीं. लगभग सबने मुंह पर कपड़ा बांध रखा था. एक बांदी के हाथ में मशाल थी और दूसरी के हाथ में लोबानदान, जिससे लोबान का खुशबूभरा धुआं उठ रहा था. महल के दक्षिण की ओर वाले फाटक से अर्थी निकाली गयी थी. यह फाटक केवल मुर्दनी के लिए ही खोला जाता था. फाटक से बाहर निकलते ही गजरा ने डग बढ़ाने शुरू कर दिये थे.

जनाजे को देखकर दूर खड़े सिपाहियों का घेरा देखते ही देखते टूट गया था. सब ही नाक पर हाथ रखे तितर-बितर होने लगे.

"बड़ी माता की मरीज है भैया, भगवान रच्छा करे इन ढोने वालों की." करीब बीस मिनट बाद नदी का किनारा आ गया था. एक पुरानी नांव खूंटे से बंधी पानी की सतह पर हिल रही थी. गजरा ने बांदियों से धीरे से कहा था, "लाश को नदी की बीच धारा में बहाया जायेगा. तुम सब अर्थी को नाव में चढ़ा दो और वापस लौट जाओ. लाश को धारा में छोड़कर मैं आ जाऊंगी." सब ने कृतार्थ दृष्टि से गजरा को देखा.

'जान बची लाखों पाये.' सब की सूरत पर शायद यह खुदा गया था. और गजरा देखते ही देखते अर्थी रखकर नाव को बीच धारा में ले चली. कोई दौ सौ गज की दूरी पर उसने चाकू निकालकर अर्थी की सुतलियां काटी थीं. माइक ने उठकर कहा, "थैंक्स गॉड, मैंने तुम्हें बहुत तकलीफ दी गजरा." गजरा ने उसके बालों पर हाथ फेरकर कहा, "अब तुम जल्दी निकल जाओ माइक. यहां से लगभग दो मील वापस चलना होगा, तब कहीं तुम रेजीडेंसी पहुंच पाओगे."

माइक झटके से उठा और बोला, "पर मैं तुमको अकेली नहीं छोड़ना चाहता गजरा." गजरा धीरे से हंसी, "मेरी परवाह मत करो. मुझे छूने की हिम्मत सिर्फ तुम कर सकते हो और कोई नहीं." और यहकर उसने एक रत्नजड़ित खंजर दिखाया.

"यकीन मानो, मैं खंजर चलाने में ही उतनी ही महारत रखती हूं, जितनी निशानेबाजी में." गजरा मुस्कराकर बोली. माइक सिर हिलाकर बोला, "मुझे पूरा यकीन है गजरा. मैं यह जानता हूं कि तुम्हारा कोई भी वार खाली नहीं जाता." गजरा ने उसे उठाते हुए कहा, "अच्छा, यह वक्त शायरी का नहीं है. इससे पहले कि घेरेवालों से यह अफवाह तुम्हारे मेजर के कान में पहुंचे, तुम्हारा रेजीडेंसी में होना जरूरी है."

माइक ने नाव किनारे लगा दी. जाते वक्त वह बोला, "एक बात कहना भूल गया गजरा. रानी साहिबा को मेरा सलाम देना और कहना कि मैं अहसानफरामोश नहीं हूं. कभी वक्त ने मुझे मौका दिया तो उनका यह कर्ज जरूर उतारूंगा, सौ दफा मरके भी उतारूंगा. माइक ने गजरा के होंठों को अपने होंठों से छुआ, जैसे सुबह की बयार अधखिली कलियों के मुख को चूमती है.

देखते ही देखते माइक ब्रह्ममुहूर्त के सुरमई उजालों में खो गया. गजरा की नाव के चप्पू सुबह की अलसायी लहरों पर ऐसी थपथपाहट कर रहे थे मानो कोई स्नेहमयी मां अपने डरे हुए बेटे को थपकियां देकर सुलाने का प्रयत्न कर रही हो. □

● एफ-48 ग्रीन पार्क, नयी दिल्ली-110016

ग़ज़ल

■ शबाब

वो गली-गली मेरे शहर की सरे आम चीखों से मर गया,
कहीं खंजरों सा उतर गया कहीं जलजले-सा गुजर गया.

उन्हीं सहसवारों का जिक्र है जिन्हें यारों मंजिलें मिल गयीं,
जिसे अपने पैरों पे नाज था वो रास्ते ही में मर गया.

मेरी गूंज बनके ही लौट आ तू पहाड़ियों की चढ़ाई से,
मुझे दर्द लेके अभी-अभी कहीं घाटियों में उतर गया.

ये तो जर्फ-जर्फ की बात है, ये नजर-नजर का सवाल है,
कोई हादसे से संवर गया कोई हादसे से गुजर गया,

जहां नस्ले गुल की खबर सुनी मेरे शहरों में वो हवा चली,
कोई पानियों-सा छलक गया कोई मोतियों-सा बिखर गया.

किसी घर में आग जहां लगी तो ये आरजू का धुआं-धुआं,
कभी मेरी आंखों में मर गया कभी तेरी आंखों में मर गया.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

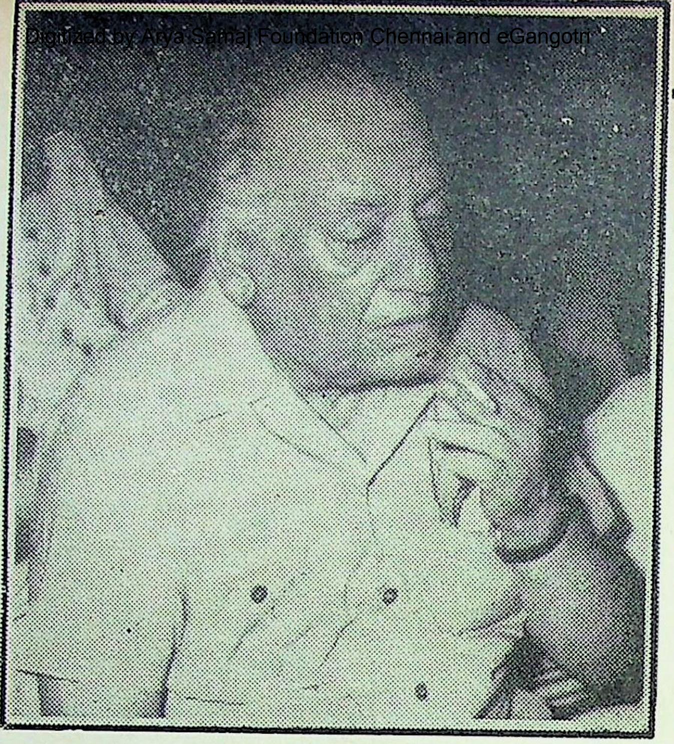

जन्म : सन् 1911 निधन : 20 नवं. 1984

कर रहा था गमे जहां का हिसाब आज तुम याद बेहिसाब आये!

व्यक्तिगत दुखों को सामाजिक पृष्ठभूमि में रख कर परखने और यथार्थ व रोमांस का संगम तलाशने वाले दुनिया के चंद मशहूर शायरों में हमारा सबसे अजीज शायर अब नहीं रहा. शायर, जिसकी लिखी हुई एक-एक नज्म, गजल या कतआ पढ़कर हम यह समझ जाते हैं कि इसे वही शख्स लिख सकता है, जिसे हम 'फैज' के नाम से जानते हैं. यह वह शख्स था जो दूसरों के हालाते-जिंदगी में तो जबर्दस्त दिलचस्पी रखता था, पर अपने हालाते-जिंदगी के बारे में उसकी कोई दिलचस्पी न थी.

सियालकोट में पैदा हुए फैज साहब की प्रारंभिक शिक्षा सियालकोट स्थित मिशन हाईस्कूल में हुई. अंग्रेजी और अरबी में एम. ए. करने के बाद कुछ वर्ष अमृतसर के एम. एम. ओ. कॉलेज और लाहौर के हेली कॉलेज में नौकरी की. फिर करीब छः साल तक फौज में कर्नल के रूप में काम किया. इसके बाद 'पाकिस्तान टाइम्स' और 'इमरोज' जैसे अखबारों के संपादक रहे. . . और निहायत सादगीपसंद ईमानदार जिंदगी का सिला मिला—'रावलपिंडी कांस्पिरेसी केस' के सिलसिले में पांच साल की जेल. यह वह इंसान था, जिसे ऊंचा बोल बोलते, आखिरी दम तक, किसी ने नहीं सुना. जिन लोगों ने फैज साहब को एक से ज्यादा मर्तबे सुना है, वे यह अच्छी तरह जानते हैं कि 'शेर' पढ़ते वक्त वे कितना एहतियात बरतते थे! . . .कि कहीं एक लफ्ज भी जरा जोर से निकल गया तो गजब हो जायेगा. उनकी शायरी पर दुनिया भर के कई बड़े लेखक तो इस हद तक फिदा थे कि जब उनका 'दस्ते सबा' छपकर आया तो उसे 'तारीखी वाकया' बताया गया.

दरअसल, फैज की शायरी 'तारीखी वाकयात' का एक लंबा दौर है, जो उनके न रहने पर भी आने वाली कई नस्लों को नयी नजर देता रहेगा. . .और दुनिया भर के तमाम लोग 'नकशे फरियादी', 'दस्ते सबा', 'जिंदा नामा', 'दस्ते-तहे संग', 'सरे वादिए-सीना', 'शाम-ए-शहर — यारां', और 'मेरे दिल मेरे मुसाफिर' जैसी किताबों में उनसे मुलाकात करते रहेंगे.

स्वभाव से रोमानी और आशिक-मिजाज होते हुए भी व्यवहार में संकोच और शालीनता के कायल फैज जब प्रेम-कविता लिखते थे तो कविता में उनका प्रेम एक गंभीर रूप में उभरकर साफ नजर आता था. शमशेर ने फैज की प्रेम-कविता पर टिप्पणी करते हुए कहा कि उनकी प्रेमिका प्रेमी को उदात्त, निस्वार्थ या आदर्शवादी बनाकर उन्हें दृष्टि की व्यापकता देती है. उनकी 'रकीब से' नज्म में प्रेमी रकीब को भी एक साथी या भाई की तरह संबोधित करता है. इस उदार भाव के कारण ही वह प्रेम, राष्ट्र या आजादी की लड़ाई से जुड़ जाता है और उधर प्रेमिका का आकर्षण स्वाधीनता या जन मुक्ति के लिए किये जाने वाले संघर्षों का आकर्षण बन जाता है. यही वजह है यह शुरू तो यूं होती है—

"आ कि वाबस्ता हैं उस हुस्न की यादें तुझसे/जिसने इस दिल को परीखाना बना रक्खा था . . .
जिसकी उल्फत में भुला रक्खी थी दुनिया हमने
दहर को दहर का अफसाना बना रखा था."

पर अंत तक आते-आते वह अपनी दृष्टि की व्यापकता भी स्पष्ट कर देती है——

"जब कभी बैठ के रोते हैं वो बेकस जिनके
अश्क आंखों में बिलखते हुए सो जाते हैं
नातुवानों के निवालों पे झपटते हैं उकाब
बाजू तोले हुए मंडलाते हुए आते हैं.
आग-सी सीने में रह-रह के उबलती है न पूछ
अपने दिल पे मुझे काबू ही नहीं रहता है."

फैज परंपरागत शब्दों का इस्तेमाल कुछ ऐसे करते हैं कि परंपरागत अर्थ तो बरकरार रहता ही है, उसे एक प्रासंगिक अर्थ और मिल जाता है. यही वजह है कि उनकी कविता में प्रेम और क्रांति एक-दूसरे के पूरक बनकर सामने आये हैं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन् 1984 का यह साल जाते-जाते हमसे हमारे सबसे अजीज शायर फैज साहब को भी छीन ले गया. न केवल उर्दू अदब के बल्कि दुनिया के तमाम अदीबों को उनसे बहुत कुछ सीखना होगा.

इस दुखद अवसर पर 'सारिका-परिवार' की ओर से अश्रुविगलित श्रद्धांजली के साथ प्रस्तुत हैं, फैज साहब की चुनिंदा नज्में—

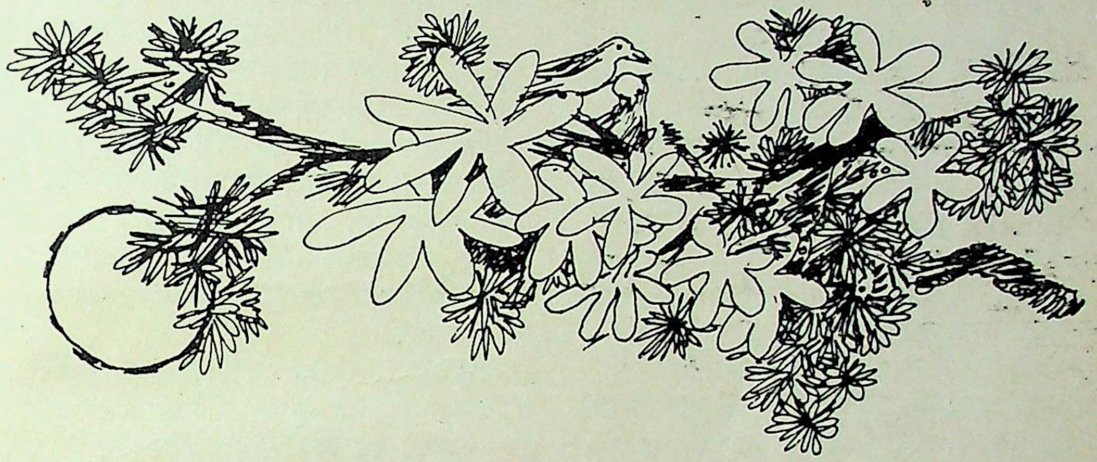

ऐ दिले-बेताब ठहर!

तीरगी है कि उमड़ती ही चली आती है
शब की रग-रग से लहू फूट रहा हो जैसे
चल रही है कुछ इस अंदाज से नब्जे-हस्ती
दोनों आलम का नशा टूट रहा हो जैसे

रात का गर्म लहू और भी बह जाने दो
यही तारीकी तो है ग़ाजा-ए-रुख्सारे-सहर
सुबह होने ही को है ऐ दिले-बेताब ठहर

अभी जंजीर छनकती है पसे-पर्दा-ए-साज
मुतळकुलहुक्म है शीराजा-ए-असबाब अभी
सागरे-नाब में आंसू भी ढलक जाते हैं
लगजिशे-पा में है पाबंदी-ए-आदाब अभी

अपने दीवानों को दीवाना तो बन लेने दो
अपने मयखानों को मयखाना तो बन लेने दो

जल्द ये सतवते-असबाब भी उठ जायेगी
ये गिराबारी-ए-आदाब भी उठ जाएगी
ख्वाह जंजीर छनकती ही, छनकती ही रहे.

आखिरी खत

वो वक्त मिरी जान बहुत दूर नहीं है
जब दर्द से रुक जायेंगी सब जीस्त की राहें
और हद से गुजर जायेगा अंदोहे-निहानी
थक जायेंगी तरसी हुई नाकाम निगाहें
छिन जायेंगे मुझ से मिरे आंसू, मेरी आहें
छिन जायेगी मुझसे मिरी बेकार जवानी

शायद मिरी उल्फत को बहुत याद करोगी
अपने दिले-मासूम को नाशाद करोगी
आओगी मिरी गोर पे तुम अश्क बहाने
नौखेज बहारों के हंसीं फूल चढ़ाने

शायद मिरी तुरबत को भी ठुकरा के चलोगी
शायद मेरी बेसूद वफाओं पे हंसोगी
इस वजए-करम का भी तुम्हें पास न होगा
लेकिन दिले-नाकाम को एहसास न होगा

अलकिस्सा मआले-गमे-उल्फत पे हंसो तुम
या अश्क बहाती रहो, फरियाद करो तुम
माजी पे नदामत हो तुम्हें या कि मसर्रत
खामोश पड़ा सोयेगा वामांदा-ए-उल्फत.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गली में रजनीगंधा की थकी, उनींदी खुशबू. . .एक पता नहीं किस नाम के पेड़ से पता नहीं किस नाम के पीले फूल झरे थे.

पूर्वाकाश पर फैली लाली के सामने टॉवर की स्याह आकृति—जैसे हम बचपन में सिनेमा के पर्दे के आगे हाथ उठाकर परछाईं देखते थे.

. . . वह मार्च की एक सुबह थी, जब जेन मर गई.

उस दोपहर को हवा हमारे साथ-साथ दौड़ती सेमेटरी तक आयी थी. रास्ते के पेड़-पौधों से कहती जा रही थी—पता है, इस गाड़ी में जेन को ले जा रहे हैं.

झरे पत्तों की गिनती करता सेमेटरी का गेट. . . अपनी-अपनी छांव में हमें बुलाते पेड़. . .

. . . आसपास की पांच फुट ऊंची दीवार. . . उस पर बैठे कबूतर. . .उग आयी झाड़ियां—सब पास आकर गड्ढे में झुक-झुककर देख रहे थे. पूछ रहे थे—कितना गहरा खोदा है, पार्टनर!

बाद में एक दिन जब कब्र पक्की बनवाकर हमने उस पर एक बड़ा, खूबसूरत संगमरमर का पत्थर लगवाया तब रविवार की बूढ़ी, अनपढ़ धूप उसे सहलाती हुई लगातार पूछ रही थी—जरा पढ़कर तो बताओ, इस पर क्या-क्या लिखा है? जन्म-मृत्यु? अरे, कुल बीस साल की थी!

मैं उन दिनों किसका अफसोस मना रहा था—जेन का या अपना?

किसी के गुजरने से इसी बात का तो अफसोस होता है कि अपनी जिंदगी में कितना ग्रहण लग गया. उसी ग्रहण के अनुपात में धक्का लगता है. दुःख शायद अपने लिए होता है.

मैं हर रविवार को वहां ताजा फूल रख आता था. अजीब, अकेले दिन थे.

शाम होने पर तो खैर, फव्वारा खुद आवाज देकर बुला लेता था. उसमें जो पत्थर का बूढ़ा लगा है, उसके शंख से पानी गिरता था और रंगीन फुहारों की बौछार होती थी.

हिप्पियों का जो ग्रुप उन दिनों वहां खड़े होकर मजमा जमाता था, वह जानता था कि मैं क्या सुनना चाहता हूं.

हर रविवार की सुबह कैलेंडर फड़फड़ाता हुआ मेरे पास आकर कहता था, 'सर, फूल आ गये हैं, उठिए.'

शुरू के दिनों में तो यह फूल रखने का क्रम नियमित रूप से चला, लेकिन बाद में मैंने पाया कि मुझे आलस आने लगा है.

धीरे-धीरे जेन से संबंधित चीजें भी एक-एककर मिटती जा रही थीं.

एक दिन नगर पालिकावालों ने पीले फूलों का वह पेड़ काट दिया जिसे वह अस्पताल की खिड़की से देखा करती थी.

फव्वारे पर बैठे-बैठे एक दिन जेन ने पैरों से कोई

तमाशबीन

• नरेंद्र नागदेव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या किसी के मरने का एक क्रम होता है जो उसकी मौत के बाद शुरू होता है और उस आदमी में एक दिन खत्म हो जाता है जिसने उसे सबसे ज्यादा चाहा था? —आदमी से आदमी के रिश्ते की पहचान कराती एक दास्तान—

आकृति बनाई थी धूल में. वह तो उसी शाम को मिट गई थी.

उस दिन उसने घबराकर मुझे जो फोन किया था, उसका भी अब क्या प्रमाण है? वे तो महज आवाजें थीं, जो तरंगों में बदलकर हवा में घुल गयीं.

जिस केमिस्ट से हम दवाएं लेते थे, उसकी दूकान चली नहीं. अब वहां कोई शो रूम खुल गया है.

फिर एक दिन ऐसा हुआ कि उसकी कब्र पर वह संगमरमर का खूबसूरत पत्थर भी नहीं रह गया.

. . . मैं तीन महीनों के लिए बाहर गया था. लौटकर आया तो देखा कि सेमेटरी के सामनेवाला रास्ता चौड़ा कर दिया गया है. जेन की कब्र बिलकुल किनारे पर होने के कारण रास्ते की चौड़ाई में चली गयी थी.

"लेकिन सर, यहां जेन की कब्र थी." मैं भागते-भागते टाउन-प्लानिंग के दफ्तर पहुंचा और आफिसर से कहा.

वह बड़ी रुखाई से पेश आया, "हम क्या करें? रास्ते की चौड़ाई कम कर देते क्या?"

उन्होंने कब्र का पत्थर वगैरह उखाड़कर फेंक दिया था. अवशेष जमीन में ही रहने दिए और उसके ऊपर तारकोल की एक खूबसूरत तह जमा दी थी.

बहुत खोजने पर सेमेटरी के कोने में जमे मलवे में मुझे वह पत्थर मिला. मैं उसे उठवाकर घर ले आया. उस दिन बाहर ओटले पर बैठे-बैठे देर तक उसे साफ किया. मन भरा-भरा था.

. . . मैं क्या करता. . .

कभी उस रास्ते से निकलता, तो उस जगह के ऊपर से नहीं जा पाता था. चक्कर काटकर दूसरी ओर से निकल जाता था.

क्या-क्या सपने संजोए थे जेन ने.

वह चांदनी रात में एक नौका में बैठकर संगमरमर की चट्टानों के बीच शांत जल में विहार करना चाहती थी. धूप में झिलमिलाती पर्वत-श्रृंखलाओं के सामने एक अलस दोपहर गुजारना चाहती थी.

या दोपहर को किसी घने कुंज की शीतल छाया में, बहते पानी में पैर डुबोकर बैठना चाहती थी.

. . . और कहां आ गयी!

बदकिस्मत. जमीन की सतह से तीन फुट नीचे पड़ी है, जिस पर से सारी दुनिया गुजर रही है.

क्या पाया? सारा दिन आकाश में उड़ता अकेला पक्षी अंततः डाल पर बैठकर पूछता है, 'क्यों रे, तूने क्या पाया?'

कई दिनों तक मैं सड़क के उस भाग पर से गुजर नहीं पाया. लेकिन एक दिन ऐसा हुआ कि मैं कुछ सोचते हुए सायकिल पर चला जा रहा था और बाद में मैंने पाया कि मैं ठीक उसी जगह को रौंदते हुए गुजर गया हूं जिसके नीचे जेन सोयी है.

झिझक की एक उम्र होती है. टूटने के बाद कुछ नहीं लगता. क्यों हो जाना पड़ता है भावुकता के मामले में अंततः बेशर्म? हो सकता है, इसका कारण यही हो कि आखिर तो जिंदगी के साथ तेज-तेज दौड़ना पड़ता ही है. तेज दौड़ते हुए दिमाग में सिर्फ लक्ष्य होता है, भावनाएं नहीं.

फिर हम लोगों के साथ एक मुश्किल यह भी है कि जिंदगी में हम उन्हीं रास्तों पर चलते हैं, जिन पर चलना चाहते ही नहीं.

इसमें दो बातें होती हैं. एक तो यह कि हर कदम बहुत लंबा और बोझिल लगता है. और दूसरे, यह दर्द हमेशा सालता है कि जिंदगी बेकार जा रही है. इस तड़प के बीच दूसरे का दर्द कितनी देर मन में ठहरेगा?

. . . वह कब्रवाला पत्थर घर के बाहर ओटले पर पड़े-पड़े धूल खाने लगा. एक दिन मैंने उसके निचले भाग से एक साफ टुकड़ा कटवाकर उसे अपनी नेमप्लेट बनाने के लिए दे दिया. मैं उसे अपने दरवाजे पर लगाना चाहता था. लेकिन मैंने इस बात का ख्याल रखा कि जेन के बारे में जो लिखा है, वह नहीं कटे.

ऐसा करने में मुझे कुछ आपत्तिजनक नहीं लगा. न कोई अपराध-भाव ही भीतर जागा.

यानी जब लोग मेरी नेमप्लेट की तारीफ करते थे, तब मेरे भीतर कोई आकृति व्यंग्य से मुझ पर हंसती नहीं थी.

न मैंने किसी के सामने यह स्वीकार करने की ही जरूरत समझी कि मैंने ऐसा किया है.

और स्वीकार क्या करता? मैंने कोई गुनाह किया था क्या?

इस बीच मैं यह बताना भूल गया कि मेरे घर के सामने रास्ते के ठीक बीच एक छोटी-सी गंदे पानी की नाली बहती है. विशेषकर साइकिलवालों को इससे बड़ी दिक्कत पड़ती थी. एक रात अंधेरे में कोई आदमी मुंह के बल गिर पड़ा.

मुझे नहीं पता. मैं सोया था. भीड़ इकट्ठा हुई होगी. उन्हीं में से कुछ उत्साही लोगों ने वह जेनवाला पत्थर उठाकर नाली पर औंधा रख दिया. मैंने सवेरे देखा.

वे भी क्या करते? अंततः अपने छोटे-छोटे सुख दूसरों के दर्द पर हावी तो होते ही हैं.

एक बार हम ट्रेन में जा रहे थे. रास्ते में एक गांव का आदमी चढ़ा. उसने एक पीतल के कमंडल जैसी कोई चीज बर्थ पर रख दी. मुझे बड़ा गुस्सा आया.

मैंने उसे उठाकर नीचे रख दिया.

गर्मियों के दिन थे. उस कमंडल पर वैसे ही पैर गया तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठंडा-ठंडा लगा. कुछ देर बाद यह हुआ कि उस सुखद अनुभव से गुज़रने के लिए सभी बारी-बारी से उस पर पैर रखने लगे.

"क्या है बे इसमें?" मैंने उस आदमी से पूछा.

"मां की अस्थियां हैं. हरिद्वार ले जा रहा हूं विसर्जित करने." उसने कहा.

मैंने पाया कि इस बात का पता चलने के बावजूद लोगों की सहसा उस पर से पैर हटाने की इच्छा नहीं हो रही थी.

उस सुबह मैंने देखा कि मुहल्ले के लोग संतुष्ट भाव से उस पत्थर पर से चले जा रहे हैं उसे पैरों-तले कुचलते. कुछ दिनों बाद एक रात को मैं भी उस पर से होकर आ गया.

एक बार जेन का भाई मिला. हम कोई आधे घंटे बातें करते रहे. लेकिन उसके जाने के बाद ख्याल आया कि हमने जेन की एक भी बात नहीं की. याद ही नहीं रहा.

इसी ने एक बार मुझे बताया था कि जेन जब छोटी थी, तब 'र' को 'ल' कहती थी.

हमारे शहर में एक नदी बहती है. कार्तिक में एक मेला लगता है, जब लोग दिए जलाकर रात को नदी में सिराते हैं.

यह एक दिया डगमगाता हुआ, जलता हुआ कुछ दूर चला गया और फिर डूबकर ओझल हो गया. जिस लहर को इसका पता होता है, वह भी नहीं रहती.

एक दिन एक भारी गाड़ी ने उस नाली पर से निकलने की कोशिश में उस संगमरमर के पत्थर के कई टुकड़े कर दिए. उनमें से कुछ तो उसी समय कीचड़ में दब गये और शेष टुकड़ों को बच्चे इधर-उधर ले गये.

बरसात के अंतिम दिनों में टाउन-प्लानिंग के उसी अधिकारी ने मुझे बताया कि सेमेटरीवाले रास्ते में नयी पाइप लाइन डालनी है. इसलिए उसे खोदा जाएगा.

"जेन का ताबूत मिलेगा तो हम उसे सेमेटरी में कहीं दफन करवा देंगे." उसने कहा.

पता नहीं क्यों मुझमें कोई उत्साह ही नहीं जागा. वैसे तब तक जेन को गुजरे एक अर्सा भी हो गया था.

दरअसल किसी के मरने का एक क्रम होता है जो उसकी मौत के बाद शुरू होता है और उस आदमी में एक दिन खत्म हो जाता है, जिसने उसे सबसे ज्यादा चाहा था.

वह गीता नामक आठ साल की लड़की जब मरी थी तब हमारा मुहल्ला तड़पकर रह गया था. लेकिन दो साल बाद हमने एक दिन देखा कि मुहल्ले के आवारा लड़कों को कहीं कचरे से उसकी रंगीन टोपी मिल गई है. उन लड़कों ने उस टोपी को एक ऊंची जगह लटका दिया और पत्थरों से उसके निशाने लगाने लगे.

एक निशाना गलत लगा.

दूसरा भी गलत लगा.

लेकिन तीसरा इतना सही लगा कि वह टोपी उड़ती हुई नीचे आ गिरी.

इस बात पर सब खुश होकर तालियां बजाने लगे.

बस, जहां तक गीता का सवाल है, उस दिन सब खत्म हो गया था.

एक दिन मेरे यहां कुछ मेहमान आये. मैं उन्हें लेकर घूमने निकला. सेमेटरीवाले रास्ते पर खुदाई चल रही थी.

जेन का ताबूत जहां गड़ा था, वह जगह शायद उसी दिन खोदी गयी थी. क्योंकि पास पड़े मिट्टी के ढेर पर वह ताबूत पड़ा था. उस पर काफी मिट्टी जमी थी और वह पुराना सड़ा-गला लावारिस-सा लग रहा था.

कुछ तमाशबीन वहां खड़े थे.

यह सच है कि इस दृश्य ने मुझमें एक तमाशबीन से ज्यादा उत्सुकता पैदा नहीं की.

"ताबूत किसका है?" मेरे एक मेहमान ने मजदूर से पूछा.

"पता नहीं बाबूजी, मुर्दे ने तो अपना नाम नहीं बताया." एक मजदूर ने उत्तर दिया और आसपास खड़े लोग हो-होकर हंसने लगे.

इस हल्के-फुल्के माहौल में इतने मेहमानों के सामने मुझे यह बताने में बड़ी झिझक हो रही थी कि यही मेरी जेन है. इसलिए मैं चुप ही रहा.

वापिस लौटते समय हम नदी के पुल से गुज़र रहे थे तो मैंने पानी से पूछा, 'क्यों, तुम्हें पिछले साल का वह दिया याद है क्या जो एक रात तुम्हारी सतह पर गुम हो गया था?'

पानी ने मेरी बात को कोई महत्व नहीं दिया और निर्विकार ढंग से बहता रहा.

'बदतमीज!' मैं एक बार जोर से चिल्लाया और फिर गर्दन घुमाकर देखने लगा कि कहीं मेहमानों ने सुन तो नहीं लिया. □

● ए–210 प्रगतिविहार एपार्टमेंट, लोधी रोड, नयी दिल्ली

आसपास बिखरी कहानियां

आदमी नहीं चढ़ता

● डॉ. चंद्रेश्वर कर्ण

दो बच्चे गुल्ली-डंडा खेल रहे थे. उसी समय एक हवाई जहाज आकाश में चक्कर लगाने लगता है. शायद पास के हवाई अड्डे पर उतरनेवाला है. दोनों बच्चों की आंखें ऊपर आसमान में उठ जाती हैं. सूरज की तेज रोशनी से बचने के लिए वे अपनी आंखों को नन्हीं हथेलियों की छाया देते हुए हवाई जहाज की ओर देखते रहते हैं. हवाई जहाज आंखों से ओझल हो जाता है. शायद हवाई अड्डे पर उतर गया है.

"दानते हो लल्लू, हवाइहाद पर आदमी नहीं चल्हता है." एक बच्चे ने दूसरे से कहा.

"फिल कौन चल्हता है, ले?" दूसरे बच्चे ने पूछा.

"नेता." पहले बच्चे ने बड़ी मासूमियत से कहा.

"अच्छा?" दूसरे बच्चे ने आश्चर्य से उसकी ओर देखा. फिर वे खेलने में व्यस्त हो गये. □

● संपादक : मूल्यांकन, रामनगर, हजारीबाग (बिहार)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

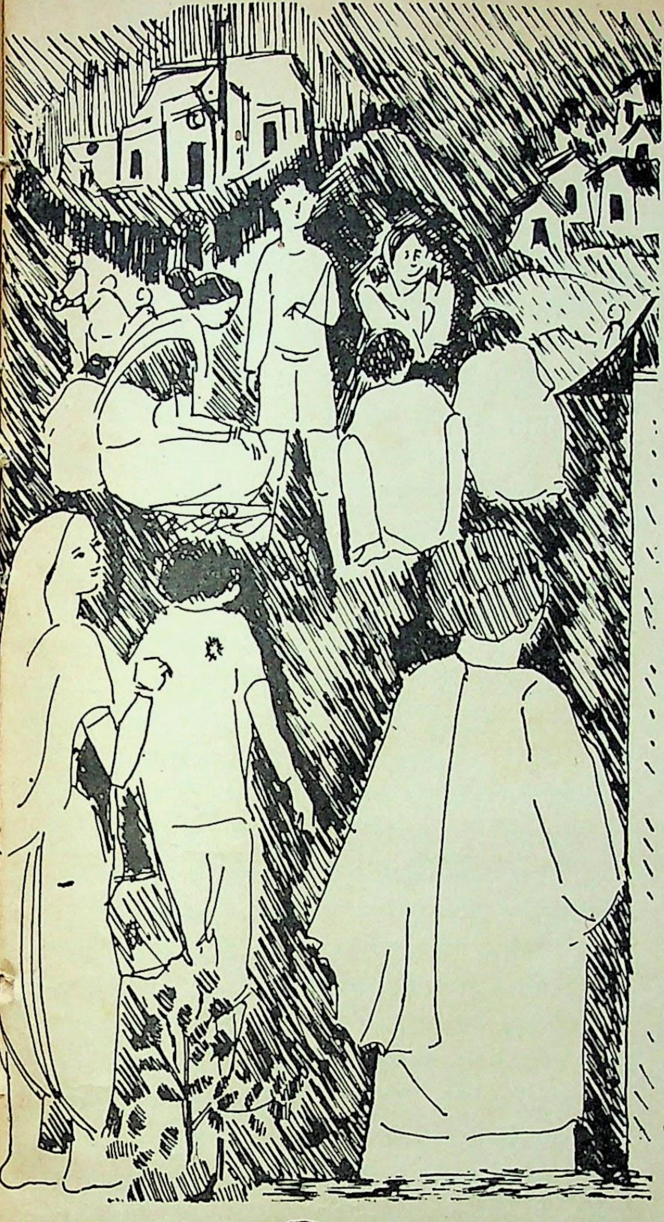

ग्लेशियर

विजय

ज़िंदगी किसे प्यारी नहीं होती . . . फिर भी मृत्यु भय ही नहीं आसन्न मृत्यु भी उनके कदमों को रोक नहीं पाती . . . कदम तेजी से बढ़ते . . . साये फुर्ती से सरकते . . . चार मरदाने पांवों की जगह जनाने पांव जुड़ जाते . . . ऐसा क्यों होता है वहां . . . ? जिंदगी को दांव पर लगाकर पेट की आग को शांत करने में जुटे लोगों का दर्द बयान करती रचना––

प्रूफ ऐस्टिब्लिशमेंट की पक्की परकोटेदार इमारत के अंदर-बाहर जगमगाती बत्तियां. आसपास कस्बाई शोर और मीलों तक इमारत के आगे फैला प्रूफ रेंज का जंगल, बगल में चलती कांटेदार फैन्सिंग . . . . . एक नयी दुनिया बस गई है.

गोपाल देखता है . . . . . और कर भी क्या सकता है. . . . आंखों के अपरचर्स बाईनाक्यूलर की भांति फोकस कर लेते हैं हर वस्तु को, कानों के छेदों पर सरसराता सन्नाटा अनायास ही धमाके से लुप्त हो जाता है. गोपाल स्कूल कंपाउंड में अपने क्वार्टर की लघुवाटिका में बैठा सुनता है . . . . गनफ़ायर और गोला फटने के उपरांत भागते हुए कदमों की पदचापें . . . सरकते हुए जिस्मों के साये उसके ऊपर से रेंगते हुए गुजरते हैं . . . . . ब्रास फ्यूज के टुकड़े और लोहे के फ्रेगमेंट्स से भरे हुए थैले संभाले भागते कदमों की धप-धप सहज ही उसके अंदर एक आतंक पैदा करती है.

अनायास ही एक तेज चीख मरघट का सृजन करती उभरती है . . . . एक जिस्म चीथड़ों में बदल जाता है. ब्रास के टुकड़ों की भूख दहशत में बदल जाती है . . . . फिर प्रूफ ऐस्टिब्लिशमेंट की जीप, पुलिस की गाड़ी केसला थाने से और अस्पताल की एंबुलैंस भागती जाती हैं.

गोपाल के बाइनाक्यूलर्स का फोकस अंतर्मुखी हो जाता है. क्यों बनते हैं ये तोप और गोले . . . . ? युद्ध क्यों होता है? आदमी को क्या सुख मिलता है एक-दूसरे को मिटाकर . . . . ? गोपाल यकायक टैंस हो उठता है . . . . उसे लगता है कि इन सारे सवालों से उसका कोई संबंध नहीं है. . . . उसके मन के अंदर अबूझ समीकरण की भांति सुलझती और उलझती मतसी को लेकर इस प्रूफरेंज का कोई ताल्लुक ही नहीं था. . . आसपास उगे वनस्पति की महुआगंध बिना रोक-टोक उसके पास सदैव आती रही थी. तोपों से सनसनाते गोले और विस्फोट कहीं भी तो रुकावट पैदा नहीं करते थे. रुकावट थी तो उसके अंदर थी. . . . मतसी को लेकर वह यहां टिक नहीं सकता था. शायद खून-खच्चर हो जाता या भागना पड़ता. पर भागकर जाता कहां? मां के कड़े और चेन बेच शिक्षा अधिकारी की मुट्ठी से बड़ी मुश्किल से निकला था एपाइंटमेंट लैटर . . . मिडिल स्कूल की मास्टरी. मतसी को लेकर भागता तो जाता कहां? . . . . जाता तो खाता क्या? इसीलिए प्रेम को ढीला छोड़ दिया था. आंखें दूर तक मतसी का पीछा करतीं पर स्वयं गोपाल स्कूल कंपाउंड में ही खड़ा रहता. अंदर ही अंदर प्यार को अहसासता, तड़प झेलता. उसका मन मतसी के साये से चिपका रहता. मतसी की भरी देह पर तहमद-सी कसी किनारेदार धोती और सीने पर कंचुकी की भांति उसी धोती का पल्लू पुनः उतर आया था, पुनः गौड कन्या लगने लगी है. . . . . त्रिस्तानी-सी तोलू को गोद में लिए सुमेर के साथ मायके आयी थी. गोपाल को लगा कि बाहर एकदम उमस फैल गई है. अंदर मूढ़े पर धम्म से बैठकर छत की कड़ियों में खो गया. क्या मतसी से उसने प्यार किया है? किया भी, तो अब उसका वह संबंध कहां रहा? क्या मानसिक रूप से वह मतसी से दूर नहीं हो सकता?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या उसे भूल नहीं सकता ? मतसी ने उसे रोका कब था?

संभावनाओं और आशंकाओं में वह डूबा रहेगा जब तक मतसी शाम के अंधेरे में झोला लटकाए सतर्क, सबसे बचती निकलती न दिखाई दे जायेगी. पर कब तक . . . . ? कब तक जाती और लौटती रहेगी मतसी? किसी दिन धातु का मोह उसे भी चीरकर रूई की भांति बिखरा देगा. जाने कितनी कलाइयां अपनी कांच की चूड़ियों का मोह तोड़ इसी रास्ते पर लग गयी हैं. अनायास ही लोहे का गुब्बारा सिंहनाद करता फट पड़ा . . . .

माईक से फिर ऐनाउंसमेंट होता है. आबजरवेशन पोस्ट से वायरलैस बात करता है. पीतल के लालच में जान जोखिम में न डालने की प्रार्थना गूंजती है जो अंत में धमकी में बदल जाती है. पर साये और सतर्क हो जाते हैं. जिस्म तनों से सट जाते हैं. 18 किलोमीटर लंबा-चौड़ा रेंज का जंगल गूंगे की तरह सुनता है और आसमान अंधे की तरह ताकता है. पेड़ के तनों से चिपके साये अपना सारा ध्यान आंखों में उतार लेते हैं, अभी गोला ऊपर फटेगा. शायद सिर्फ फ्यूज टेस्टिंग हो. गोला नहीं फटेगा. . .कभी विस्फोट, कभी धप्प की आवाज होती है, चील की तरह साये बाहर झपटते हैं. अनायास ही गोले को खींचते ही फ्यूज आर्म हो जाता है, धड़ाम के स्वर के साथ चंद जिस्म लोथड़ों के रूप में ऊपर उड़ने हैं.

औरतें बाहर आ खड़ी होती हैं. लौटे हुए लोग अपनी-अपनी औरतों के साथ अंदर चले जाते हैं. बाहर खड़ी रह जाती हैं वे जिनका पति, जिनका बेटा पीतल के टुकड़ों के चक्रवात में स्वयं छीछड़ों में बदल जंगल में पड़े रह गए थे.

फायरिंग बंद हो जाती है, सिक्योरिटी की जीप भागती है. . .फूल खनखना उठते हैं. . .पान की दूकान पर खड़ा कोई पूछ उठता है—क्या हुआ? . . .हुआ क्या? स्साले पीतल के लालच में जान देने जाते हैं जंगल में.

सुबह कसबे का एक मात्र अखबार जलजला सुर्खियों में खबर छापता है. रेंज से बोटियां और गोश्त बटोरकर ऐंबुलेंस और जीप वापस लौटती है. गांव में उतरती है पुलिस. भोंपू लगाकर सिपाही आवाज लगाता है. लोग घरों से बाहर निकल पुलिस की जीप के चारों ओर खड़े हो जाते हैं. सब कुछ जानते हुए भी जुबान पर ताले लगे रहते हैं. सिसकियों के बोझ से हिलते झोंपड़े भी गूंगे हो जाते हैं.

आधी रात में एक टैंपू हार्न देता है. टार्च जलाकर कोई तराजू से धातु के टुकड़ों को तोलता है . . .बस आज इतना ही? उतरे हुए चेहरे फुसफुसाते हैं. . . आज कालू और सालिग. . . .

गोला-गट्टा बीनने में. . . ? तुम साले. . .अरे अब तक तो तुम्हें माहिर हो जाना चाहिए था. पर तुम गंवार के गंवार रहे. . .चालीस रुपये का पीतल आठ दस रुपये में बिक जाता है. . . ड्राइवर सिगरेट सुलगाते हुए खीझता है. बहन. . बेकार पेट्रोल फुकवाया. . अठन्नी भी नहीं बचेगी.

नेपाम गोलों का प्रूफ यहां नहीं होता है, गोपाल जानता

रवींद्रनाथ टैगोर : बनने चले थे व्यवसायी बन गये कवि

कविगुरु रवींद्रनाथ टैगोर और व्यापार! यह बात सोचना ही आश्चर्यजनक लगता है पर यह भी एक दिलचस्प तथ्य है कि कविगुरु ने कभी व्यापार के क्षेत्र में भी जोर-आजमाइश की थी. सत्रहवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में उनके परदादा कलकत्ता में आ जमे थे. उस समय कलकत्ता नगरी की स्थापना हो रही थी. इस नगरी में आते ही उनके परदादा पंचानन महोदय ने व्यवसाय के क्षेत्र को अपनाना ठीक समझा था. वे विदेशी जहाजों को जरूरत के सब सामान सप्लाई करते थे. पर बाद में उनके पोते गोविंदराम ने इस व्यवसाय को न अपनाकर ठेकेदारी का काम करना उचित समझा था. फोर्ट विलियम दुर्ग के निर्माण का कांट्रेक्ट लेकर इन्होंने काफी पैसा कमाया था. इनके भाई नीलमणि और इनके पुत्र राममणि ने काफी बड़ा व्यवसाय जमा लिया था.

राममणि के पुत्र द्वारकानाथ ठाकुर रवींद्रनाथ टैगोर के पितामह थे. द्वारकानाथ ठाकुर पहले कंपनी के दीवान थे, पर बाद में वे भी व्यवसाय के क्षेत्र में उतर गये थे. वे पहले ऐसे भारतीय थे जिन्होंने व्यवसाय में पार्टनरशिप को बढ़ावा दिया था. बाद में उनकी देखा-देखी अन्य व्यवसायियों ने भी पार्टनरशिप व्यवसाय में दिलचस्पी लेना शुरू कर दिया था. उस समय पार्टनरशिप व्यवसाय का कानून प्रारंभ नहीं हुआ था. फलस्वरूप द्वारकानाथ ठाकुर की मृत्यु के बाद 1846 तक पार्टनरशिप व्यवसाय बुरी तरह असफल हो गया था. इस बात से ही सबक लेकर कविगुरु के पिताजी देवेंद्र ठाकुर ने व्यवसाय के क्षेत्र में न उतरकर अपनी जमीन-जायदाद में दिलचस्पी लेना शुरू कर दिया था. लेकिन इसके बावजूद कुछ दिनों के लिए कविगुरु व्यवसाय के

है किंतु मतसी जब जंगल की रेंज में होती वह उस कसैले विषाक्त धुएं को महसूस करता. . . अंदर ग्लेशियर की भांति पिघलने लगता. लेजर साइट की भांति उसकी आंखें एक ही रास्ते पर जम जातीं. काश मतसी रुक जाये. . .

लेकिन मौत कदमों को रोक नहीं पाती है. कदम तेजी से बढ़ते. . . साये फुर्ती से सरकते. . .चार मरदाने पांवों की जगह जनाने पांव जुड़ जाते. . . ऐसा क्यों होता है? यह जरूरत है या विदेह होने की चेष्टा. . . ? पिछले बीस-पच्चीस वर्ष का इतिहास गोपाल की आंखों के सामने बिछ जाता है. आसपास की पथरीली और काली मिट्टी कभी समतल और कभी नीचे गहरी वादी में उतर जाती है. चारों तरफ बांस, महुआ, पीपल के वृक्ष घुमड़ पड़ते हैं. समतल भूमि पर बड़े किसान, छोटे किसानों के खेत निगलते गए. . .पाकिस्तान से आये पंजाबियों ने खेतों को कारखानों में बदल दिया. . धड़धड़ाता ट्रैक्टर चलता. . .फसल पकती...थ्रेसर की आवाज गूंजती. . .ट्रकों पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षेत्र में उतरे थे और उनमें यह रुचि जाग्रत की थी उनके भाई के दो लड़कों बालेंद्रनाथ और सुरेंद्रनाथ ने.

यह भी एक दिलचस्प तथ्य है कि इन दोनों ही भाइयों का बंगला साहित्य में भी काफी दखल था. फिर भी इन दोनों ने मिलकर 'ठाकुर एंड कंपनी' नाम की दुकान खोली थी, जो चावल, गेहूं और जूट आदि का थोक क्रय-विक्रय करती थी. बाद में एक अंग्रेज कंपनी के साथ मिलकर गन्ने के रस पेरने की एक मिल और गुड़ बनाने का काम भी इन्होंने शुरू किया था. इस सारे व्यवसाय में कविगुरु ने सिर्फ परामर्शदाता के रूप में ही हिस्सा लिया था. बाद में जब सुरेंद्रनाथ ने हिंदुस्तान इंश्योरेंस कंपनी के साथ मिलकर अपना कार्य कलकत्ता में अलग से शुरू कर दिया था, तो कविगुरु रवींद्रनाथ पूरी तरह से अपने दूसरे भतीजे बालेंद्रनाथ के साथ मिलकर व्यवसाय में कूद पड़े थे. लेकिन इन दोनों ही व्यापार अनभिज्ञ मालिकों को ठगकर उनका मैनेजर अधिकांश पैसा लेकर चंपत हो गया. इस गम में बालेंद्रनाथ बीमार पड़ गये और 1891 में इनकी मृत्यु हो गयी.

बाद में कविगुरु ने व्यवसाय को बचाने की भरसक कोशिश की पर वे इस कार्य में पूर्णतया असफल सिद्ध हुए. थक-हारकर योगेश्वर नाम के अपने एक स्वामी-भक्त नौकर को अपना सारा व्यवसाय सौंपकर वे साहित्य के साथ जुड़ गये थे. योगेश्वर ने अपने परिश्रम के सहारे बाद में इस दम तोड़ते व्यवसाय को पुनः खड़ा कर दिया था. लेकिन कविगुरु ने फिर कभी व्यवसाय की ओर अपना मन नहीं मोड़ा. शायद व्यवसाय के पिछले कटु अनुभवों ने उन्हें इसकी इजाजत नहीं दी थी. पर इसमें कोई दो राय नहीं हो सकती कि व्यवसाय में भयंकर हानि के बावजूद कविगुरु ने अपने साहित्य के द्वारा असंख्य लोगों को लाभ प्रदान किया था. □

● प्रस्तुति : असीम चक्रवती

बोरे लादे जाते... छोटा किसान धीरे-धीरे मजदूर बन गया, नौकर बन गया. ..उनके झोंपड़े सिमटने लगे. ..अंदर ही अंदर एक हूक पिघलती महसूस करते... बड़े लंबे फार्मों में अपने छोटे-छोटे खेतों के निशानों को सहलाते, रात महुआ उबालते... अंतड़ियां चरचरातीं. तभी प्रूफ रेंज की इमारत बननी शुरू हुई... नौकरी से वहां की मजदूरी बेहतर लगी.. .फिर वह काम भी पूरा हो गया...निकल आया नया जरिया...जंगल की रेंज से धातु के टुकड़े बीनने का. रोटी के साथ गुलाबी... सौंफी. ..या महुआ का प्रबंध भी हो जाता. रात के सन्नाटे में तराजू लिए टेंपू आने लगा धातु खरीदने...टार्च की रोशनी में ढाई किलो धातु दो किलो में आधे दाम पर ले जाता.

शादी के पूरे दो साल बाद मतसी लौटी थी मायके. बहुत दूर जबलपुर में थी उन दिनों. साथ में एक वर्ष का तोलू था. पैंट पर बिना मोजे का बूट पहने सुमेर शर्माता हुआ चल रहा था. मतसी के विवाह के दिन और रात वह बंजर टीले पर बैठा रहता था. अपनी नपुंसकता और रोटी के भय की एवज कंकड़ उठा टीले से नीचे फेंकता रहा था. मतसी आयी तो स्तंभित रह गया. सुप्त तार फिर झनझना उठे.

मतसी के साथ सुमेर को सह नहीं पा रहे थे सपने. किंतु उसने मतसी के जीवन में सूनापन कभी नहीं चाहा. तीन दिन की जगह पूरे साल में सुमेर गांव नहीं छोड़ सका. असलम और घौंघू के साथ देशी शराब का जो चस्का लगा तो पांव पीतल के टुकड़े और पैराशूट बीनने के लिए दौड़ने लगे. सुमेर को मतसी की सिसकियां शराब के नशे में सुनाई ही नहीं पड़तीं...

पर उस दिन उतरते अंधियारे में विस्फोट के साथ उभरा शोर मरा नहीं. वह शोर गांव में उतर आया. गोपाल स्वयं को स्कूल तक रोक नहीं सका. गांव में पहुंच गया. मतसी उसे पकड़ झूल उठी थी. उसे बचा लो मास्टर! उसे बचा लो.

पर गोपाल किस को बचाता? धरती से समेटे हुए लोथड़ों को सीकर आदमी नहीं बनाया जा सकता . . . थानेदार ने वजनी गाली दी तो गोपाल कांप उठा. . फिर स्थिर हो गया.

सुबह मतसी के घर आया. असलम उसे देख मुस्कराया था, पर आज गोपाल को किसी का भय नहीं था. किंतु मतसी ने लौटा दिया—तुमसे कुछ नहीं ले सकती मास्टर. देनेवाला तो चला गया तो तुमसे क्यों मांगूं. जब वक्त था तो कलाई भी नहीं थाम सके. अब तुम जाओ. . .

गोपाल लौट आया था. मतसी ने गलत नहीं कहा था. आज भी मतसी को अपना लेने वाली सामर्थ्य उसमें कहां है? सपाट क्षितिज पर एक चमक उभरकर दब जाती है. गनफाइरिंग की सनसनाहटें दिशाओं को कंपकंपाहट थमा देती हैं. . .

गोपाल जंगल की ओर ताकता है. . मतसी अभी तक नहीं लौटी है. कई साये दूर से गुजरते हैं. गोपाल मतसी को उनमें तलाशता है. शायद थोड़ी देर और लगेगी उसे लौटने में. कहीं. . .वह . . फंस न जाए? पर वह कर क्या सकता है. हर आशा के साथ उसका ग्लेशियर पिघलता है और आशंका के साथ जम जाता है.

दूर से आती अकेली मतसी को देखता है. . .मतसी जानती है कि गोपाल उसे देख रहा होगा. वह एक क्षण के लिए रुक जाती है. दोनों के मध्य फैली दूरी में दोनों ओर से निःश्वासें प्रवाहित होती हैं. मतसी को लगता है—आज गोपाल उसे पुकार उठेगा और सारी वर्जनायें तोड़ वह उसकी बाहों में चली जायेगी. गोपाल को लगता है कि मतसी स्वयं दौड़ पड़ेगी, फिर वह उसे लेकर कहीं दूर चला जायेगा. लेकिन दोनों ही बातें नहीं होती हैं. आधार बने रहते हैं, आशायें जनमती रहती हैं और आशंकायें गहरी होती रहती हैं. गोपाल का ग्लेशियर पिघलता है, फिर जमता है, फिर पिघलता है. . . अंतहीन. . . क्रम. . . पर कब तक! □

● 76 पटौदी हाउस, कैनिंग रोड, नयी दिल्ली-110001

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नेमिजी का हमला किस पर

मुद्राराक्षस

जहां नेमिजी एक प्रतिष्ठत नाट्यालोचक के रूप में चर्चित हैं वहीं मुद्राजी अपने नाटकों और नाट्य-प्रस्तुतियों के लिए चर्चा में रहे हैं. पिछले दिनों नाटक की दुनिया को लेकर इन दो दिग्गजों के कुछ वैचारिक मतभेद सामने आये. . . प्रस्तुत है मुद्राजी का विचारोत्तेजक आलेख. . .

ऐसा लगता है, पिछले दिनों नेमिचंद्र जैन ने कुछ यह ठान लिया है कि वे मुझे ध्वस्त कर देंगे.

"मुद्राराक्षस की मुद्राएं" (शीषक ही इरादा जाहिर नहीं करता?) लिखने के बाद अगले दो लेखों में भी उन्होंने उन्हीं बातों पर क्षोभ जाहिर किया, जिनका मेरी भेंटवार्त्ता में उल्लेख था. मैं समझ रहा था कि मेरी 'मुद्राएं' ध्वस्त करने के बाद मेरे अत्यंत विनम्र उत्तर से वे कुछ शांत होंगे, पर उसका अर्थ उन्होंने कुछ दूसरा ही लगाया. और उसी क्रम में उन्होंने जबलपुर की 'इप्टा' के प्रस्ताव पर भी क्षोभ व्यक्त कर दिया. मुझे ध्वस्त करके अगर रंगमंच का कोई लाभ होता है तो नेमीजी अवश्य करें, पर उन मूल्यों को ध्वस्त करने पर क्यों आमादा हो गये, यह मैं नहीं समझ पा रहा हूं, जो रचना जगत में वैसे ही विरल हैं.

मध्यप्रदेश की 'इप्टा' ने इस बात पर क्षोभ व्यक्त किया था कि शहरी रंगमंच कुछ सत्ताजीवी तत्वों के कारण और घोर कलावादी और जनसंघर्ष के विरुद्ध एक तैयारी बनता जा रहा है. यह बात सच है. पिछले दिनों मौलिक आलेखों के प्रति आग्रह की कमी, लोकशिल्प में रूपांतरों की भरमार और भ्रष्टाचार पर सरलीकृत फिकरेबाजी वाले रंगमंच की बाढ़ में यह गुंजाइश कम से कम होती गयी है कि रंगमंच समय के प्रति जिम्मेदार हो, पर नेमिजी इस जिम्मेवारी को को आत्महत्या मानते हैं. यहां इसके अलावा अब और कुछ कहने को क्या रह जाता है कि वे अब जिस रंगकर्म की हिमायत करने लगे हैं, वह रंगमंच को ही नहीं, समाजबोध को भी खाई में धकेलने का प्रयत्न है. . .

वे उसी रंगकर्म की हिमायत करने लगे हैं, जो हर हाल में नवधनाढ्यों का शौक बन रहा है. इसका जीता-जागता उदाहरण ब्रेख्त का 'थ्री पेनी आपेरा' है, जिसे कानपुर में एम.के. रैना ने डिस्को डांस में बदल दिया और 'कबिरा खड़ा बाजार में' को एक 'जांघिया बनियान' बनाने वाली कंपनी के विज्ञापन के लिए इस्तेमाल कर लिया. रैना 'कबिरा' को अंडरवियर बनाने वाले के लिए इस्तेमाल करें, यह नेमिजी को सही लगा?

अपने एक लेख में नेमिचंद जैन ने मेरी एक भेंट वार्त्ता में आयी इस बात पर आपत्ति की कि रंगकर्मियों द्वारा 'प्रोफेशनल' शब्द के व्यवहार को मैं गलत मानता हूं. अच्छा रंगकर्म प्रोफेशनल काम है, इसके पक्ष में अपनी बात मजबूत करने के लिए उसी पत्र के उसी कालम में नेमिचंद जैन ने फिर लिखा—हिंदी रंगमंच का स्थायी विकास रंगकौशल में प्रोफेशनल निपुणता हासिल करके होगा. लगता है, हिंदी समीक्षा ज्यादा ही दरिद्र होती जा रही है. नाटक की दुनिया में खासतौर से 'रंगकौशल' क्या शब्द हुआ? इस शब्द का लाक्षणिक (?) या अभिधात्मक कोई भी अर्थ क्या नेमिजी नहीं जानते?

जिम्मेदार समीक्षक या तो 'रंग रचना' कहेगा या 'रंग प्रयोग'. अगर मुराद 'थियेटर एक्सपर्टीज' से ही है तो समीक्षकों को जानना चाहिए, यह फुटपाथी भाषा-प्रयोग है, जिम्मेदार विवेक की अभिव्यक्ति नहीं. जो भी हो नेमिजी के अनुसार 'इसके विकास के लिए' प्रोफेशनल (अंगरेजी के प्रयोग से हिंदी समीक्षा को बचाने वाला सावधान समीक्षक इस शब्द का अनुवाद 'पेशेवर' क्यों नहीं लिखता?)—प्रोफेशनल निपुणता जरूरी है. बड़ी रंग उपलब्धियां अगर इतने भर से ही होती हैं तो नेमिजी को नाट्य चिंतन छोड़ देना चाहिए, जिसे वे बहुत बड़ी बात समझते हैं. वह सिर्फ इतनी ही बनती है कि नाट्यप्रस्तुति में कुशलता के लिए पेशेवर योग्यता होनी चाहिए. कोई दूसरा अर्थ निकलता हो तो नेमिजी जरूर स्पष्ट करें.

आखिर यह बात हुई क्या? इस वक्तव्य से वे क्या नतीजा निकालते हैं? क्या यह कि आज का अधिकांश रंगकर्म गहरा रचनात्मक रंगानुभव है? नहीं, यह अर्थ निकालना भाषा के साथ बलात्कार होगा. नेमिजी सिर्फ इस बात की सिफारिश कर रहे हैं कि पेशेवर रंगमंच ने जो महारत हासिल कर ली है, उसका थोड़ा-सा चतुराईभरा इस्तेमाल रंगकर्मी करेंगे तो रंगमंच का इतिहास बनेगा.

यह भारी मुगालता है और इस वक्तव्य से हर नये, संभावनाशील रंगकर्मी को आशीर्वाद तो दिया जा सकता है, पर उसे बुरी तरह गुमराह करके.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से उन्होंने गुमराह करने में कसर हीं छोड़ी, यह भी सही है. क्या नेमिजी कभी सोचा नहीं या सोचना चाहते हैं कि पेशेवर शब्द किस कदर चनात्मकता विरोधी होता है? ामिनी कृष्णमूर्त्ति या बिरजू महाराज शेवर नर्त्तक नहीं हैं. पेशेवर नाचने ाले जी.बी. रोड या भिंडी बाजार में ोते हैं. यामिनी या बिरजू रचनात्मक लाकार हैं, पेशेवर नहीं. मैंने 'सारिका' छपी अपनी भेंटवार्त्ता में बात हिंदी ाटककार के रूप में नहीं, रंगकर्मी के प में ही की थी. नाटक तो मैंने दो-ार ही लिखे हैं, लेकिन निर्देशन तीस से पर नाटकों का कर चुका हूं. निर्देशक े तौर पर कही बातों को लेखक का आर्तनाद' बनाकर नेमिजी ने सिर्फ सी बात का सबूत देना चाहा कि जो ुछ उन्होंने नहीं देखा, उसका अस्तित्व हीं है. मैंने बात रंगकर्मी के तौर पर ही थी और रंगकर्मी हूं, इसके लिए ाट्यालोचकों की सनद जरूरी नहीं ानता हूं. मेरी एक बात से रंगकर्मी हुत नाराज हैं और बिना अपने ामन में झांके नाराज हैं कि मैंने उन्हें वार्त्ता में 'अनपढ़' कहा है. नेमिजी ी इससे नाराज हुए.

बुद्धिजीवियों में पढ़ा-लिखा न तो ाक्षर को कहते हैं, न अपने विषय की सीमित जानकारी रखनेवाले को. वे दोनों अनपढ़ ही कहे जाते हैं. पढ़े-लिखे का अर्थ होता है, समाज और संस्कृति के दर्शन और विज्ञान की समग्र जानकारी पाना. हर अच्छा रचनाकार इतिहास, दर्शन, साहित्य, समाजशास्त्र और विज्ञान का सही जानकार होता है. नेमिजी चाहे ब्रेख्त को लें या इलियट को, सार्त्र को देख लें या खुद अपने प्रिय ेक्सपीयर को, भारतेंदु को ले लें या रवींद्रनाथ टैगोर को, मुक्तिबोध को देखें या निराला को, प्रसाद को देख लें या गेटे को—हर क्लासिक या अग्रदूत बनी प्रतिभा विश्वज्ञान और अपनी संस्कृति का ऐतिहासिक ज्ञान अच्छी तरह जरूर प्राप्त करती है. नेमिजी ने शायद आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा किया अनुवाद 'विश्वप्रपंच' देखा होगा. उसकी लगभग डेढ़ सौ पृष्ठों की भूमिका में शुक्ल जैसे साहित्य सीमित लगने वाले व्यक्ति की भारतीय और पाश्चात्य विज्ञान संबंधी जानकारी की गहराई देख लें. 'ऐक्टर प्रेपेयर्स' या बत्तीस हिंदी और अन्य भाषाओं के नाटकों के बारे में जानकारी लेकर चलने वाले बौद्धिक दरिद्रों में नेमिजी जो 'मोती' देख रहे हैं, वे चकित करने वाले हैं.

मैंने एक बात कही थी कि नेमिजी जिन तमाम नये निर्देशकों को अपने आशीर्वाद द्वारा फुलाकर फोड़ने की सीमा तक पहुंचाने में लगे हैं, उनका काम अल्काजी की परंपरा से आगे नहीं बढ़ा है. इस पर नेमिजी ने आपत्ति (आपत्ति क्या विपत्ति कहिए) करते हुए अमाल, रैना, रंजीत आदि बहुत से लोगों के नाम गिनाये. नेमिजी ने अल्काजी से आगे निगल जाने वाले अपने उम्मीदवारों के रंगकर्म की उपलब्धि या विशेषता जिन शब्दों में बयान की है, वह देखने लायक हैं. इनमें से प्रत्येक के काम में ऐसी अलग सूझबूझ, ताजगी और चमक है, जो अल्काजी के काम को आगे ले जाती है.....

सूझ-बूझ, ताजगी और चमक— इन तीनों शब्दों पर, सैद्धांतिक व्याख्या के इन तीन अभूतपूर्व अर्थगहन स्तंभों पर समूचे रंगकर्म के इतिहास का भविष्य नेमिजी ने लिखा है. और सिद्धांतों के ये मोती वे तब लाये हैं, जब प्लेटो से लेकर ब्रेख्त तक और भरत और अभिनव गुप्त से लेकर राकेश तक की एक विराट सैद्धांतिक रंगचिंतन की परंपरा मौजूद है. नेमिजी को एतराज है कि मैं रंगकर्म से जुड़े आदमी को अनपढ़ क्यों कहता हूं? उत्तर अब भी जरूरी है?

इधर लगता है, नेमिजी किसी खास किस्म की जल्दबाजी में हैं या फिर उन्होंने सोचना बंद कर दिया है. मध्यप्रदेश 'जननाट्य संघ' के जबलपुर अधिवेशन में विचार व्यक्त किया गया —प्रोफेशनल थियेटर की अवधारणा के नाम पर हिंदी रंगमंच को लकदक कलावादी रूपवादी दिशा में मोड़ा जा रहा है—इत्यादि.

नेमिजी ने इस विचार को आत्मघाती प्रवृत्ति मानते हुए भोपाल

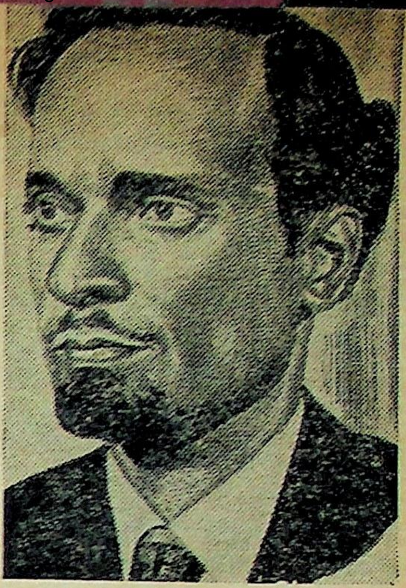

● मुद्राराक्षस : मोती चकित करते हैं

रंगमंडल से लेकर दिल्ली की प्रस्तुतियों तक के पक्ष में विचित्र विरोधाभास भरी बातें कह डालीं. उनका बड़ा तर्क यही है कि जनांदोलन की पक्षधरता की कीमत पर कला की बलि नहीं दी जा सकती और उनका खयाल है कि 'इप्टा' सस्ती प्रस्तुति की पर्याय हो चुकी है. यह सही है कि जनांदोलन की पक्षधरता के लिए कला की बलि नहीं दी जा सकती, पर कला के लिए जनांदोलन की पक्षधरता की बलि बर्दाश्त नहीं होगी. यह विचित्र ही बात है कि नेमिजी ने यह बात उठाई और यह जानते हुए उठाई कि ब्रेख्त की सही प्रस्तुतियों में न कला की क्षति होती है, न जनांदोलन के पक्ष की और वहां कला... वृहत्तर कला सिर्फ इसलिए बनती है कि उसमें जनांदोलन का पक्ष है.

नेमिजी याद करें, उन्होंने 'रसगंधर्व', 'होई है सोई'...'शुतुर्मुर्ग' आदि नाटकों की कुछ प्रस्तुतियों की बहुत प्रशंसा की है (गोकि सिर्फ सूझबूझ, चमक और ताजगी भर देखते हुए). वे कृपया बताएं कि इन प्रस्तुतियों में कथ्य के स्तर पर आतमजीत सिंह के नुक्कड़ नाटक 'मदारी' से गहरी या विशेष क्या बात थी? जब कथ्य उन 'चमक, ताजगी और सूझबूझवाली' प्रस्तुतियों का भी उतना ही था, जितना 'आत्मघाती इप्टा प्रस्तुतियों' का तो फिर बत्तियां जलाने-बुझाने या सम्मोहन के चमत्कार दिखाने को क्या कहेंगे?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जबलपुर में यह सही बात उठी है कि शिल्प चमत्कार हावी करके नाटक को नपुंसक करने की एक साजिश हो रही है. आखिर 'फोर्ड' साहब को क्या शौक चर्राया है कि वे भारत में लोक-शिल्प में की जाने वाली एक-एक प्रस्तुति के लिए सवा डेढ़-लाख रुपये तक दे रहे हैं? हबीब तनवीर तो 'मिट्टी की गाड़ी' में नेमिजी के अनुसार संस्कृत नाटकों के संस्कार नहीं समझता, पर अमरीका के 'फोर्ड' साहब भारतीय संस्कृति के नाम पर कितनी और क्यों भारी रकम लगा रहे हैं—इस सवाल को नेमिजी यों ही क्यों उड़ा देना चाहते हैं?

यह सहसा नहीं हुआ है, न अनजाने हुआ है कि रंगकर्मी घोषणा करने लगे हैं— हमें नाटक नहीं चाहिए. नाटक सी. आई. ए. नहीं चाहता, इसलिए उन्हें भी नहीं चाहिए, क्योंकि नाटक लड़ाई का एक शक्तिशाली माध्यम बनता जा रहा था. सी. आई. ए. जानता है कि अगर इस देश में नाट्य लेखन सशक्त हुआ तो कविता, लेख और कथा-साहित्य की तरह वह भी लड़ाकू हो सकता है. तभी नाटक को दिल्ली के कनाट प्लेस या हैंडीक्राफ्ट एंपोरियम में बदलने की साजिश शुरू हुई है.

ताज्जुब तो इस बात पर भी अब नहीं होता कि नेमिजी लोक कलाओं की प्रामाणिकता और उनके मूल चरित्र की रक्षा की जरूरत अब नहीं मानते. आखिर ऐसा क्यों? आज दिल्ली में प्रदर्शित अस्सी फीसदी लोक नाट्यपरक मंच प्रयोग अप्रामाणिक होते हैं. उनका संगीत लोक संगीत के नाम पर रेडियो का सुगम संगीत भर होता है. फिर भी वह नेमिजी को स्वीकार्य है, क्योंकि 'ताजगी और सूझबूझ' वाले निर्देशकों द्वारा वह पेश किया जाता है, जिनकी प्राथमिकता 'प्रोफेशनल' कामयाबी है—रचनात्मकता या कथ्य की चुनौती नहीं. मैं जानता हूं यहां लू शुन की कहानी की प्रस्तुति जैसी घटना का जिक्र करके यह कहने की कोशिश की जायेगी कि वह तो जनोन्मुखी काम था. वह है, पर बिरले है. यहां उत्तर प्रदेश के उस रंगकर्मी का नाम बताने से क्या फायदा जो पिछले तीस बरस से नियमित रूप से एक ही नाटक कर रहा है और उसके कारण दसियों बार जेल जा चुका है, 'एनिमी आफ द पीपुल' या 'इडिपस' मंचित करके नहीं. केरल की एक मंडली ने अपने नाटक 'मैं कम्युनिस्ट हो गया' की दो हजार पांच सौवीं प्रस्तुति करने के बाद नया नाटक 'ईश्वर दल बदल गया' शुरू किया है. □

लघुकथा

पितृभक्ति

□ श्रीनिवास वत्स

बूढ़े मोची चंदरू की छप्परनुमा झोंपड़ी गांव की बाहरी पश्चिमी गली में थी. डेढ एकड़ जमीन उसके पुरखों से चली आ रही थी, उसी में कभी-कभी घास उगा लेता तो कभी अन्न के दाने. एक बूढी भैंस पाली थी जिसे मरे तीसरा बरस लगा गया. यूं तो चंदरू के चार बटे हैं पर अब उसके नाम का एक भी नहीं. चारों ही पक्के लठैत हैं, मौका लगते ही चोरी भी कर लेते हैं, भूखों तो मरते ही हैं, जमीन भी गिरवी रख दी है.

गांव के बाहर सड़क बनी तो चंदरू की झोंपड़ी की कीमत बढ़ गयी. सामने दालान में उसने दो छप्पर और डाल लिये. एक को किराये पर दे दिया और दूसरे में सबसे छोटा पुत्र जूते गांठता है. शेष तीनों में बड़ा फूलू जमींदार के यहां बंधुवा मजदूर है. विचला लाला जगाधर मल के गोदाम में और छोटे से बड़ा बेकार था.

चंदरू के लिए तो चारों ही मर चुके थे, क्योंकि उसे याद नहीं उनमें से कभी किसी ने उसका कोई काम किया हो. सड़क के किनारे झोंपड़ी के बाहर बैठा चंदरू टुकुर-टुकुर देखता रहता. कभी-कभी बड़ी बहू दोपहर का खाना दे गयी तो शाम को छोटी और कभी दोनों नदारद.

एक दिन पोती को गोद में लिये चंदरू दुकान के बाहर बैठा था. लकड़ी गोदी से उतरकर इधर-उधर सड़क पर भाग जाती. सड़क पर आते-जाते वाहनों को देखकर चंदरू का मन घबराया. वह उठा और लड़की को पकड़ने दौड़ा ही था कि सामने से आते ट्रक से टकरा गया. लड़की तो बच गया पर वह गिर पड़ा. सिर में काफी चोट आयी थी. लगभग आधे घंटे तक अचेत होकर वह छटपटाता रहा.

सबसे छोटा लड़का तुरंत बाहर आया. ड्राइवर ने ट्रक रोक दिया था. लोग इकठ्ठे हो गये. कुछ देर बाद शेष तीनों भी वहां पहुंच गये पर तब तक चंदरू दम तोड़ चुका था. अब चारों पुत्रों ने ड्राइवर को पकड़ लिया और मारना शुरू कर दिया. बेचारे ड्राइवर ने हाथ जोड़े तथा स्वयं को निर्दोष सिद्ध करना चाहा, पर वे कुछ भी सुनने को तैयार न थे.

कुछ देर बाद सौदा तय हुआ बूढ़े की लाश की बोली लगने लगी. ड्राइवर ने कहा, मैं बारह सौ रुपये दे दूंगा. लड़कों ने चार हजार की मांग की.

उन चारों के भाषणों से पूर्ण पितृ-भक्ति झलक रही थी. लग रहा था, उन्हें पिता बहुत प्रिय था. कुछ लोगों ने बीच-बचाव कर सौदा और नम्र करना चाहा. ड्राइवर सोलह सौ तक पहुंच गया, लड़के अट्ठाइस सौ तक आ गये. वे इससे नीचे नहीं उतरना चाहते थे. बड़े लड़के को बिटिया की शादी करनी है, उससे छोटे की पत्नी बीमार है. उसे इलाज के लिए पैसे चाहिए. उससे छोटे को शराब के लिए तो उससे भी छोटे को अपनी दुकान के लिए.

अंत में दो हजार में बात मुक गयी. ट्रक ड्राइवर दो हजार रुपये देकर चला गया. वह प्रसन्न था पुलिस से पिंड छूट गया, नहीं तो इससे भी अधिक उन्हें देने पड़ते और पिटाई होती.

लड़के बूढे का दाह संस्कार कर आये, वे भी आज प्रसन्न थे, उन्हें सेती में ही पांच-पांच सौ रुपये मिल गये थे. बड़े लड़के ने कहा, "बापू को तो मरना ही था, अच्छा हुआ, बेचारा यहां जलालत भुगत रहा था."

शेष तीनों ने भी लंबी सांस लेकर उसकी बात का अनुमोदन कर रहे थे. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कैसी होती है सर्कस के कलाकारों की अंदरूनी जिंदगी?

श्रीनाथ

सर्कस...चमक–दमक और रोशनी से भरी दुनिया, करतबों और सांस-रोक स्तब्धताओं के करिश्मों में तैरते कलाकार. . .बिना हड्डियों के मानव-शरीर . . .दो-चार घंटे आश्चर्य-लोक की स्थगित वास्तविकताओं से लौटकर क्या कभी हम सोचते हैं कि कैसी है सर्कस के लोगों की. जिंदगी? हर क्षण दुर्घटनाओं के शिखर पर बैठे हुए ये असुरक्षित दुःस्साहसी, क्या हम और आप जैसे दुख-सुख, भय-भूख के मारे हुए लोग हैं? **संजीव** के नये उपन्यास **'सर्कस'** के ये प्रश्न उन हजारों-लाखों इंसानों के जेहन में उभरते-मिटते हैं, जब वे समाज के सुपरिचित मनोरंजन के माध्यम, सर्कस के साहसी कलाकारों द्वारा प्रदर्शित रोमांचक करिश्मों के आगे दम साधकर बैठने, भाव–विभोर होकर झूमने और उन्मत्त होकर तालियां पीटने के बाद तनावमुक्त और ताजादम होकर कुर्सियां छोड़ देते हैं और नालीदार चादरों से घेरकर बनायी गयी चहारदीवारी के समांतर चलते हुए अपनी दुनिया में लौट रहे होते हैं.

साहित्य को जनजीवन के बीच उतारने की निष्ठा और पाठक को अपने अनुभव का हिस्सेदार बनाने की सामर्थ्य से आवेशित युवा रचनाकार **संजीव** ने इन तमाम दमित-शमित [illegible]ों से जूझने, उनका वस्तुपरक विश्लेषण करने और मुक्ति की युक्ति खोजने के संघर्ष की समग्र उपलब्धि के स्तर में एक अप्रतिम उपन्यास **'सर्कस'** का सृजन किया है.

"चकती घूमती है. किस अतल लोक में दफन हो गये महाबली 'न्यू हरकुलिस'? कहां अस्त हो गया 'ग्लोरी' का गौरव? किस टेथिस सागर से उभर कर खड़ा हो गया 'कैलाश'. अजीब है श्रम और ग्लैमर की दुनिया का भूगोल? नियति की निर्मम नदी को चकमा देकर आगे सरकते चलो, बदहवास दौड़ पड़ो. देखो, धमनियों में खून का अंतिम ज्वार तुम्हें किस बुलंदी तक उछाल पाता है या दुस्साहसिकता के किस गड़च्च अंधेरे में फेंक आता है. . ."

उत्थान-पतन के सनातन चक्र को अपने गतिमान वैराट्य में समेटे, ग्लेडियेटर-युद्ध की दर्शक-दीर्घाओं के आधुनिक संस्करण और परउत्पीड़न सुख के निर्झर भारतीय सर्कस के इंद्रजाल को काटने की जिम्मेदारी उठायी है झरना नामक युवती ने, जो अपने पिता-'द हॉक' के जोकर, रामू दादा के साथ दस वर्ष की उम्र में ही जानवरों के रहने लायक तंबुओं को अपनी शरण-स्थली बनाने को विवश होती है. सर्कस-जगत की दारुण स्थितियों और अपनी प्रखर संवेदना के घात-प्रतिघात से क्षण-प्रतिक्षण चेतना संपन्न होती हुई झरना 'द हॉक' से 'होराइजन,' वहां से 'एवरेस्ट' और फिर 'जेनिथ थ्री रिंग सर्कस' तक का सफर तय करती है, सफर खत्म होने पर मरती है और हर नयी मंजिल पर पहुंचने से पहले व्यक्तित्व का नया चोला पहनती है. झरना से गीता. . .गीता से सुजाता. . .सीता. . .रेखा. . और फिर 'कामिनी कला भवन' की स्वामिनी.

● संजीव

सर्कस के मायावी जगत के नियामकों में प्रमुख है बिचौलिया नियोगी, जिसने अनुभवहीन लखियानी साहब के 'रेनबो' सर्कस को एक दलदली जमीन में ला डुबाया. लखियानी साहब. . .वफादार सेवक नियोगी को तीन लाख का सर्कस एक लाख में देकर मुक्त हुए. यह पैसा भी नहीं ही निकल पाया नियोगी के दलदलों से. नियोगी ने 'रेनबो' को 'एवरेस्ट' बनाया और पहले से मारकर रखे पैसों से बाहर के आर्टिस्टों को फोड़कर 'एवरेस्ट' को सजा दिया.

नियोगी जैसे मीर जाफरों की साजिश से पुराने सर्कस टूटते हैं और नये बनते हैं. बनते-टूटते ये सर्कस प्रकृति और नियति के आगे किस तरह पस्त हो उठते हैं, इसका सजीव चित्रण उपन्यास में वर्णित सर्कस-ओनर्स एसोसिएशन की बैठकों के माध्यम से हुआ है. ये बैठकें तूफान और आग से होनेवाली तबाही और बरबादी के खिलाफ एकजुट कार्रवाई शुरू करने के लिए आयोजित की जाती हैं, लेकिन बहस हर बार सरकारी सुविधाओं, रियायतों और पुरस्कारों के गिर्द चक्कर काटती रह जाती है. मीटिंगों में बाहरी दुश्मनों से लड़ने के लिए व्यूह बांधे जाते हैं, एक साथ मिलकर रहने और भाईचारा निभाने की कैसी-कैसी कसमें खायी जाती हैं, लेकिन कलाकारों और स्टाफ कर्मचारियों द्वारा की जा रही ऐसी कोशिश की सुगबुगाहट पाते ही सारे 'सहयोगी' अपने नाखून और पंजे तेज कर लेते हैं.

'प्लास्टिक गर्ल' बनते-बनते रह गयी सुजाता, कामिनी बनकर शीशमहल और ग्लोब के स्वप्न-लोक का अंग बनकर करतब दिखाती है, हजारों दर्शकों का अभिनंदन स्वीकार करती हुई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और फिर वापस मर्त्यलोक में पहुंच जाती है. आईने में अपनी अपरूप सुंदरता पर निहाल होते-होते अचानक ठिठक जाती है— "..... वह बैचेन दंश देने वाला सांप मर चुका लगता था. डरते-डरते उसे छुआ और वह भयंकर फुत्कार के साथ कान काटकर खड़ा हो गया. ..... क्या देखने आते हैं लोग? चौंधियाते, उत्तेजक विन्यास में उसकी यही गोलाइयां, यही खुली संगमरमरी जांघें, उद्दीप्त यौवन .... नहीं, वह जैसे झुठलाना चाहती है उस सच को. तो यह रहे तुम्हारे करतब? हुंह! कोई ताने कस रहा है उसके अंदर से. अगर इब्राहिम खान ने कुछ दिनों के लिए गांव नहीं भेज दिया होता तो क्या पागल नहीं हो जाती वह."

तनावों से पिसती-छीजती कामिनी 'जेनिथ' के साथ विदेश यात्रा पर निकलती है. सर्कस के बाहर एक अपरिचित दुनिया थी. भिन्न परिवेश, भिन्न भाषा, भिन्न लोग. बेचारी कामिनी! सर्कस के खेल में बंद वह जानती ही क्या थी? रशियन सर्कस की जिम्नास्ट अन्ना उसे बताती है कि उसने न केवल जिम्नास्टिक का विधिवत प्रशिक्षण लिया है, बल्कि अंतर्विश्वविद्यालयी खेल-कूद में भी कई पुरस्कार और मेडल जीते हैं. वहां सर्कस इंस्टीट्यूट भी हैं विश्व-विद्यालय स्तर के. जब अन्ना ने उससे उसके देश, परिवार और स्पोर्ट्स तथा गेम के कुछ लोगों के हालचाल पूछे,तेलंगाना इशू और वियतनाम के के बारे में उसका नजरिया जानना चाहा तो उसे लगा, वह जमीन में धंस जायेगी. तब इस निष्कर्ष पर पहुंचे बिना नहीं रह पाती, "यह रहा एक सामान्य नीम-हकीमी भारतीय सर्कस के प्रशिक्षण और एक सुगठित रूसी सर्कस के प्रशिक्षण का भेद."

. सर्कस की जड़ और एकरस दुनिया में जीती हुई निर्मम और अमानवीय स्थितियों की जकड़न से मुक्ति के लिए छटपटाती कामिनी का खाली समय उन स्थितियों के बीच अपनी चेतना को समष्टि का अंग बनाने की चेष्टा में गुजरता है. तब उसका मानसिक जुड़ाव अपने जैसे संघर्षरत कलाकारों से होता है. सर्कस-मालिक मिस्टर सैंड के साथ इस अपराजेय टकराहट की इति अनिरुद्ध सिंह को पागल करार दिये जाने के साथ होती है. फिर सैंड साहब भी 'जेनिथ थ्री रिंग सर्कस' की वैभवशाली और महत्वाकांक्षी योजना के भरभरा कर गिरने के साथ औंधे मुंह गिरते हैं और लेनदारों को अपना सब कुछ सौंपकर शराब की बोतल थाम लेते हैं. सर्कसी मरीचिका से मुक्त होकर हताश और भग्नहृदया कामिनी परिस्थितियों के हाथों अवश होकर एक चित्रकार विकास से विवाह करती है और 'कामिनी कला भवन' के माध्यम से पति के लिए 'क्षितिज खोलने' के बावजूद उसके हाथों तिल-तिल कर पीसी जाती है. और एक बार फिर शुरू होती है स्वतंत्र व्यक्तित्व की खोज और अस्मिता की तलाश अपनी सीमाओं सहित **'सर्कस'** (**अक्षर प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली**) एक अन्वेषणात्मक, उद्वेलक और रोमांचक उपन्यास है, जो एक प्रतिभाशाली दिशाखोजी और श्रमनिष्ठ लेखक के रूप में **संजीव** की रचना-यात्रा के महत्वपूर्ण मोड़ को रेखांकित करता है. □

नफ़ीस की कहानियां ▣ विश्वंभर 'अरुण'

नई कहानी के व्यामोह से बचकर विगत एक दशक में युवा कहानीकारों की जो नयी जमात आयी है, वह कहानी में सीधे-सादे तौर पर कहानी को पेश करने में विश्वास करती है यानी कथ्य की बारीकी या शिल्प की सजावट के नाम पर वह बनावटीपन को नकारकर आज की संघर्षशीलता और जुझारूपन के साथ टूटती-रिसती जिंदगियों की करीबी तस्वीर पेश करती है. वादों और नारों से अपने को बचाते हुए नफ़ीस आफ़रीदी ऐसे कहानीकार हैं, जो अपने भीतर धधकते लावे के बावजूद आंखों की दहलीज पर पानी की लरजती हुई असंख्य बूंदों की बंदनवार लटकी होने से अपने कथा संसार में अन्याय-शोषण के खिलाफ यदि गर्ममिजाज हो आग बरसाते हैं तो पिसती-कराहती जिंदगी के प्रति बर्फ की मानिंद ठंडा रुख भी अपनाते हैं. बीरमती की मौत से गमगीन, पर कोल्हू के बैल की तरह जुता हुआ कालीचरण हो ('सीढ़ियां') या छोटी चौधरान की प्रेम की गिरफ्त में बेचैन गोपी नाई हो ('कितने अंधेरे') या फिर पत्नी की अनैतिक कमाई पर सिगरेट की ऐश करने वाला 'वह' हो ('घिरे हुए प्रश्न') —उनके कथा-संसार में ये दोनों रुख रूपायित होते हैं. दुखी-दलित दुनिया की बहुआयामी तस्वीरें कहानियों में अंकित हैं. नफ़ीस के लिए 'दूसरों के लिए जीना ही मेरी कहानियों का मकसद है.' इसलिए उनकी कहानियां 'दूसरों की जिंदगी' को पेश करने पर भी जैसे अपनी भोगी स्थितियों का ही आत्मलेखा मालूम पड़ती हैं यानी 'चौपालों और झोंपड़ियों, बदबूदार गलियों और अंधेरे कमरों, अलगाव और बगानेपन और इन सबके साथ आर्थिक-मार्मिक दबावों का लेखा-जोखा' बयान करती हैं ये कहानियां, जो सादगी में भी सांकेतिकता का सार समेटे होने से ज्यादा असरदार बन पड़ी हैं. अगर 'कितने अंधेरे' को लें तो उसमें गोपी और छोटी चौधरान के रोमानी रुख के संग भैरव-चौधरी, काशी पंडित और बलिया के विविधवर्णी पारदर्शी चरित्रांकन तो हैं ही, साथ ही उस गांव का और उस गांव के बहाने हर गांव का समाजशास्त्रीय सूक्ष्म विश्लेषण भी है. दूसरी कहानी 'अग्निकुंड' की मिसाल लें तो वह बी आपा का ही अग्निकुंड नहीं है, पूरी हवेली ही अग्निकुंड बनी है और उसके संकेत को समझें तो आज न जाने कितनी हवेलियां इसी तरह का अग्निकुंड बनी सुलगते सामाजिक माहौल का साक्षात्कार कराती हैं, पर इस अग्निकुंड में तपकर और निखर जाने वाली हुमां भी है, जो कहानीकार के आंसुओं के वंदनवार वाला आशावादी रूप सामने लाती है, जो सचमुच प्यारा लगता है. □

▣ 'नफ़ीस आफ़रीदी की विशिष्ट कहानियां' (शीर्षक प्रकाशन, हापुड़) •

080585

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हलचल

शुक्लोत्तर समीक्षा की जांच-पड़ताल

● डॉ. सी.एल. प्रभात के शोधग्रंथ का विमोचन करते हुए डॉ. धर्मवीर भारती

पिछले दो दशकों में हिंदी साहित्य की हर विधा में ह्रासात्मक रुझान ज्यादा आये हैं, लेकिन ये रुझान सबसे ज्यादा समीक्षा क्षेत्र में ही सिर उठाकर खड़े हुए हैं और कारण यह रहा कि समीक्षा-कर्म क्या है, के साथ-साथ इस विधा में रत समीक्षकों एवं गैर-समीक्षकों ने समीक्षा धर्म को ही ताक पर रख दिया. समीक्षा के आधार-स्तंभ आचार्य रामचंद्र शुक्ल के बाद समीक्षा का कोई व्यवस्थित रूप नजर नहीं आता. इसी तथ्य को मद्देनजर रखते हुए बंबई विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग ने 'शुक्लोत्तर समीक्षा : मूल्य एवं मूल्यांकन' विषयक संगोष्ठी का आयोजन किया.

उद्घाटन सत्र की अध्यक्षता की प्रख्यात् समीक्षक डॉ. विजयेंद्र स्नातक ने और उद्घाटन बंबई विश्वविद्यालय के सहकुलपति प्रिंसिपल एम.डी. लिमये ने किया.

बंबई विश्वविद्यालय के हिंदी विभागाध्यक्ष एवं प्राध्यापक डॉ. सी. एल. प्रभात ने विषय को चर्चात्मक रूपरेखा प्रदान करते हुए कहा, "आधुनिक समीक्षा के प्रवर्तक एवं सही अर्थों में आचार्य थें रामचंद्र शुक्ल. छठे एवं सातवें दशक में कविता की मानसिकता बदलने के लिए समीक्षाएं एवं आलोचनाएं लिखी गयीं, पर आज आलोचना का रूप बेहद असंतोषजनक है. अखबारों एवं पत्रिकाओं को हटा दें तो साहित्य की समीक्षा है ही नहीं.

...यें प्रवर्तन किया विश्व विख्यात गुजराती कथांकार गुलाबदास ब्रोकर ने. जिन्होंने कथाकार-रूप में समीक्षा के मांनदंडों को निरूपित किया. शिवकुमार मिश्र को ब्रोकरजी की बात इस प्रकार लगी, मानों ब्रोकर जी ने साहित्यकार और समीक्षक के बीच ब्रोकरी की हो. इस संगोष्ठी में डॉ. सोहन शर्मा ने 'मूल्य एवं मूल्यांकन' विषय पर अपना आलेख पढ़ा.

डॉ. चंद्रकांत बांदिवडेकर ने 'आलोचना : कुछ समस्याएं' आलेख में लेखक और प्राध्यापकीय समीक्षक की आर्थिक स्थितियों, सुविधाओं तथा सृजनक्षमता की मीमांसा की. आलोचना एवं आलोचक-वर्ग के प्रति वितृष्णा के कारणों को उन्होंने उद्घाटित किया.

गोवा के डॉ. अरविंद पांडेय ने 'प्रगतिवादी चिंतन: दिशा और भटकाव' नामक आलेख में नितांत नीरस प्राध्यापकीय तरीके से मार्क्स, मार्क्सवाद, लेनिन, कला और स्वातंत्र्य, रस-विवेचन आदि की व्याख्या की. लगभग उसी भाषा-शैली में डॉ. कृष्णलाल शर्मा ने भी 'हिंदी समीक्षा और कला के प्रतिमान' शीर्षक आलेख में कृति को समझने और समझाने में कला शास्त्रियों द्वारा अपनायी जाने वाली शैलीपद्धति का विवेचन किया. इनके वनिस्बत डॉ. मो. दि. पराड़कर ने बेहद आकर्षक शैली में 'हिंदी समीक्षा और आचार्य शुक्ल' नामक अपना आलेख पढ़ा. इस आलेख ने डॉ. विजयेंद्र स्नातक एवं डॉ. शिवकुमार मिश्र को भी चौंका दिया, क्योंकि डॉ. मो. दि. पराड़कर ने आचार्य रामचंद्र शुक्ल के कई अनछुए आयामों को उद्घाटित किया था. और किसी मराठीभाषी संस्कृत विद्वान का लहजा इतना हिंदीपन लिये हो सकता है, यह सभी के लिए अचरज की बात थी. डॉ. प्रभाकर माचवे ने अपने आलेख में आचार्य रामचंद्र शुक्ल की दृष्टि को व्यक्त किया. 'समीक्षा के दायरे' आलेख डॉ. विनोद गोदरे ने पढ़ा.

डॉ. शिवकुमार ने अपने अलिखित व्यक्तव्य में कहा, "समीक्षा के सिद्धांत तो बहुत से हैं, पर ऐसा कोई व्यक्ति बताइए, जिसने सारे उत्तरदायित्वों को निबाहा हो. युगसंदर्भ बदलने के साथ रचना बदलती है तथा उसके विश्लेषण की प्रवृतियां भी बदलती हैं."

डॉ. आनंदप्रकाश दीक्षित बीमार थे. फिर भी, संगोष्ठी में उपस्थित हुए और बड़े तैश में बोले, "समीक्षक के दायित्व का प्रश्न आज का प्रश्न नहीं है. हम इससे आगे निकल आये हैं. समीक्षकों को रचनाकारों ने भ्रष्ट किया है. आज की कविता का इतिहास इस बात का साक्षी हैं."

अध्यक्ष डॉ. विजयेंद्र स्नातक ने बड़े हल्के मूड में सभी आक्षेपों-आलेखों का उत्तर देते हुए कहा, "जिन्हें कुछ लिखना नहीं आता, वे समीक्षा लिखते हैं, लेकिन ऐसे लोगों की लिखी समीक्षा कालजयी नहीं होती." □

● रतीलाल शाहीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शहंशाह इडिपस

पूर्वोत्तर भारत की नवगठित नाट्य संस्था डिब्रूगढ़ नाट्य गोष्ठी ने विश्वविख्यात ग्रीक नाटक 'शहशाहे इडिपस' का हिंदी रूपांतर इंडिया क्लब के प्रेक्षागार में प्रस्तुत किया. संस्था की प्रथम प्रस्तुति का नगर के रंगप्रेमियों एवं जनता ने उत्साह-पूर्वक स्वागत किया. यद्यपि नाटक का कथानक पूर्वांचल की परंपरागत मानसिकता से कुछ विपरीत था, किंतु क्षेत्र में हिंदी नाटकों के मंचन की दृष्टि से यह बहुत सफल रहा.

नाटक का कथानक ईसा से 450 वर्ष पूर्व की एक सत्य घटना पर आधारित है, जिसमें प्राचीन ग्रीक (थीव) के राजा के बच्चे के विषय में जन्म के समय ही ऐसी भविष्यवाणी हुई थी कि यह बच्चा अपने पिता का हत्यारा होगा तथा अपनी ही मां का पति बनेगा. इस घृणित भविष्यवाणी के कारण राजा अपने इस बच्चे को मारने का आदेश देता है, लेकिन एक गुलाम की दयालुता के कारण वह बच जाता है और कालांतर में शहंशाह इडिपस बनता है. भविष्यवाणी की बात जानने के बाद शहंशाह उसकी सच्चाई जानने को पागल हो जाता है. उसे जब यह ज्ञात होता है कि भविष्य-वाणी उसके जीवन में सत्य हुई है तो ग्लानि से अपनी आंखें फोड़ लेता है. □

साहित्य और स्वाधीनता के मूल्य

सड़क पर खड़े लोगों का विषय है कि वे स्वाधीनता के उत्सों को तला[श] सड़क पर आते ही जैसे हमें दुर्घटना की चिंता होती है, वैसे ही आ[ज] स्वाधीनता की दुर्घटना होनेवाली है तो सावधानी की बड़ी जरू[रत] है—कहना था समाजवादी विचारक, लघुपत्रिका 'बिंदु' के संपादक, राजस्[थान] साहित्य अकादमी से पुरस्कृत कवि नंद चतुर्वेदी का और अवसर था समत[ा]वादी अध्ययन न्यास, बंबई द्वारा इंडियन मर्चेंट चेंबर में डॉ. रा[म]मनोहर लोहिया के जन्म दिवस पर आयोजित 'साहित्य और स्वाधीनत[ा]' परिसंवाद का. वह सत्ता, जो सब तरफ स्वतंत्रता का हनन कर रही है, वही स[त्ता] स्वाधीनता पर गोष्ठी और परिसंवाद भी करवा रही है.

प्रथम वक्ता अंग्रेजी प्राध्यापक, विधान परिषद में विरोध पक्ष के ने[ता] मराठी लेखक ग. ग. प्रधान ने कहा, "साहित्य और स्वाधीनता विषय पर सोच[ते] रूसो का कथन याद आता है कि हम जन्म से स्वतंत्र होते हैं, परंतु दुनिया में आ[ते] ही हम स्वयं को जेल में पाते हैं. दुनिया के ढेर सारे बंधन हमें पराधीन बना दे[ते] हैं. स्वतंत्रता की चिंगारी विद्रोही साहित्य के भीतर से फूटनी चाहिए." दू[सरे] वक्ता सौंदर्य शास्त्र के विद्यार्थी गुजराती कवि सितांशु यशश्चंद्र का कहना थ[ा] "सवाल पूछने से पहले यह देखना होगा कि सवाल करने की क्षमता भारती[य] साहित्य में है कि नहीं?"

अध्यक्षा श्रीमती मृणाल गोरे का कहना था कि आज की त्रासदी यह है [कि] राजनीति में आकंठ डूबकर भी मूलगामी विचार देने वाला कोई चिंतक आज न[हीं] है. मृणाल ताई ने लोहियाजी की 'इतिहास चक्र' पुस्तक का विमोचन भी किय[ा] प्रसिद्ध पत्रकार गणेश मंत्री ने देश के भीतरी संघर्षों को बल देने तथा व्याप[क] क्षितिज प्रदान करने वाले पत्रकारों को पुरस्कृत करने की समता-योजना [के] अंतर्गत पहला पुरस्कार श्री जगमीत सिंह को 'मध्यप्रदेश के आदिवास[ी] अभयारण्य बर्दाश्त नहीं करेंगे' लेख पर देने की घोषणा की, जिसके निर्णाय[क] मंडल में थे : न्यायाधीश चंद्रशेखर धर्माधिकारी, नारायण दत्त एवं उषा महेता[.] कार्यक्रम का संचालन युवाकवि विश्वनाथ ने किया. □

पत्र-पत्रिकाएं

पिछले दिनों न सिर्फ प्रतिष्ठित रचनाकारों की रचनाओं को प्रकाशित करने के कारण, बल्कि अपनी निरंतरता बनाये रखने के कारण भी जिन दो-चार लघुपत्रिकाओं ने प्रबुद्ध पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है, उनमें **'अभिप्राय'** (संपादक: राजेंद्र कुमार, 13 बांध रोड, इलाहाबाद) भी एक है. इसके ताजे अंक में डॉ. रामविलास शर्मा से अजय तिवारी और श्यामबिहारी राय की विचारोत्तेजक बातचीत छापी गयी है, जिसमें डॉ. रामविलास शर्मा का यह निष्कर्ष बहुत महत्त्वपूर्ण है कि किसी देश में जनता की संस्कृति तब तक निर्मित नहीं होती, जब तक कि जनता साक्षर नहीं हो जाती. इस अं[क में] शेखर जोशी की कहानी के अ[लावा] दूधनाथ सिंह, श्रीराम वर्मा, जुगम[ंदिर] तायल तथा शंभुनाथ आदि भी छ[पे हैं].

संस्कृति और साहित्य के क्षे[त्र में] सक्रिय हिमाचल प्रदेश के भाषा [एवं] संस्कृति विभाग ने एक नयी त्रैमा[सिक] पत्रिका **'हिम संस्कृति'** (संपाद[क] श्रीनिवास जोशी तथा तुलसी र[मण], क्लिफ एंड एस्टेट, शिमला—171...) शुरू की है. प्रवेशांक भविष्य के [प्रति] आश्वस्त करता है, लेकिन आ[चार्य] रामचंद्र शुक्ल की जन्मशती [पर] **'दस्तावेज'** (संपादक : वि[श्वनाथ] प्रसाद तिवारी, बेतिया हाता, गोर[खपुर] उ.प्र.) का 'आचार्य रामचंद्र [शुक्ल] विशेषांक' सही समय पर छ[पा] बहुत महत्त्वपूर्ण अंक है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar